२७-२८ जनवरी, २०२३ को म.गाँ. काशी विद्यापीठ के केन्द्रीय पुस्तकालय सभागार में आयोजित ''भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन : साहित्य और पत्रकारिता'' विषयक द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के स्मृति चित्र

शोध-पत्रिका 'नमन' का विमोचन करते हुए मुख्य अतिथि डॉ. महेन्द्र नाथ पाण्डेय। साथ में; (दाएँ) प्रो. अशोक मिश्र (प्रभारी कुलपति- म.गाँ. काशी विद्यापीठ, वाराणसी), प्रो. अनुराग कुमार (कला संकायाध्यक्ष) तथा (बाएँ) प्रो. हरिकेश सिंह, प्रो. अनीता सिंह, प्रो. श्रद्धा सिंह, प्रो. नवीन नन्दवाना, डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह, डॉ. हिमांशु शेखर सिंह तथा अन्य।

'प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति ग्रन्थ' का विमोचन करते हुए प्रो. अनुराग कुमार, प्रो. अशोक मिश्र, डॉ. महेन्द्र नाथ पाण्डेय, प्रो. हरिकेश सिंह (पूर्व कुलपति), प्रो. अनीता सिंह (मुख्य कुलानुशासक), प्रो. श्रद्धा सिंह, प्रो. नवीन नन्दवाना (उदयपुर), डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह और डॉ. हिमांशु शेखर सिंह।

मुख्य अतिथि डॉ. महेन्द्र नाथ पाण्डेय (केन्द्रीय भारी उद्योग मन्त्री–भारत सरकार) अपना उद्‌बोधन देते हुए।

डॉ. महेन्द्र नाथ पाण्डेय (सांसद एवं भारी उद्योग मंत्री–भारत सरकार) का अंगवस्त्र ओढ़ाकर तथा स्मृति-चिह्न प्रदान कर स्वागत करते हुए।

वर्ष-१६ : अंक-२९ नमन Naman जुलाई-२०२३

जुलाई-२०२३ ISSN : 2229-5585

नमन
NAMAN

यू.जी.सी.-केयर की बहु-विषयी सूची में क्रमांक-२४ पर नामांकित
सान्दर्भिक अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

सम्पादक
प्रो. श्रद्धा सिंह • डॉ. हिमांशु शेखर सिंह

वर्ष : १६ Website : www.namanpatrika.com अंक : २९

वर्ष-१६ : अंक-२९ ISSN : 2229-5585
यू.जी.सी.-केयर की बहु-विषयी सूची में क्रमांक-२४ पर नामांकित
सान्दर्भिक अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

नमन Naman

प्रधान संरक्षक
श्री सुधांशु शेखर सिंह (प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास)
(Secretary and CEO - Humanitarian Aid International)

परामर्श-मण्डल
प्रो. एम. विमला–हिन्दी विभाग, बंगलुरु विश्वविद्यालय, बंगलुरु, कर्नाटक
प्रो. मंजुला राणा–अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, एच.एन. बहुगुणा गढ़वाल वि.वि., उत्तराखण्ड
प्रो. डी.एस. राजपूत–पूर्व अध्यक्ष- समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर वि.वि., सागर
प्रो. उमापति दीक्षित–अध्यक्ष- नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा
प्रो. योगेन्द्र प्रताप सिंह–आचार्य-हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. रेणू सिंह–आचार्य एवं अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय वि.वि., अमरकण्टक, म.प्र.
डॉ. जितेन्द्रनाथ मिश्र–पूर्व अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, डी.ए.वी. डिग्री कॉलेज, वाराणसी
डॉ. रामसुधार सिंह–पूर्व अध्यक्ष- हिन्दी विभाग, उदय प्रताप कॉलेज, वाराणसी
प्रो. भारती सिंह–पूर्व प्राचार्य- महामाया राजकीय महाविद्यालय, महोना, लखनऊ
प्रो. सविता भारद्वाज–प्राचार्य- राजकीय महाविद्यालय, गाजीपुर
डॉ. आशा यादव–हिन्दी विभाग, बसन्त कन्या महाविद्यालय, कमच्छा, वाराणसी

न्यास-मण्डल
श्री शैलेन्द्र सिंह–पूर्व प्रबन्धक, ग्रामीण बैंक, हरदोई
डॉ. भारती सिंह– एम.ए. (समाजशास्त्र– हिन्दी), पी-एच.डी.
डॉ. दिनेश कुमार सिंह– गणित विभाग (अ.प्रा.), राजकीय महाविद्यालय, लखनऊ
डॉ. पद्मजा सिंह–प्राध्यापिका, दिल्ली
श्रीमती आरती सिंह–प्राध्यापिका, वाराणसी

सम्पादकीय सम्पर्क
सम्पादक– 'नमन'
प्रेम सदन– सी. ३३/१४७-३२ ए
आचार्य नरेन्द्रदेव नगर, चन्दुआ छित्तूपुर, वाराणसी-२२१००२
वार्ता-सेतु : ०९४१५९८४९८३, ०९४१५५३०५८७
shraddhahindi@gmail.com
E-mail : himanshusinghkvp@gmail.com
namanpatrika@gmail.com
Website : www.namanpatrika.com
फेसबुक : नमन (शोध-पत्रिका)

शब्द-संयोजक
श्री विमल चन्द्र मिश्र–पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१०१०

मुद्रक
श्री मोहित निगम– प्रिंटेक, इण्डियन प्रेस कालोनी, मलदहिया, वाराणसी

२७-२८ जनवरी, २०२३ को आयोजित संगोष्ठी के स्मृति-चित्र

प्रो. नवीन नन्दवाना (उदयपुर), प्रो. उमापति दीक्षित (अध्यक्ष–नवीकरण एवं भाषा प्रसार विभाग, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा) तथा प्रो. आनन्द वर्धन शर्मा विचार व्यक्त करते हुए।

बाएँ से प्रो. ओमप्रकाश सिंह, प्रो. श्रद्धानन्द और डॉ. रामसुधार सिंह विचार व्यक्त करते हुए।

डॉ. सनत कुमार शर्मा, प्रो. गायत्री सिंह तथा प्रो. ओमप्रकाश सिंह को स्मृति-चिह्न प्रदान करते हुए प्रो. श्रद्धा सिंह, डॉ. हिमांशु शेखर सिंह, डॉ. नागेन्द्र कुमार सिंह तथा प्रो. श्रद्धानन्द।

डॉ. हिमांशु शेखर सिंह अपना विचार व्यक्त करते हुए तथा समूह चित्र।

नमनं वासुदेवाय नमनं ज्ञानराशये ।
नमनं प्रीतिकीर्तिभ्यां नमनं सर्वभूतये ।।

नमन

Naman

'प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास'
द्वारा प्रकाशित
यू.जी.सी.-केयर की बहु-विषयी (Multi-Disciplinary)
सूची में क्रमांक-२४ पर नामांकित सान्दर्भिक अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका
ISSN : 2229-5585

सम्पादक

प्रो. श्रद्धा सिंह
आचार्य– हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी, उ. प्र.

डॉ. हिमांशु शेखर सिंह
सह आचार्य– हिन्दी विभाग
नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय
प्रयागराज, उ. प्र.

वर्ष-१६ : अंक-२९ ISSN : 2229-5585

नमन

Naman

मानविकी एवं साहित्य

यू.जी.सी.-केयर की बहु-विषयी (Multi-Disciplinary) सूची में क्रमांक-२४ पर नामांकित सान्दर्भिक अर्द्धवार्षिक शोध-पत्रिका

© **प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास**

सम्पादन

- अनियतकालीन, अवैतनिक तथा अव्यावसायिक
- रचनाकार की रचनाएँ उसके अपने विचार हैं। प्रकाशित शोध-पत्रों में आए विचार लेखकों के अपने हैं। सम्पादक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- रचनाओं पर कोई मानदेय / पारिश्रमिक देय नहीं होगा।
- लेखकों, सदस्यों एवं शुभचिन्तकों के आर्थिक सहयोग से पत्रिका प्रकाशित होती है।
- किसी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र वाराणसी होगा।

सदस्यता-शुल्क :

प्रति अंक व्यक्तिगत रु. ५००/-		संस्थागत ७००/–
व्यक्तिगत आजीवन रु. ४०००/-		संस्थागत ५०००/–
विदेश के लिए US$ ५०		आजीवन US$ १५०

कृपया अपनी सदस्यता / सहयोग की धनराशि इस पर भेजें–
प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास
खाता संख्या-४०१६०१००००५४८९
बैंक ऑफ बड़ौदा, महमूरगंज शाखा
वाराणसी-२२१०१०
RTGS/NEFT IFSC Code : BARB0MAHMOO

सम्पादकीय

विश्व के प्राचीनतम नगरों में से एक काशी हजारों वर्षों से धर्म, अध्यात्म, शिक्षा, व्यापार और सभ्यता का केन्द्र रही है। गंगा के किनारे बसी यह नगरी वैदिक युग से ही सर्वविद्या और सर्वज्ञान की राजधानी के रूप में विश्वविख्यात् है। देश-दुनिया के दार्शनिक, पण्डित, संत, कवि, ज्ञानार्थी इस नगर में आए और यहाँ की गंगा-जमुनी संस्कृति का हिस्सा हो गए।

जिस तरह गंगा का प्रवाह अलग-अलग धाराओं से मिलकर बना है, वैसे ही; काशी की संस्कृति ने भी हिन्दू, जैन, बौद्ध व बहुत से अन्य धर्मों और मत-मतान्तरों का संगम किया है। विभिन्न राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तनों और सत्ताओं के उत्थान-पतन के बावजूद इस नगरी ने अपनी प्राचीन लोक-संस्कृति को सँजोए रखा। कला, साहित्य, दर्शन, शिल्प आदि यहाँ की गली-गली में बसा हुआ है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की परम्परा को समृद्ध करने में बनारस घराने का विशेष महत्त्व है। यहाँ नृत्य, वादन व गायन की नवीन शैली विकसित हुई। ध्रुपद, धमार के बेजोड़ गायक शिवा-पशुपति, ठुमरी के बादशाह जगदीप जी, सिद्धहस्त तबलेबाज रामसहाय जी और कण्ठे महाराज व कृष्ण प्रसाद जैसी विश्व-विभूतियों की कर्मभूमि काशी ही बनी।

सिर्फ संस्कृत विद्या और संस्कृत साहित्य ही नहीं, बल्कि उर्दू और हिन्दी साहित्य को गौरव भी बनारस में प्राप्त हुआ। हिन्दी साहित्य की हजार वर्षों की परम्परा को समृद्ध बनाने में बनारस की भूमिका अतुल्य है।

भक्तिकाल से लेकर आधुनिक साहित्य तक हिन्दी साहित्य का केन्द्र बनारस बना रहा। दक्षिण से जिस भक्तिधारा को रामानन्द लेकर आए, उसका पल्लवन बनारस के भक्त कवियों ने किया। हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण युग' कहे जाने वाले भक्तिकाल में विभिन्न साहित्यिक व दर्शन-धाराओं का विकास हुआ। भक्ति-साहित्य लोक की भाषा में, लोक के लिए लिखा हुआ साहित्य है। पुरातनता व रूढ़ियों के पोषक कहे जाने वाले बनारस में कबीरदास जैसा रूढ़ि-भंजक कवि हुआ। निर्गुण-परम्परा के प्रवर्तक कबीर ने साधना के क्षेत्र में एक नया दर्शन विकसित किया। समाज में व्याप्त जातिगत भेद-भावों व धार्मिक कर्मकाण्डों पर कबीर ने गहरा प्रहार किया। कबीर की कविता ने भाग्यवादी व्यवस्था की कटु आलोचना की और समाज में श्रम के महत्त्व की स्थापना की। अहिंसा, त्याग, विश्व-कल्याण की भावना जैसे व्यापक मानवीय मूल्यों की उद्घोषणा इनका साहित्य करता है।

रैदास भी बनारस के विख्यात् निर्गुण संत कवियों में से एक हैं। इनमें कबीर जैसा अक्खड़ स्वर तो सुनाई नहीं देता, पर सामाजिक रूढ़ियों, कर्मकाण्डों और बाह्याडम्बरों की तीखी आलोचना इनके पदों में पगे-पगे दिखलाई देती है। भेद-भावरहित भगवद्-भक्ति व प्राणी मात्र का प्रेम इनके साहित्य का मर्म है। साधु सम्प्रदाय के प्रवर्तक के रूप में भी इनकी ख्याति है।

बनारस के घाटों का साहित्यिक माहात्म्य तो अविरल है। कवि शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने बनारस के तुलसीघाट पर 'रामचरित मानस' जैसी अनुपम साहित्यिक कृति की रचना की। रामचरित मानस ने साहित्य के वास्तविक प्रयोजन को सिद्ध किया और लोकमानस में बस गया। विश्व-साहित्य की शायद ही ऐसी कोई कृति हो, जो जन-जन में रामचरित मानस के समान समादृत हो।

तुलसी का साहित्य मानव-जीवन के भीतर से ऊर्जा लेकर विकसित हुआ है। तुलसी के

सम्पूर्ण साहित्य में लोक के प्रति गहरी चिंता दिखलाई देती है। उनके राम किसी राजप्रासाद का सुख भोगने वाले राम नहीं हैं, बल्कि लोक में बसे वो राम हैं, जो जन-जन के संघर्षों का हिस्सा बनते हैं, उनके दु:खों व सुखों के भागीदार हैं। वह एक राजा व ईश्वर के रूप में कम तथा एक सखा, भ्राता, पुत्र के रूप में अधिक दिखलाई देते हैं। तुलसी ने ही बनारस में रामलीला की परम्परा को आरम्भ किया, जो आज भी उत्तर भारत की लोक-संस्कृति का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

इन भक्त कवियों ने कविता का प्रयोजन लोकमंगल व लोकरंजन को बनाया। इन भक्त कवियों की दृष्टि वैश्विक रही। हमारी भारतीय लोक-संस्कृति व व्यापक मानवीय मूल्यों की स्थापना और संरक्षण का कार्य इन संतों की कविता करती है। तुलसी की स्पष्ट घोषणा है कि कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है, जो गंगा के समान सबका हित करे– 'कीरति बनिति, भूति भलि सोई, सुरसरि सम सबकहँ हित होई।' बनारस की धरती में 'विरुद्धों के सामंजस्य' की ऐसी शक्ति व्याप्त है, जहाँ कबीर व रैदास जैसे निर्गुण कवि और तुलसीदास जैसे सगुण कवि एकसाथ सम्मान पाते हैं।

बनारस ने प्राचीन परम्पराओं को तो संरक्षित किया ही, साथ ही; नवीन परम्पराओं और आन्दोलनों की जन्मभूमि भी बनी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी साहित्य में नवजागरण के अग्रदूत बनकर उभरे। भारतेन्दु का साहित्यिक पदार्पण उस समय हुआ, जब भारतीय समाज सामंतवाद व औपनिवेशिक पराधीनता में जकड़ा हुआ था। उन्होंने साहित्य को व्यापक समाज और देशहित से जोड़ा। नवोदित हिन्दी गद्य में नयी विधाओं और आधुनिक विषयों के सूत्रपात का श्रेय भारतेन्दु को ही जाता है। भारत दुर्दशा, अँधेर नगरी जैसे नाटकों में वे अपने समय, समाज और देश के वास्तविक चित्र को प्रस्तुत करते हैं। 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' नामक निबंध में वह देश को दिशा देने का प्रयास करते हैं। स्त्री-शिक्षा, साम्प्रदायिकता, जाति, धर्म, आर्थिक शोषण और राजनीतिक संकटों की पहचान उनका लेखन कराता है। आधुनिक हिन्दी समीक्षा के सूत्रपात का श्रेय भी उन्हें दिया जाना चाहिए। भारतेन्दु ने खड़ी बोली हिन्दी को एक नया संस्कार दिया। स्वच्छ, सरल और चलती साहित्यिक भाषा का आभास भारतेन्दु के साहित्य से ही मिलता है। सन् १८७३ में भारतेन्दु 'हिन्दी नयी चाल में ढली' की उद्घोषणा बनारस की भूमि से करते हैं। उनके प्रोत्साहन से साहित्यकारों का एक ऐसा मण्डल तैयार होता है, जिसने हिन्दी साहित्य को निरन्तर समृद्ध किया।

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवियों में शुमार, छायावाद के प्रवर्तक, जयशंकर प्रसाद की जन्मभूमि और कर्मभूमि बनारस बनी। उन्होंने आधुनिक हिन्दी कविता को 'कामायनी' जैसी कालजयी, महाकाव्यात्मक व विश्वस्तरीय कृति से नवाजा। प्रसाद जी एक महान कवि होने के साथ-साथ श्लाघ्य नाटककार, निबंधकार, कथाकार और आलोचक भी थे। उनके साहित्य के केन्द्र में मानव-जीवन के संघर्ष व अंतर्विरोध रहे। उन्होंने साहित्य को भारत की विशाल सांस्कृतिक परम्परा व इतिहास-बोध से जोड़ा। उन्होंने आधुनिक समाज के यथार्थ व द्वंद्वों को अपने साहित्य में स्थान दिया। उन्होंने अपने साहित्य में 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' की स्थापना की। उनके सम्पूर्ण लेखन का उद्देश्य भारतीयों को उनके सांस्कृतिक गौरव के साथ जोड़कर उनमें मानवता को स्थापित करना रहा।

बनारस के लमही में जन्में प्रेमचन्द विश्व-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। हिन्दी कथा-साहित्य के नक्षत्र प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास व कहानी को नए प्रस्थान-बिन्दु दिए। प्रेमचन्द के साहित्य में आदर्श और यथार्थ का संश्लिष्ट रूप दिखाई देता है। प्रेमचन्द अपने साहित्य में विषय-वस्तु, चरित्र, वातावरण व भाषा के स्तर पर नये मानक स्थापित करते हैं। उन्होंने सदियों से चली

आ रही धीरोदात्त नायकों की पूरी परम्परा को एक झटके में बदल दिया। उन्होंने अपने साहित्य के लिए ऐसे नायकों को चुना, जो व्यापक समाज की चेतना और विचारों से जुड़ सके। उनके नायक-नायिका होरी और धनिया, हीरा-मोती, हामिद-हल्कू जैसे अतिसामान्य व्यक्ति बनते हैं। भारतीय ग्रामीण जीवन का महाकाव्यात्मक उपन्यास 'गोदान' प्रेमचन्द की साहित्य-साधना का उत्कर्ष है। प्रेमचन्द ऐसे जागरूक व सम्वेदनशील लेखक रहे, जिन्होंने अपने रचना-संसार में समाज के हर रंग और छवियों को सँजोया है। प्रेमचन्द ने अपने आलोचनात्मक निबंधों, नाटकों और अनुवादों द्वारा भी हिन्दी साहित्य की समृद्धि में योगदान दिया है।

अम्बिकादत्त व्यास, देवकीनंदन खत्री, बाबू राधाकृष्ण दास भारतेन्दु-युग के अन्य चमकते सितारे थे, जिनका सम्बन्ध काशी से रहा। इसी के साथ; जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने आधुनिक युग में ब्रजभाषा काव्य की सुन्दर सरिता बहायी। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने संत साहित्य को अपना विषय बनाया। अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' और १९६०-७० के दशक में धूमिल आदि साहित्यकारों ने अपने-अपने तरीके से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया।

साहित्य और पत्रकारिता का गहरा सम्बन्ध है। किसी भी जनान्दोलन की पुरोधा पत्र-पत्रिकाएँ होती हैं। हिन्दी साहित्य के स्वरूप-निर्माण, विकास व प्रसार में बनारस से निकली पत्र-पत्रिकाओं का विशेष योगदान है। राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' का 'बनारस अखबार' हिन्दी भाषा में निकलने वाला पहला अखबार बना। इसके बाद; बाबू तारामोहन मैत्रेय ने 'सुधाकर' नामक पत्र निकाला, जिसकी भाषा हिन्दी के अधिक करीब और स्पष्ट थी। औपनिवेशिक युग का हर बड़ा साहित्यकार पत्रकारिता से जुड़ा था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से ही वास्तविक अर्थों में हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता की शुरूआत होती है। उन्होंने बनारस से १८६८ में 'कविवचन सुधा', १८७३ में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और १८७४ में स्त्री-शिक्षा के लिए 'बालाबोधिनी' जैसी पत्रिकाएँ निकालीं। जयशंकर प्रसाद 'इंदु' के माध्यम से साहित्यिक सेवा में संलग्न रहे। प्रेमचन्द ने 'हंस' पत्रिका के माध्यम से साहित्यकारों की एक नयी पीढ़ी का निर्माण किया। हिन्दी भाषा के परिष्कार और हिन्दी की गद्य विधाओं के बनने में बनारस से निकलने वाली पत्रिकाओं की महती भूमिका रही।

काशी की साहित्यिक संस्थाओं ने हिन्दी के आधुनिक स्वरूप-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। कवितावर्धिनी सभा, त्वदीय समाज, पेनी रीडिंग क्लब जैसी संस्थाओं की प्रस्तावना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने की। बनारस की सबसे महत्त्वपूर्ण साहित्यिक संस्था 'नागरी प्रचारिणी सभा' रही है। एक शताब्दी से अधिक पुरातन इस संस्था ने हिन्दी के साहित्यिक ग्रन्थों व मूल पाण्डुलिपियों की खोज, उनके संरक्षण, प्रकाशन और हिन्दी साहित्य व भाषा के प्रचार का कार्य पूरी लगन से किया। सन् १८९३ में बाबू श्यामसुन्दर दास, पण्डित रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंह ने इसकी नींव रखी और अपनी अथक मेहनत से सींचकर इसे राष्ट्रीय धरोहर बनाया। स्वतंत्रता-आन्दोलन में भी इस संस्था ने अपना महनीय योगदान दिया। संस्था ने बारह भागों में 'हिन्दी विश्वकोश' का प्रणयन किया। 'हिन्दी शब्दसागर' भी संस्था द्वारा दस भागों में प्रकाशित किया गया। यह हिन्दी भाषा का पहला मानक कोश है। हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली के सुव्यवस्थित शब्द-निर्माण का कार्य नागरी प्रचारिणी सभा ने ही किया। सभा के मुद्रण विभाग से हजारों की संख्या में पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। नागरी प्रचारिणी सभा से ही निकली हिन्दी की पहली शोध-पत्रिका 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' को संस्था ने सम्पादित व प्रकाशित किया। शोधार्थियों के लिए भी इस संस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। हिन्दी भाषा को अनुशासित और सुनियोजित करने

वाली पत्रिका 'सरस्वती' के प्रकाशन का जिम्मा भी पहले पहल इसी संस्था ने उठाया। हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए हिन्दी समाज सदैव इस संस्था का ऋणी रहेगा।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रणेता पं. मदन मोहन मालवीय ने हिन्दी भाषा व साहित्य के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। ये हिन्दी भाषा और शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा और अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की स्थापना में इन्होंने पूर्ण सहयोग दिया। ये मर्यादा, हिंदुस्तान व अभ्युदय आदि पत्रिकाओं के माध्यम से लगातार हिन्दी साहित्य की सेवा करते रहे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की स्थापना का श्रेय भी इन्हीं को जाता है। इस विभाग ने ज्ञान, अनुसंधान, रचनात्मकता और शिक्षण की अभूतपूर्व परम्परा कायम की। हिन्दी साहित्य की विश्व प्रसिद्ध थातियों का सम्बन्ध इस विभाग से रहा।

बाबू श्यामसुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, लाला भगवानदीन, पं. केशव प्रसाद मिश्र, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र सरीखी विभूतियों ने साहित्य, आलोचना, भाषाविज्ञान, साहित्येतिहास-लेखन और काव्यशास्त्र की मजबूत परम्पराएँ विकसित कीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' आज तक का सबसे प्रामाणिक इतिहास है। हिन्दी आलोचना के प्रतिमानों को गढ़ने में शुक्ल जी का योगदान अमर रहेगा। हिन्दी आलोचना और साहित्येतिहास की कोई भी नवीन धारा इनसे टकराए बिना नहीं बन सकती। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी शुक्ल जी की परम्परा से टकराते हुए अपना मार्ग निर्मित करते हैं। इन्होंने काशी के हिन्दी विभाग में गुरु-शिष्य-परम्परा विकसित की। इनके सबसे योग्य शिष्य नामवर सिंह हिन्दी आलोचना के देदीप्यमान नक्षत्र बने। इन्होंने साहित्य के इतिहास-लेखन और आलोचना को शुक्ल जी से भिन्न एक लोकवादी दृष्टि प्रदान की। इनका इतिहास-बोध बहुत गहरा है। भोलाशंकर व्यास ने मुख्यत: भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा को लेकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इन्होंने ध्वनि सम्प्रदाय, अलंकार, भाषाशास्त्र आदि पर कलम चलायी। सम्पादन को लेकर भी इनका काम महत्त्वपूर्ण है। शिवप्रसाद सिंह अपने कथा साहित्य-लेखन के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। लाला भगवानदीन ने रीतिकाव्य को लेकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इनके अतिरिक्त; डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, डॉ. राजपति दीक्षित, डॉ. नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, डॉ. श्यामसुन्दर शुक्ल, डॉ. शुकदेव सिंह, डॉ. काशीनाथ सिंह, डॉ. चौथीराम यादव आदि समादृत सदस्यों ने मिलकर ज्ञान की इस अक्षुण्ण परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य किया। इस विभाग द्वारा पुस्तकों और पत्रिकाओं के सम्पादन का कार्य भी किया गया और लगातार किया जा रहा है।

बनारस की साहित्यिक विरासत में नवगीतकार शंभुनाथ सिंह भी एक महत्त्वपूर्ण नाम हैं, जिन्होंने नवगीत-विधा के ही नहीं, आलोचना के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। बनारस के साहित्यकारों की इसी कड़ी में प्रो. वासुदेव सिंह भी एक सम्मान्य साहित्यकार हैं, जिन्होंने कबीर के साखी, सबद और रमैनी की भावार्थ बोधिनी टीका के साथ ही; अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद, संत काव्य और तुलसीदास की कृतियों पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उनकी पुण्यस्मृति को नमन करते हुए ही प्रस्तुत शोध-पत्रिका 'नमन' अस्तित्व में आयी, जिसमें देश के लगभग सभी राज्यों से शोधपरक लेख आते हैं। नवीनता और गुणवत्ता के साथ इसकी यात्रा अनवरत चलती रहे– यही हमारा अभीष्ट है।

गुरु पूर्णिमा **–सम्पादक**

सोमवार : ३ जुलाई, २०२३

अनुक्रम

सम्पादकीय iii

१. रासलीला का स्वरूप और सूरदास — ***प्रो. वासुदेव सिंह*** १

२. रामचरित मानस में राम के भक्तगण — ***प्रो. श्रद्धा सिंह*** ८

३. हिन्दी साहित्य में नारी — ***प्रो. मंजुला राना*** २०

४. बाजारवाद और हिन्दी — ***डॉ. हिमांशु शेखर सिंह*** २४

५. स्वाधीनता-आन्दोलन में हिन्दी साहित्यकारों का योगदान विशेष संदर्भ : राधामोहन गोकुल — ***प्रो. रेनू सिंह*** २७

६. निर्मल वर्मा का कथा साहित्य : परिवेश की आधुनिकता — ***डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह*** ३४

७. 'द सब्जेक्शन ऑफ वुमेन' की प्रासंगिकता — ***डॉ. किंगसन सिंह पटेल*** ४०

८. प्रारम्भिक उर्दू गजलों का यथार्थवादी स्वर — ***प्रो. रसाल सिंह, हर्षित तिवारी*** ४५

९. उत्तर आधुनिक समाज व मीडिया — ***डॉ. भावना, नेहा चौरसिया*** ५१

१०. प्राचीन भारतीय कला में शालभंजिका — ***पंकज यादव*** ५५

११. विहारों की संरचना एवं बौद्ध कला का क्रमिक विकास — ***डॉ. अभिषित त्रिपाठी*** ६०

१२. जम्मू-कश्मीर : स्थायी शान्ति-स्थापना की प्रमुख चुनौतियाँ — ***डॉ. राजकुमार राम*** ६८

१३. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन — ***डॉ. कृपाशंकर यादव*** ७३

१४. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना एवं ग्रामीण विकास : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन — ***सिद्धार्थ अविद्रा, प्रो. दिवाकर सिंह राजपूत*** ७८

१५. वर्तमान समय में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं का उत्तराखण्ड़ की लोक संस्कृति के प्रति सम्मान एवं समर्पण : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन — ***आशीष, डॉ. अलका सुरी*** ८५

१६. सार्वजनिक वितरण प्रणाली का खाद्य-प्रबंधन में योगदान — ***भूपेन्द्र कुमार साहू, डॉ. अंजु कुमारी, डॉ. रविश कुमार सोनी*** ९६

१७. Digital Literacy Among the Elderly : Challenges and Opportunities — ***Dr. Anuradha Bapuly*** १०५

१८. Impact of COVID-19 lockdown in urban slums located in the district Dehradun of Uttarakhand — ***Dr. Mahesh Kumar, Dr. Rajinder Singh*** ११५

१९. Nature Based Tourism : A Case Study of Aritar, East Sikkim — ***Primula Sharma, Dr. Amit Kumar Singh*** १२१

२०. The Relationship Between Job Stress and Job Satisfaction with Faculty Performance in Higher Education Institutions
Sunaina Tomar, Dr. Meghwant Singh Thakur १२९

२१. Right to Health with Special Reference to Assam Public Health Act-2010
Jyotirmoyee Baruah, Prof. Sudhanshu Ranjan Mohapatra १४०

२२. Achieving Sustainable Development Goals : With Special Reference to Poverty and Hunger in India
Corresponding Author : Jai Prakash Verma १५५

२३. Understanding the Cultural and Analytical Aspect of the Development of a Disabled in Insignificant Events in The Life of a Cactus by Dusti Bowling
Retty Christopher Cardoz, Dr. Shibani Chakraverty Aich १७०

२४. Cultural Ecology in Jon Krakauer's Into the Wild
Harinandana R., Shibani C. Aich १७६

२५. Utilization of Antenatal Care Services during Covid-19 Pandemic in Bhabua City, Kaimur, Bihar
Corresponding Author : Dr. Meeta Ratawa Tiwary १७९

२६. Online Shopping : The Liaison with Customer Traits and Attitude ***Dr. Geetika Tandon Kapoor, Ms. Nidhi Singh*** १९४

२७. An Exploration of Emotional Intelligence Among Secondary School Teachers
Dr. Vidhu Shekhar Pandey, Dr. Ruchi Dubey २०४

२८. Impact of Time Spent on Information Search on Consumer Purchase Decision
Dr. Rahil Yusuf Zai, Dr. Pankaj Kumar २१०

२९. Parent's Perspectives About Cochlear Implantation for Their Children with Hearing Loss ***Dr. Palnaty Vijetha, Dr. Deepak Kumar Tripathi, Dr. Alok Kumar Upadhyay*** २१८

३०. Interrogating Space, Communal Identity and Belongingness : A Critical Reading of 'The Platform' from Temsula Ao's 'The Tombstone in My Garden'
Dr. Ram Bhawan Yadav, Mr. Ghunato Neho २२८

३१. Socio-Economic Status of Muslim Women : An Analysis
Dr. Kiran Bala, Mrs Shagufta Parveen २३७

३२. Adopting Alternative Disputes Resolution for Resolving Copyright Infringement Disputes : An 'Adequate' Remedy
Gururaj Devarhubli २४६

रासलीला का स्वरूप और सूरदास

प्रो. वासुदेव सिंह*

सम्पूर्ण भारत में प्राचीन काल से ही रास अथवा रासक महत्त्वपूर्ण साहित्य-विधा या काव्यरूप रहा है। देश के विभिन्न भागों में 'रास' धार्मिक अथवा लोकनृत्य के रूप में भी प्रचलित रहा है। उत्तर भारत में रासलीला के रूप में, गुजरात में गरबा नृत्य के रूप में, मणिपुर में राखाल रास के रूप में तथा बंगाल में काठी नृत्य के रूप में रास अब भी जीवित है। ''महाराष्ट्र में कातर बेलि, टीप्रीझिम्मा तथा दक्षिण में कुम्भि इत्यादि नृत्य रास से मिलते-जुलते हैं।''[१]

'रासो' की व्युत्पत्ति राजसूय, रसायण, रहस्य, राजादेश, रसिक आदि कई शब्दों से निकालने का प्रयत्न किया गया है। वस्तुत: रसों का समूह रास है– 'रसानाम्' समूहो इति रास:।' भगवान् को 'रस स्वरूप' कहा गया है– 'रसो वै स:।' रस-स्वरूप परमात्मा को अपने आप आस्वाद्य-आस्वादक भाव से विविध रूपों में प्रकट करके विहार करना 'रास' कहलाता है। दूसरे शब्दों में; ''जिस दिव्य क्रीड़ा में एक ही रस अनेक रसों के रूप में होकर अनन्त-अनन्त रस का रसास्वादन करे, एक रस ही रस-समूह के रूप में प्रकट होकर स्वयं ही आस्वाद्य-आस्वादक लीला, धाम और विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपन रूप में क्रीड़ा करे, उसका नाम रास है।''[२] रास की एक अन्य व्याख्या इस प्रकार की गयी है– 'नृत्यगीत चुम्बनालिंगनादीनां रसानां समूहो रास:' अर्थात् नाच, गान, चुम्बन, आलिंगन आदि रसों का समूह रास है। तीसरे मत से; रास उस नृत्य को कहते हैं, जिसमें एक क्रम से नर-नारी हाथ पकड़ कर मण्डलाकार नाचते हैं–

स्त्रीभिश्च पुरुषैश्चैव धृतहस्तैः क्रमस्थितैः ।
मंडले क्रियते नृत्यं स रासः प्रोच्यते बुधैः।।[३]

'हरिवंश पुराण' में रास और हल्लीसक को एक ही माना गया है। ईसा के चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व से ही लोकजीवन में इसके प्रवेश के प्रमाण मिलते हैं। प्रारम्भ में ये केवल लौकिक नृत्य माने जाते थे और जिसमें अनेक नर्तकियाँ मण्डल बना कर नृत्य करती थीं, उसे 'हल्लीसक' कहते थे–

नर्तकीभिरनेकाभिर्मण्डले विचरिष्णुभिः ।
यत्रीकोनृत्यति नटस्तद्वै हल्लीषकं विदुः ।।

कुछ समय बाद रास को धर्म से जोड़ दिया गया और श्रीकृष्ण को रास का नायक स्वीकार कर लिया गया। कहा गया कि श्रीकृष्ण रस के विग्रह, राधा रासेश्वरी तथा गोपिकाएँ, वृन्दावन धाम आदि रस-रूप हैं। जिस प्रकार एक बालक दर्पण अथवा जल में पड़े अपने प्रतिबिम्ब से खेलता है, उसी प्रकार भगवान् कृष्ण ने अपने को अनेक रूपों में प्रकट करके गोपियों के साथ रासलीला की– 'रमे रमेशो ब्रजसुन्दरीभियथार्भक: स्वप्रतिबिम्बविभ्रम:।' इस प्रकार, प्रेम-रस-स्वरूप तथा लीलारस में भगवान् श्रीकृष्ण के अपनी ह्लादिनी शक्तिरूपा चिन्मयरस-प्रतिभाविता अपनी ही प्रतिमूर्ति अथवा प्रतिबिम्बस्वरूपा गोपियों के साथ दिव्य क्रीड़ा को रास कहा गया। कृष्ण रस के प्रतीक हैं। जो रस सारे जगत् में परिव्याप्त है, उसी के मूर्त्त रूप कृष्ण हैं। सारा जगत् उनकी लीला है। वृन्दावन उनका नित्य लीलाधाम है। विद्यारण्यस्वामी ने प्रेम और रस को एक माना है। वेदान्त के अनुसार,

* प्राक्तन् आचार्य एवं अध्यक्ष– हिन्दी विभाग, म.गाँ. काशी विद्यापीठ, वाराणसी-२२१००२ (उ.प्र.)

ब्रह्म सत्, चित् और आनन्दमय है। आनन्द को ही वैष्णव भक्तों ने प्रेम या रस माना है। व्यक्ति नित्य लीला में भाग लेने का अधिकारी बन जाय, यही जीवन का लक्ष्य होता है। कृष्ण, गोप, राधा आदि प्रतीकात्मक शब्द भी हैं। कृष्ण वह है, जो सभी जीवों को अपनी ओर आकृष्ट करता है– 'कर्षति इति कृष्णः'। गो का अर्थ है– इन्द्रिय, प का अर्थ– पालना। इस प्रकार, गोप का अर्थ हुआ– जीव। यह जीव या गोप ब्रह्म की ओर आकृष्ट होता है। चीरहरण का तात्पर्य है– अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय कोषो रूपी चीर को अलग करके जीव का ब्रह्म से मिलन। इस प्रकार, रास अथवा रासलीला का प्रतीकात्मक महत्त्व भी है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हरिवंश पुराण में 'रास' शब्द का प्रथम प्रयोग मिलता है। इसके बाद ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में रास के वर्णन मिलते हैं। श्रीमद्भागवत (चौथी शती) में दो प्रकार के रास का वर्णन है– राधाकृष्ण रास और गोपीकृष्ण सामूहिक रास। यह रास दो ऋतुओं– शरद और वसन्त में होता था। इस आधार पर रास के दो भेद हो गये– शारदीय रास और वासन्ती रास। श्रीमद्भागवत में शारदी रास का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेयसी गोपियाँ एक दूसरे की बाँह में बाँह डाले खड़ी थीं। उन स्त्रीरत्नों के साथ यमुना के पुलिन पर भगवान् ने रास-क्रीड़ा आरम्भ की। वह दो-दो गोपियों के बीच में प्रकट हो गये और उनके गले में अपना हाथ डाल दिया। इस प्रकार, प्रत्येक गोपी के साथ एक-एक कृष्ण ने प्रकट होकर रास आरम्भ किया–

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीड़ामनुव्रतैः ।
स्त्रीरत्नेरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ।।
रसोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ।।
प्रविष्टेन गृहतीनाम् कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ।।३।।

(श्रीमद्भागवत : १०-३३)

श्रीमद्भागवत में रास के अवसर पर नृत्य के साथ ध्रुपद आदि गीत गाये जाने का भी उल्लेख मिलता है। रास के कई प्रकार के अर्थ किये गए हैं। किसी ने इसे काम पर विजय का प्रतीक बताया है, किसी ने इसे भगवान् का दिव्य बिहार बताया है और किसी ने इसका आध्यात्मिक अर्थ किया है।

श्रीमद्भागवत के समान सूरसागर में भी ऋतु-भेद से दो प्रकार के रास का वर्णन मिलता है– शारदीय रास और वासन्ती रास। पात्रों के आधार पर भी इसके दो भेद मिलते हैं– (१) राधा-कृष्ण रास और (२) गोपी-कृष्ण सामूहिक रास। राधा रास की नायिका है, अन्य गोपिकाएँ उनकी सहचरी हैं, सखियाँ हैं। गोपियों की संख्या सोलह हजार है।[४] वे वेद की ऋचाएँ मानी गयी हैं। सूरदास ने शारदीय रास का विस्तृत वर्णन किया है। शरत्कालीन नैसर्गिक सुषमा को देखकर श्रीकृष्ण के मन में रास करने की इच्छा जाग्रत होती है। वृन्दावन का रम्य वातावरण, चाँदनीयुक्त धवलरात्रि, यमुना का तट, त्रिविध समीर। ऐसे मोहक वातावरण में श्रीकृष्ण मुरली बजाते हैं।[५] वंशी की ध्वनि में ही गोपबालाओं का नाम लेते हैं, जिसे सुनकर गोपियाँ व्याकुल हो उठती हैं, जैसे किसी ने उन पर जादू कर दिया हो। जो जिस दशा में थीं, विवश और विह्वल होकर भाग पड़ती हैं। अत्यधिक प्रेम के कारण वे लोक-लज्जा और कुल-मर्यादा की चिन्ता नहीं करती हैं, पति-पुत्र-परिवार का मोह त्याग देती हैं। उल्टे-सीधे वस्त्र-आभूषण धारण कर वन की ओर दौड़ पड़ती हैं। किन्तु, वहाँ पहुँचने पर उन्हें विचित्र उपालम्भ सुनना पड़ा। कृष्ण ने कहा– 'तुम लोग रात में वन में क्यों आईं?

क्या मार्ग तो नहीं भूल गई हो? तत्काल अपने-अपने घर वापस जाओ'–

निसि काहै बन कौं उठि धाईं।
हँसि हँसि स्याम कहत हैं सुन्दरि की तुम ब्रज मारगहिं भुलाई।
जाहु जाहु घर तुरत जुवति जन खीजत गुरजन कहि डरवाई।।

(पद-१०११)

श्रीकृष्ण ने उन्हें पति-सेवा का उपदेश दिया। बताया कि पति चाहे वृद्ध, अभागा, पतित, मूर्ख अथवा रोगी ही क्यों न हो, लेकिन पत्नी को उसे त्यागना नहीं चाहिए। यही वेद मार्ग है–

इहि विधि वेद मारग सुनौ।
कपट तजि पति करौ पूजा कहा तुम जिय गुनौ।।
कंत मानहु भव तरौगी और नाहिं उपाइ।
ताहि तजि क्यों विपिन आईं कहा पायौ आइ।।
बिरिघ अरु बिन भागहूँ की पतित जौ पति होइ।
जऊ मूरख होइ रोगी तजै नाहीं जोइ।।

(पद-१०१६)

श्रीकृष्ण के इस उपदेश को सुनकर गोपबालाएँ स्तब्ध रह जाती हैं, हतप्रभ हो जाती हैं, व्याकुल हो उठती हैं, अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं। यह रहस्य उनकी समझ में नहीं आता। इधर नन्दलाल हँस रहे हैं, आनन्द ले रहे हैं–

स्याम उर प्रीति मुख कपट बानी।
जुवति व्याकुल भईं धरनि सब गिरि गईं आस गई टूटि नहिं भेद जानी।
हँसत नन्दलाल मन मन करत ख्याल ये भईं बेहाल ब्रजवाल भारी।।

(पद-१०१९)

गोपबालाएँ पुन: अनुनय-विनय करती हैं, अपने पूर्ण समर्पण का प्रमाण देती हैं। वे कहती हैं– व्रज में तुमसे बढ़कर हमारा कोई हितैषी नहीं है। कौन किसका पिता है? किसकी माता है? हम किसी को भी नहीं जानतीं। धर्म क्या है? पाप क्या है? इसका भी हमें ज्ञान नहीं है। हम एकमात्र तुम्हें ही जानती हैं। शेष संसार व्यर्थ है–

तुम पावत हम घोष न जाहिं।
कहा जाइ लैहें हम ब्रज यह दरसन त्रिभुवन नाहिं।।
तुमहूँ तैं ब्रज हितु न कोऊ कोटि कहौ नहिं मानैं।
काके पिता मातु है काकी काहू हम नहिं जानैं।।
काके पति सुत मोह कौन कौ घर ही कहा पठावत।
कैसौ धर्म पाप है कैसो आस निरास करावत।।

(पद-१०२१)

वे अपना निर्णय दृढ़ शब्दों में सुना देती हैं। उनकी दृष्टि में श्रीकृष्ण-प्रेम के बिना जीवन धिक्कार है, माता को धिक्कार है, पिता को धिक्कार है, घर को धिक्कार है, पुत्र-पति के ध्यान तक को धिक्कार है–

भवन नहीं अब जाहिं कन्हाई।
स्वजन बन्धु तैं भई बाहिरी वै क्या करै बड़ाई।।

जौ कबहूँ वै लेहिं कृपाकरि धिक वै धिक हम नारि।
तुम बिछुरत जीवन राखै धिक कहौ न आपु बिचारि।।

(पद-१०२४)

वस्तुत: गोपिकाओं की दृष्टि में 'सोइ कुलीन सोई बड़ भागिनी, जो तुव सन्मुख रहे सदाई।' उनके इस दृढ़ निश्चय को सुनकर श्रीकृष्ण उन पर अनुग्रह करते हैं और तब रासलीला प्रारम्भ होती है। इस लीला का रहस्य क्या है? बल्लभ दर्शन के अनुसार, भगवान् के आनन्दरूप के तिरोभाव से जीव-भाव का उदय हुआ है। अत: जीव का चरम लक्ष्य है– आनन्द की प्राप्ति। भगवान् रस रूप हैं, आनन्द रूप हैं। उनसे तादात्म्य ही जीवन की सार्थकता है। सामान्यत: जीव अविद्या से ग्रस्त रहता है। अविद्या विद्या से नष्ट होती है और तब भक्ति का उदय होता है। भक्ति दो प्रकार की मानी गयी है– मर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति। बल्लभाचार्य ने 'पुष्टि भक्ति' को श्रेष्ठ माना है। पुष्टि का अर्थ है– भगवान् का अनुग्रह– 'पोषणं तदनुग्रह:' (भागवत २।१०।४)। पुष्टि भक्ति ही सभी कार्यों की नियामक है। भक्ति में एक ऐसी अवस्था आती है, जब भगवान् स्वयं आकृष्ट होकर अनुग्रह करता है। इसी को आगम में 'शक्तिपात' कहते हैं। श्रीकृष्ण के मन में रासलीला का भाव जाग्रत होने का यही रहस्य है। गोपबालाओं के वन में पहुँचने पर कृष्ण उनकी परीक्षा क्यों लेते हैं? वस्तुत: पुष्टि-भक्ति का आधार गीता का वह श्लोक है, जिसमें कहा गया है कि सब धर्मों को छोड़कर केवल मेरी शरण में आ। मैं तेरे सभी पापों को दूर कर दूँगा। तू शोक मत कर–

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:।। (गीता-१८।६६)

यहाँ 'धर्म' शब्द विशेष रूप से विचारणीय है। धर्म 'धृ' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है– धारण करना। जीव ने जो कुछ धारण कर रखा है (What ever hold on to), जितने प्रकार के बंधन हैं, सभी का त्याग करके उसे भगवत्शरण में जाना चाहिए। ऐसी स्थिति आने पर ही भगवदनुग्रह होता है। यही भक्ति का लक्षण है– 'भक्ति निष्ठा तदा ज्ञेया यदा कृष्ण: प्रसीदति' (तत्व. नि. का.–१७)।

जब गोपिकाएँ सारे बंधन तोड़ लेती हैं, लौकिक-वैदिक मर्यादाओं से परे हो जाती हैं, संसारातीत हो जाती हैं, तब प्रभु का उन पर अनुग्रह होता है और रासलीला प्रारम्भ होती है। उनके पूर्ण समर्पण से प्रसन्न होकर कृष्ण कहते हैं– 'ये मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानतीं। ये विश्व की मर्यादा एवं लोक-लज्जा तिनके से भी हीन मानती हैं। इन्होंने मुझे सत्य रूप में पहचाना है। इनके हृदय में छल नहीं है।' सूर के शब्दों में–

मोहि बिना ये और न जानैं।
बिधि मरजाद लोक की लज्जा तृन हूँ तैं घटि मानैं।।
इति मोकौं नीकैं पहिचान्यौ कपट नहीं उर राख्यौ।
साधु साधु पुनि पुनि हरषित ह्वै मनहीं मन यह भाष्यौ।।

(पद-१०३२)

ब्रजनारियों का तप पूरा हुआ। उन्हें उसका फल मिला। कृष्ण कहते हैं– 'तुम लोग चित्त प्रसन्न करो, दु:ख छोड़ दो। मैं रासक्रीड़ा का विधान करता हूँ, सब लोग मिलकर आनन्द उठाओ'–

कियौ जिहि काज तप घोष नारी।
देहुँ फल हौं तुरत लेहु तुम अब घरी हरष चित करहु दुख देहु डारी।।

रास रस रचौं मिलि संग बिलसौ सबै विहँसि हरि कहीं जो निगम बानी।
हँसत मुख मुख निरखि बचन अमृत बरषि कृपा रस भरे सारंगपानी।।
(पद-१०३५)

यह रास सामान्य नहीं है। सभी जीव इसमें भाग लेने के अधिकारी भी नहीं हैं। इस रास की अधिकारिणी तो केवल गोपिकाएँ हैं। इसका मर्म वही समझ पाता है, जिस पर प्रभु का अनुग्रह हो और तत्त्व-ज्ञान होने पर जीव जब इसमें भाग लेता है, तो उसे ब्रह्मानन्द से भी श्रेष्ठ आनन्द की अनुभूति होती है। सूर के शब्दों में– 'यह अपार रस रास उपायो सुन्यो न देख्यौ नैन।' उन्होंने अन्यत्र रास की महिमा का उल्लेख इन शब्दों में किया है–

रास रस रीति नहिं बरनि आवै।
कहाँ वैसी बुद्धि कहाँ वह मन लहौ कहाँ यह चित्त जिय भ्रम भुलावै।।
जौ कहौं कौन मानै जो निगम अगम कृपा बिनु नहीं या रसहिं पावै।
भाव सो भजै बिनु भाव मैं ये नहीं भावहिं माँहि ध्यानहिं बसावै।।
(पद-१००६)

यह रासलीला अनिर्वचनीय है। सामान्य व्यक्ति की समझ से परे है। इस रस को भगवद्-अनुग्रह के बिना प्राप्त करना नितान्त असम्भव है। जिसमें सच्ची भक्ति होती है और उस भाव में सच्चा ध्यान लगता है, वही उसे पा सकता है। बिना भाव के उसकी प्राप्ति असम्भव है। इस रास के समक्ष शिव की समाधि भंग हो जाती है, देवता और ऋषि-मुनि भी मोहित हो जाते हैं– 'सुर नर मुनि मोहित सब कीन्हें, शिवहिं समाधि भुलान्यो।' देवगण अपनी बधुओं समेत विमान में चढ़कर इस अलौकिक दृश्य को देखते हैं और जय-जयकार करते हैं– 'धनि ब्रज लोग धन्य ब्रज बाला, बिहरत रास गुपाल। धनि बंसी वट धनि जमुना तट, धनि धनि लता तमाल।।'

रासलीला के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण ने मुरलीवादन किया था। उसके स्वर से आकृष्ट होकर ही गोपिकाएँ दौड़कर आई थीं। मुरली का भी आध्यात्मिक महत्त्व है। सूरदास ने मुरली पर अनेक पदों की रचना की है। श्रीमद्भागवत में 'वेणुगीत' नाम से इसका वर्णन है। वेणुगीत से भगवान् के नामात्मक स्वरूप का बोध होता है। कृष्ण के द्वारा मुखरित मुरली की ध्वनि चराचर को मोहित करती है। जीव उसमें तन्मय हो जाता है। उसकी सांसारिक आसक्ति नष्ट हो जाती है। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने 'वेणु' की व्याख्या करते हुए कहा है– 'व' का तात्पर्य है– ब्रह्मसुख, 'इ' का अर्थ है– सांसारिक सुख और 'अणु' का अर्थ है– नगण्य। इस प्रकार, वेणु वह साधन है, जिसकी ध्वनि सुनने से जीव को सांसारिक सुख तुच्छ प्रतीत होने लगता है और वह अतीन्द्रिय आनन्द में लीन हो जाता है। इस मुरली-ध्वनि को सुनकर बैकुण्ठ स्थित नारायण भी चकित हो जाते हैं और लक्ष्मी से कहते हैं कि वह वृन्दावन-धाम धन्य है, जहाँ कृष्ण विलास करते हैं। वैसा आनन्द तीनों लोकों में नहीं है–

मुरली धुनि बैकुण्ठ गई।
नारायण कमला सुनि दंपति अति रुचि हृदय भई।।
सुनौ प्रिया यह बानी अद्भुत वृन्दावन हरि देखौ।
धन्य धन्य श्रीपति मुख कहि कहि जीवन ब्रज कौ लेखौ।।
रास बिलास करत नंद नंदन सो हमतैं अति दूरि।
धनि बन धाम धन्य ब्रज धरनी उड़ि लागै जौ धूरि।।
(पद-१०६४)

मुरली-ध्वनि का प्रभाव सर्वव्यापी है। इसके श्रवण से चेतन जड़ हो जाते हैं और जड़ चेतन। इसका स्वर स्वर्ग, पाताल और दसों दिशाओं में व्याप्त हो जाता है–

जब हरि मुरली नाद प्रकास्यौ।
जंगम जड़ थावर चर कीन्हे पाहन जलज बिकास्यौ।।
स्वर्ग पताल दसौं दिसि पूरन ध्वनि आच्छादित कीन्हौ।
निसि हरि कल्प समान बढ़ाई गोपिनि कौ सुख दीन्हौ।। (पद-१०६६)

इस प्रकार, रास का लौकिक-आध्यात्मिक– दोनों दृष्टियों से विशेष महत्त्व है। लौकिक दृष्टि से यह अत्यन्त जनप्रिय लोकनृत्य रहा है। इस अवसर पर विशेष प्रकार के गीत गाए जाने तथा विविध प्रकार के वाद्य-वादन की भी परम्परा रही है। सूरदास भी रासलीला के अवसर पर गान और वाद्य-वादन का उल्लेख करते हैं। श्याम ताल देते हैं और ब्रजांगनाएँ नाचतीं हैं। श्रीकृष्ण अपने ओष्ठ पर उपंग नामक वाद्य धारण कर नई-नई तानें निकालते हैं। मँजीरा, पखावज, रबाब, वीणा और सारंगी से संगीत-रस प्रवाहित हो रहा है, जिसमें मृदंग का शब्द भी गुञ्जित हो रहा है–

उघटत स्याम नृत्यति नारि।
धरे अधर उपंग उपजै लेत हैं गिरिधारि।।
ताल मुरज रबाब बीना किन्नरी रस सार।
सबद संग मृदंग मिलवत सुघर नंद कुमार।।

(पद-१०५९)

शारदीय रास के साथ ही सूरदास ने 'वासंती रास' का भी वर्णन किया है। वासंती रास को 'फागु' भी कहते हैं। वसंत ऋतु में गाए जाने के कारण और शारदीय रास के अन्तर का बोध कराने के निमित्त इसे 'फागु' कहा गया। 'फागु' शब्द संस्कृत के 'फल्गु' से निष्पन्न है, जिसके कई अर्थ मिलते हैं, जैसे– वसंत ऋतु, वसंतोत्सव, होली आदि। फाल्गुन वसंत ऋतु का एक महीना भी होता है। इस प्रकार, फागु का सम्बन्ध फागुन महीने में होली के अवसर पर अथवा वसंत के उल्लासमय वातावरण में गाये जाने वाले गीत से प्रतीत होता है। उत्तर भारत में अब भी वसंत और होली के अवसर पर फागु या फगुआ गाए जाने का प्रचलन है। नृत्य और गीत उसके प्रधान तत्त्व होते हैं। ११वीं-१२वीं शताब्दी में हिन्दी में अनेक फागु काव्य लिखे गये, जैसे– वसंत विलास फागु, भ्रमरगीत फागु, हरिविलास फागु, विरह देसाउरी फागु आदि। सूरदास ने भी इसी परम्परा में वासंती रास अथवा फागु का चित्रण किया है। वसंत ऋतु के मादक वातावरण में गोपबालाओं तथा कृष्ण के मध्य आयोजित इस मनोरम लीला के विविध चित्र सूरसागर में मिलते हैं, जैसे–

आयौ आयौ पिय ऋतु वसंत। दंपति मन सुख बिरह अंत।
फागु खेलावहु संग कंत। हा हा करि तृन गहति दंत।।

× × ×

इत श्री राधा उत श्री गिरिधर, इत गोपी उत ग्वाल।
खेलत फागु रसिक ब्रज बनिता, सुन्दर स्याम तमाल।।

× × ×

हरि संग खेलति हैं सब फाग।
इहिं मिस करति प्रगट गोपी, उर अंतर कौ अनुराग।।

वस्तुत: सूरदास में भी तुलसीदास के समान लोक-वेद का समन्वय मिलता है। उन्होंने लौकिक रीतियों को अध्यात्म के उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। फागु की लोक-प्रचलित क्रीड़ा को भी उन्होंने भक्ति-तत्त्व से समन्वित कर दिया है। उनकी दृष्टि में यह रास सामान्य नहीं है। वृन्दावन ही वह बैकुण्ठ है, जो प्रभु का नित्य लीलाधाम है। बैकुण्ठ का तात्पर्य है– 'विगता कुण्ठा यस्मात्' अर्थात् जीवन की वह अवस्था, जिसमें सभी कुण्ठाएँ समाप्त हो गयी हैं। ब्रजबालाएँ समस्त कुण्ठाओं से परे हैं और शाश्वत आनन्द में निमग्न हैं। यह लीला एक समय में नहीं हुई थी, अपितु उसका क्रम निरन्तर चलता रहता है–

नित्य धाम वृन्दावन स्याम। नित्य रूप राधा ब्रज वाम।।
नित्य रास, जल नित्य विहार। नित्य मान, खंडिताभिसार।।
ब्रह्म रूप येई करतार। करन हरन त्रिभुवन येइ सार।।
नित्य कुंज सुख नित्य हिंडोर। नित्यहि त्रिविध समीर झकोर।।

(पद-२८४५)

इस नित्यलीला में भाग लेने का अधिकारी बन जाना ही भक्त के जीवन का लक्ष्य होता है। वैष्णव भक्त प्रभु में अपनी सत्ता का विलीनीकरण नहीं चाहता। उसका लक्ष्य होता है– भगवान् की लीला में सहभागी बनना। इसीलिए वह सालोक्य या सामीप्य चाहता है, सायुज्य या सारूप्य नहीं। वेदान्त के अनुसार, ब्रह्म सत्, चित् और आनन्दमय है। वैष्णव भक्तों ने आनन्द को ही प्रेम या रस माना है। रास का प्रयोजन इसी रस या आनन्द की प्राप्ति है।

सन्दर्भ-सूची

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका (सम्पूर्णानन्द स्मृति अंक), पृष्ठ २२९
२. श्रीमद्भागवत (द्वितीय खण्ड), पृष्ठ ३३०
३. रास और रासान्वयी काव्य, परिचय, पृष्ठ ४
४. **षोडस सहस नारि संग मोहन, कीन्हों सुख अवगाधि।** सूरसागर, पद-१७७४

× × ×

गईं सोरह सहस हरि पै, छाँड़ि सुत पति नेह। सूर., पद-१६२५
५. **सरद निसि देखि हरि हरष पायौ।**
विपिन वृन्दा रमन सुभग फूले सुमन रास रुचि श्याम के मनहिं आयौ।। पद-१९८८

●

रामचरित मानस में राम के भक्तगण

प्रो. श्रद्धा सिंह*

निर्गुण-निराकार ब्रह्म के लिए अज, अनादि, अनंत, अनीह, अखण्ड आदि विशेषताओं की चर्चा की जाती है और और सगुण-साकार ब्रह्म को अवतार के रूप में जाना जाता है, जो निराकार होने के बावजूद आकार धारण करता है– नाम, रूप, गुण, लीला और धाम से सम्बद्ध। इस आकार धारण करने अथवा अवतार लेने का कारण गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को बतलाया है कि–

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनाम विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।

अर्थात् हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अपने रूप को प्रकट करता हूँ। साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए, दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिए तथा धर्म-स्थापन के लिए मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ। परन्तु रामचरित मानस में शिव जी का मत है कि– **'हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जान न कोई।'**

अर्थात् हरि के अवतार का कारण 'बस यही है'– ऐसा कोई एक कारण नहीं बताया जा सकता। फिर भी; शास्त्रों का मत तथा स्वयं अपना विचार प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि–

जब-जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।
असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु।।
जग बिस्तारहिं बिसद जस, राम जनम कर हेतु।।

भगवान् के अवतार का यह कारण गीता के कथन से मिलता-जुलता है। परन्तु शिव जी इतने पर ही नहीं रुकते। आगे यह भी कह देते हैं कि–

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं।।

अर्थात् भगवान् अपने भक्तों के लिए ही शरीर धारण करते हैं। उनके इस कथन की पुष्टि पार्वती से कही गयी उनकी एक अन्य उक्ति से भी होती है–

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।

अर्थात् निर्गुण-निराकार ब्रह्म भक्तों के प्रेम-वश सगुण ईश्वर बन जाता है। इसी प्रकार, एक अन्य स्थान पर जब देवता विचार कर रहे थे कि प्रभु को कहाँ पावें, उस समय अवसर पाकर शिव जी ने बतलाया कि–

हरि ब्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होई मैं जाना।।
देसकाल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।।
अग जग मय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।।

अर्थात् जैसे ताप पाकर दारु से अग्नि पैदा होती है, उसी प्रकार भक्तों का प्रेम देखकर

* आचार्य– हिन्दी विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-२२१००५

भगवान् प्रकट होते हैं। शिव जी ने शास्त्रों के अनुसार गीता का मत प्रकट किया, परन्तु उनका और मानसकार तुलसी का निश्चित मत यही था कि भगवान् केवल भक्तों को सुख देने के लिए ही, उनके प्रेम के वशीभूत होकर मानव रूप धारण करते हैं। वे अन्य अनेक स्थलों पर यही बात दुहराते हैं। जैसे कि–

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद।।
ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप।।

रामचरितमानस के अंत में, उपसंहार के रूप में तुलसी कहते हैं–

ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप।।

देवताओं के गुरु बृहस्पति का भी यही मत है कि–

अगुन अलेप अमान एक रस। राम सगुन भए भगत प्रेम बस।।

स्वयं भगवान् राम ने भी स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की प्रार्थना पर 'प्रेम ते प्रकट होइ भगवान्' के सिद्धांत को सार्थक करते हुए, साकार होकर वरदान दिया था कि–

इच्छामय नर बेष सँवारे। होइहउँ प्रकट निकेत तुम्हारे।।
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहहुँ चरित भगत सुखदाता।।

और शबरी को विश्वास दिलाया कि–

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानहुँ एक भगति कर नाता।।

अर्थात् मैं तो केवल भक्ति का ही नाता मानता हूँ और कोई दूसरा नाता नहीं मानता। अस्तु, भगवान् के अवतार का कारण भी केवल भक्ति के नाते के कारण है। अधम अभिमानी असुरों के विनाश के लिए सर्वशक्तिमान ब्रह्म को साकार होने की कोई आवश्यकता नहीं, बिना साकार हुए भी अधर्मियों का नाश किया जा सकता है। परन्तु भक्तों को सुख देने वाली लीला करने के लिए साकार होना परमावश्यक है और इसी कारण भगवान् राम सगुण रूप धारण भी करते हैं–

भए प्रकट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी
.....माता पुनि बोली सो मति डोली तजहुँ तात यह रूपा
कीजै सिसु लीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा

निर्गुण और निराकार ब्रह्म ने जो सगुण और साकार रूप भगवान् राम का धारण किया, वह भक्तों को सुख देने के लिए ही था। अस्तु, भक्तगण राम-कथा के विशेष पात्र हैं। इसलिए रामचरित मानस में भगवान् राम के साथ-ही-साथ भक्त भी हैं और ये भक्त भी एक-दो नहीं, अगणित और असंख्य हैं। उनमें स्त्री भी हैं, पुरुष भी; द्विज भी हैं, शूद्र भी; साधु-सन्यासी भी हैं और गृहस्थ ब्रह्मचारी भी; राजा भी हैं, रंक भी; पशु भी हैं, पक्षी भी; किन्नर-गंधर्व भी हैं और राजर्षि-देवर्षि भी। स्वयं देवी-देवता और राक्षस-राक्षसी भी राम के भक्त हैं।

शिव जी भगवान् राम के सबसे बड़े भक्त हैं। देवर्षि नारद से भगवान् राम ने स्वयं कहा–

कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे।।

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी।।

मानस के अन्य भक्तों– भरत, लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, सीता, अंगद, शबरी, निषाद, काग भुशुण्डि, जटायु, ऋषि-मुनि, देवगण, राक्षस आदि की तरह ही शिव जी की भक्ति भी सेवक-सेव्य भाव की ही है। सेवक के अतिशय कठोर धर्म का उन्होंने पूर्ण निर्वाह किया था। राम की परीक्षा के लिए सीता का छद्म वेश धारण करने वाली सती से उन्होंने प्रीति करना ही छोड़ दिया था। इसके लिए स्वयं आकाशवाणी द्वारा उन्हें साधुवाद मिला था–

जय महेस भलि भगति दृढ़ाई

अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। राम भगत समरथ भगवान्।।

यद्यपि सती का कोई अपराध नहीं था और यदि अपराध था भी, तो केवल यही कि राम को 'नर अनुसारी' कार्य करते देखकर उन्होंने शंका प्रकट की थी कि राम परमेश्वर नहीं हैं और शिव जी के समझाने पर भी उनकी शंका का किसी प्रकार समाधान नहीं हुआ। उन्होंने जो राम की परीक्षा लेने का विचार किया था, वह भी शिव जी की आज्ञा-स्वरूप ही था, क्योंकि स्वयं उन्होंने परीक्षा लेने की बात कही थी–

जो तुम्हरे मन अति संदेहू। तौ किनि जाइ परीछा लेहू।।

परन्तु सती ने जो भगवती सीता का रूप धारण किया था, वही स्वामि-भक्त शिव जी की दृष्टि में अक्षम्य अपराध था। वे मन ही मन विचार करते हैं कि–

जौ अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती।।

और अंत में संकल्प लेते हैं- **एहि तन सतिहिं भेंट मोहि नाही।**

केवल इतना ही नहीं, दक्ष-यज्ञ में जब सती ने अपना शरीर भस्म किया, तब से शिव जी ने विरक्त भाव से अपने स्वामी राम के चरण-कमलों में ही प्रीति करने का दृढ़ संकल्प ले लिया और ध्यान में चले गए। तब भगवान् राम ने ही प्रकट होकर उनसे विनती की–

अब बिनती मम सुनहु सिव जौ मो पर निज नेहु।

जाइ बिबावहु सैलजहिं यह मोहि मागें देहु।।

तब अनुचित समझते हुए भी स्वामी की आज्ञा का पालन करने के निमित्त उन्होंने पार्वती से विवाह करना स्वीकार किया। स्वयं शिव जी कहते हैं–

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ।।

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा ।।

स्वामि-भक्ति की इस मर्यादा का केवल शिव जी ही पालन कर सकते थे। तभी तो याज्ञवल्क्य मुनि ने कहा कि–

सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती अस नारी ।।

पनु करि रघुपति भगति दिखाई। को सिव सम रामहिं प्रिय भाई ।।

वैसे तो शिव जी शीघ्र ही संतुष्ट होने वाले 'आशुतोष' और 'अवढर दानी' हैं, परन्तु जिनमें राम की भक्ति नहीं, उनपर उनके रोष का ठिकाना नहीं, फिर चाहे वह उनकी प्रिया पार्वती ही क्यों न हों? परन्तु जो राम के भक्त हैं, शिव जी उनका अत्यधिक आदर करते हैं। इसीलिए तो सती को साथ लेकर वे स्वयं कुम्भज ऋषि के पास जाते हैं और काग भुशुण्डि से अत्यधिक सुहृद भाव रखते हैं। राम के भक्तों में जो-जो गुण आवश्यक हैं, शिव जी में वे सभी गुण अपनी पराकाष्ठा

में मिलते हैं।

तुलसीदास ने राम-कथा में शिव-चरित को इतना महत्त्व दिया है, उसका कारण यही जान पड़ता है कि शिव जी को राम का भक्त प्रमाणित किए बिना राम-कथा का समुचित प्रचार नहीं हो सकता था।

भरत और लक्ष्मण जन्म से तो राम के कनिष्ठ भ्राता थे, परन्तु मन-वचन और कर्म से दोनों ही भाई राम के बड़े आज्ञाकारी सेवक और भक्त थे। सेवक-धर्म के असि-धार तुल्य कठोर व्रत का पूर्ण निर्वाह भरत और लक्ष्मण– दोनों भाइयों ने किया– एक ने छाया के समान सर्वदा साथ-साथ रहकर और दूसरे ने सर्वदा दूर-दूर रहकर। भरत ने तो इसकी पराकाष्ठा कर दी थी। ननिहाल से लौटने पर जब उन्होंने अपने प्रभु श्रीराम का वन-गमन सुना, तब उन्हें 'पितु-मरन' भी भूल गया। जननी के प्रति शील और शिष्टाचार का जो परम्परागत धर्म है और जिसका पालन वे राम ही के समान सर्वदा करते रहे हैं, वह भी उन्हें सहसा विस्मरण-सा हो गया। पिता ने उन्हें अवध का राज्य दिया था, यह बात भी वे एकदम भूल गए। गुरु, परिजन और पुरजन का उपदेश जैसे वे सुन ही नहीं पाए। उन्हें उस समय बस एक ही बात याद आ रही थी कि– **'मोहि लगि भे सिय राम दुखारी।'**

और इससे भी बढ़कर एक बात जो उन्हें निरन्तर काँटे के समान खटक रही थी, वह यह थी कि संसार माता की इस कुटिलता में उनकी भी सहमति समझेगा। संसार को तो वे किसी प्रकार समझा नहीं सकते, परन्तु माता कौशल्या के आगे वे अपने को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए शपथ खाते हैं कि–

जे अघ मातु पिता सुत मारे। गाइ गोंठ महिसुर पुर जारे।।
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें।।
जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं।।
ते पातक मोहिं होऊँ बिधाता। जौ यहु होइ मोर मत माता।।

और स्वामी राम के सामने तो वे अपने को निर्दोष प्रमाणित करने की भी इच्छा नहीं रखते, वरन् सब अनर्थों का मूल अपने को ही मान वे कह उठते हैं–

महि सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिंउँ सब सूला।।
सुनि बन गमन कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लषन सिय साथा।।
बिनु पानहिन्ह पयादेहिं पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि धाएँ।
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू।।
अब सबु आखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई।।
जिन्हहिं निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस छीछी।।
तेइ रघुनंदनु लखनु सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैउ सहावहि काहि।।

मैं ही सारे अनर्थों का मूल हूँ, यह सुन और समझकर मैंने सब दु:ख सहा। (पृ. ४८९, अयोध्या काण्ड)

राम और कौशल्या के सामने अपनी निर्दोषिता प्रमाणित होने पर भी राम का वन-गमन उन्हें काँटे की तरह खल रहा था। गुरु वशिष्ठ ने उन्हें सब प्रकार से नीति और धर्म की शिक्षा दी। माता कौशल्या ने भी उन्हें समझाया–

पूत पथ्य गुरु आयसु अहहीं।
सो आदरिअ करिअ हित जानी। तजिय बिषादु काल गति जानी।।

फिर भी; उन्हें एक भी बात समझ में नहीं आयी, क्योंकि उनका तो निश्चित मत था कि–

हित हमार सिय पति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई। (२/१७७)

इस प्रकार, उन्होंने अपनी बात से सबको जीत लिया और अपने सेवक-धर्म का पालन किया। वन जाते समय राम ने जहाँ-जहाँ विश्राम किया था, उस स्थान को भी स्वामी के सम्पर्क से पवित्र जानकर वे दण्डवत प्रणाम करते हैं–

जहँ सिंसुपा पुनीत तर, रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हेहु दंड प्रनामु।।
कुस सांथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदछिन जाई।।
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई।। (पृ. ४३३)

निषादराज गुह के यहाँ जिस पवित्र अशोक के वृक्ष के नीचे श्रीराम-जानकी ने विश्राम किया था, भरत जी ने वहाँ अत्यन्त प्रेम से आदरपूर्वक दण्डवत किया। कुशों की साथरी देखकर उसकी प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया। श्रीराम के चरण-चिह्नों की रज आँखों में लगाई। उस समय प्रेम की अधिकता कहते नहीं बनती।

अपने सेवक-धर्म का पालन करने के प्रति वे इतने निष्ठावान हैं कि 'सुरसरि' पार करके वे पैदल ही चलते हैं। अश्व पर आरूढ़ होने से मना कर देते हैं–

राम पयादेहिं पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए ।
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सबते सेवक धर्म कठोरा ।।

जिस पथ पर राम पैदल ही चले हैं, उस पथ पर रथ, गज पर यात्रा करने का तो प्रश्न ही नहीं। उसपर तो भरत का पैदल चलना भी नितांत अनुचित है, क्योंकि जहाँ स्वामी के चरण पड़े हैं, वहाँ सेवक के चरण नहीं; मस्तक पड़ना चाहिए। यही सेवक धर्म है।

भरत के सेवक-धर्म की सबसे बड़ी परीक्षा भरद्वाज मुनि के आश्रम में हुई थी, जबकि मुनि के आदेश से सभी ऋद्धि-सिद्धियों ने भरत जैसे अतिथि के सत्कार के लिए 'बिधि बिसमय दायकु बिभव' (ब्रह्मा को भी चकित कर देने वाला वैभव) उपस्थित कर दिया। आसन, सेज, सुन्दर वस्त्र, चँदोवे, बगीचे, भाँति-भाँति के पशु-पक्षी, सुगंधित फूल और अमृत के समान स्वादिष्ट फल, खान-पान, कामधेनु, कल्पवृक्ष, सुंदरियाँ, अप्सराएँ आदि। लेकिन वहाँ भरत ने जैसे रात बिताई, उसका वर्णन तुलसी ने एक रूपक के द्वारा अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है–

सम्पति चकइ भरत चक, मुनि आयस खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजरा, राखे भा भिनुसार।।

सम्पूर्ण वैभव के बीच रहकर भी सच्चे सेवक भरत ने उसका मन से भी स्पर्श नहीं किया। सम्पत्ति अथवा भोग-विलास की सामग्री चकवी है और भरत जी चकवा हैं और मुनि की आज्ञा खेल है, जिसने उस रात को आश्रम रूपी पिंजड़े में दोनों को बंद कर दिया। किन्तु ऐसे ही सबेरा हो गया। जैसे किसी बहेलिए के द्वारा एक पिंजड़े में रखे जाने के बावजूद चकवी-चकवे का रात को संयोग नहीं होता, वैसे ही भरद्वाज जी की आज्ञा से रात भर भोग की सामग्रियों के साथ रहने पर भी भरत जी ने मन से भी उसका स्पर्श तक नहीं किया। इस प्रकार, रास्ते भर सेवक-धर्म के अति कठोर धर्म का पालन कर वे अपनी अग्नि-परीक्षा के लिए चित्रकूट पहुँचते हैं। राम और

सीता को अयोध्या लौटाने के लिए वे स्वयं भाइयों समेत बनवास के लिए प्रस्तुत हैं और अन्त में प्रभु-पादुका को सिंहासन पर आसीन कर, शीश नवाकर, नंदीग्राम में पर्णकुटी बनाकर, सिर पर जटाजूट और शरीर पर मुनियों का वल्कल वस्त्र धारण कर ऋषियों के कठोर व्रत का आचरण करने लगे। प्रभु-पादुका से आज्ञा माँगकर वे राज-कार्य भी चलाते और साथ ही; मुनि धर्म का पालन भी करते रहते थे।

लक्ष्मण ने भी सेवक-धर्म का पूरा निर्वाह किया। यद्यपि सेवक-धर्म की अग्नि-परीक्षा देने का ऐसा स्वर्ण सुयोग उन्हें प्राप्त नहीं हुआ, जैसा कि शिव जी और भरत को प्राप्त हुआ था, फिर भी; स्वामी की सेवा का जितना अवसर उनके हाथ आया, उसमें उन्होंने कोई भी त्रुटि नहीं की। राम के वन जाने का समाचार सुनते ही वे–

ब्याकुल बिलख बदन उठि धाये।।
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा।।
कहि न सकत कछु चितवन ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े।।

और जब भगवान् राम ने उन्हें घर पर ही रहकर माता-पिता की सेवा करने का समयानुकूल उपदेश दिया, तब सच्चे सेवक के समान उन्होंने कहा था कि–

नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त कहा बसाइ।।७१

हे नाथ! मैं दास हूँ और आप स्वामी है, आपको छोड़कर मैं कहाँ बसूँगा?

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाव नाथ पतिआहू।।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई।।
मोरे सबइ एक तुम स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी।।
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।।
मन क्रम बचन चरन रति होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई।।

आपको छोड़कर मैं गुरु, पिता, माता– किसी को नहीं जानता। जगत में जहाँ तक स्नेह का सम्बन्ध है, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेद ने गाया है– हे स्वामी! हे दीनबंधु! हे अंतरयामी! मेरे तो वे सब कुछ केवल आप ही हैं। धर्म और नीति का उपदेश तो उसे देना चाहिए, जिसे कीर्ति, विभूति या सद्गति प्यारी हो। किन्तु जो मन, वचन और कर्म से आपके चरणों में ही प्रेम रखता हो, हे कृपासिंधु! क्या वह भी त्यागने के योग्य है?

और लक्ष्मण के इन स्वामिभक्तिमय विनम्र शब्दों में इतना प्रबल सत्य था कि राम उन्हें घर पर नहीं छोड़ सके। वन जाते समय राम और सीता के पीछे-पीछे सेवक-धर्म की मर्यादा का पालन करते हुए वे किस प्रकार चल रहे हैं, इसका अद्भुत दृश्य देखिए–

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलत सभीता।।
सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ।। १२२/३

प्रभु श्रीरामचंद्र जी के जमीन पर अंकित होने वाले दोनों चरण-चिह्नों के बीच-बीच में पैर रखती हुई सीता जी, डरती हुई कि कहीं भगवान् के चरण-चिह्नों पर पैर न पड़ जाए, मार्ग में चल रही हैं और लक्ष्मण जी मर्यादा की रक्षा के लिए सीता और राम– दोनों के चरण-चिह्नों को बचाते हुए उन्हें दाहिनी ओर रखकर चल रहे हैं। लक्ष्मण स्वामी और स्वामिनी के चरण-चिह्नों को अपने से दाहिने रखते हुए चलते हैं, इस सीमा तक उन्होंने सेवक-धर्म का निर्वाह किया।

वन में पहुँच कर पर्णकुटी की रचना करना, रात के समय कुटी के द्वार पर प्रहरी बनकर

जागते रहना, स्वामी और स्वामिनी के लिए कंद-मूल-फल आदि की व्यवस्था करना लक्ष्मण का मुख्य कार्य था। जब महापराक्रमी राक्षसों से युद्ध ठन गया, तब उन्होंने बड़ी वीरता और उत्साह से अपना पराक्रम प्रदर्शित किया और इंद्रजीत मेघनाद जैसे दुर्धर्ष योद्धा का संहार किया। इस प्रकार, लक्ष्मण की सेवाएँ अतुलनीय हैं। इसीलिए तो स्वयं भरत को उनसे स्पर्द्धा हुई थी कि–

अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिन्दु अनुरागी।।

और भी, **जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरनु मन लावा।।**

लक्ष्मण ने राम के अत्यन्त निकट रहकर और भरत ने उनसे दूर रहकर कठोर सेवक-धर्म का पूर्ण निर्वाह किया।

हनुमान : भरत के पश्चात् राम के भक्तों मे पवनसुत हनुमान का ही नाम आता है। हनुमान के दैन्यभाव से प्रसन्न होकर भगवान् राम ने प्रथम मिलन में ही उन्हें आश्वासन दिया था कि–

सुनु कपि जनि मानसि जिय ऊना। तैं मम प्रिय लक्षिमन तें दूना।।

और उस दिन से हनुमान ने भगवान् की जो सेवा की, वह स्वयं भरत और लक्ष्मण के लिए भी स्पृहणीय थी। सेवक-धर्म के पालन में हनुमान भरत से भी बढ़कर हैं, क्योंकि भरत ने जहाँ केवल मन और वचन से ही कठोरतम सेवक-धर्म का पालन किया; वहाँ हनुमान ने मन, वचन और कर्म– तीनों से उसका पूर्ण निर्वाह किया। राम का कार्य करने के लिए ही हनुमान का अवतार हुआ था। उस सरल-प्रकृति भक्त को अपनी शक्ति और क्षमता का भी ज्ञान नहीं था, इसीलिए परमज्ञानी जामवंत को बतलाना पड़ा था कि–

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्याना निधाना।।
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होई तात तुम्ह पाहीं।।
राम काज लगि तव अवतारा।

और इतना ज्ञान हो जाने पर हनुमान ने कितने ही अद्‌भुत और अलौकिक कार्य किए– समुद्र लाँघकर सीता की खोज की, अक्षयकुमार आदि प्रचंड राक्षसों का वध कर लंकापुरी का दहन किया और सीता जी से चूड़ामणि चिह्न प्राप्त कर राम के दर्शन किए। उस समय जामवंत ने हनुमान की प्रशंसा करते हुए भगवान् राम से कहा था कि–

नाथ पवनसुत कीन्ह जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी।।

और स्वयं भगवान् राम ने भी प्रसन्न होकर कहा था कि–

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं।।

भगवान् की सेवा तो कितने ही व्यक्तियों ने की थी, परन्तु भगवान् से 'सुत' का सम्बोधन पाने का सौभाग्य केवल हनुमान को ही मिला था। स्वयं जानकी माता ने भी उन्हें 'सुत' कहा था। राम तो हनुमान की इतनी ही सेवा से उऋण नहीं हो सकते, परन्तु आगे चलकर तो उन्होंने और भी कितनी सेवाएँ कीं, लक्ष्मण का जीवन-दान जिनमें मुख्य है।

सुग्रीव और विभीषण

राक्षसराज रावण का छोटा भाई विभीषण और विश्वविश्रुत योद्धा बालि का छोटा भाई सुग्रीव भी भगवान् राम के प्रमुख भक्तों में थे और भगवान् के सखा-रूप में उनकी गणना थी। सुग्रीव और भगवान् राम में पहले मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हुआ। एक ने सीता की खोज का भार लिया,

दूसरे ने बालि के बध का। परन्तु यह मित्रता शीघ्र ही भक्ति में परिणत हो गयी, क्योंकि राम का परब्रह्मत्व सुग्रीव से छिपा नहीं रहा। ज्ञानोदय होते ही सुग्रीव ने भगवान् राम से निवेदन किया था कि–

नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला।
सुख सम्पति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई।।
ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक।।

परन्तु सुग्रीव अभी तक भगवान् का प्रिय भक्त नहीं बन सका था, क्योंकि यद्यपि उसे राम के परब्रह्मत्व का आभास तो मिल गया था, परन्तु अपनी दीनता का बोध उसे अभी भी नहीं हुआ था। उसमें उस दैन्यभाव का अभाव था, जिसके बिना कोई भी राम का प्रिय नहीं बन सकता। परन्तु उसे अपनी दीनता का ज्ञान प्राप्त करने में भी अधिक विलम्ब नहीं हुआ। राज्य, कोष, पुर और पत्नी पाकर जब सुग्रीव ने राम की सुधि भुला दी, तब किष्किन्धापुरी में क्रुद्ध लक्ष्मण को देखकर उसे अपनी दीनता का बोध हुआ। भगवान् राम के सामने आकर उसने अपनी दीनता प्रकट की थी कि–

अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया।।
बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पाँवर पसु कपि अति कामी।।
नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा।।
लोभ पाँस जेहिं गर न बधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया।।
यह गुन साधन तें नहिं हो। तुम्हरी कृपा पाव कोइ को।।

और यह दीन बचन सुनकर भगवान् ने उसे आश्वासन दिया था कि–

तुम प्रिय मोहि भरत जिमि भाई।

और फिर तो वह सभी बानरों को उपदेश करता है कि–

देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई।।
सोइ गुनग्य सो बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी।।

कपिराज सुग्रीव को भगवान् ने उसके पद और गौरव के अनुकूल सखा का पद दिया था और सभी कार्यों में वे उससे परामर्श लिया करते थे। विभीषण जब पहले-पहल भगवान् राम से मिलने आये थे, तब राम ने सुग्रीव से ही राय ली थी कि–

(कह प्रभु) सखा बूझिए काहा।

और सुग्रीव ने भी अपनी नीतिमत्ता का परिचय देते हुए सम्मति दी थी कि–

जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया।।
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिय बाँधि मोहि अस भावा।।

परन्तु विभीषण के आ जाने से मंत्र देने का कार्य विभीषण ही करने लग गए, क्योंकि राजनीति का ज्ञान उसमें विशेष था और सुग्रीव केवल सखा मात्र रह गए।

बल, बुद्धि, विक्रम तथा भक्ति-भावना में हनुमान ही कपियों में प्रधान थे, इसी कारण हनुमान के सामने सभी भक्तों का महत्त्व कम हो गया था। फिर भी; भगवान् राम सुग्रीव का आदर सबसे अधिक करते थे। इसीलिए सुबेल शैल पर भगवान् सुग्रीव की गोद में सिर रखकर विश्राम करते दिखाए गए हैं और रामराज्य के पश्चात् जब सब सखाओं की विदाई होने लगी, तत्र सुग्रीव को ही सर्वप्रथम वस्त्राभूषण पहनाया गया था–

सुग्रीवहिं प्रथमहि पहनाए। बसन भरत निज हाथ बनाए।।

सुग्रीव को राम के परब्रह्मत्व और अपनी दीनता का ज्ञान भगवान् राम से मिलने के पश्चात् ही हुआ था, परन्तु इसके विपरीत विभीषण को राम से मिलने के पहले ही उनके परब्रह्मत्व का पूर्ण ज्ञान था। इसीलिए तो उसने रावण को समझाया था कि–

तात राम नहि नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहुँ कर काला।।
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता।।
गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तन धारी।।
जन रंजन भंजन खल त्राता। वेद धर्म रच्छकु सुनु भ्राता।।
ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा।।

और साथ ही; उन्हें अपनी दीनता का भी पूर्ण ज्ञान था। इसीलिए तो लंका में जब हनुमान से अचानक भेंट हो गई, तो उन्होंने पूछा था कि–

तात कबहुँ मोहिं जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानु कुल नाथा।।
तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं।।

और भगवान् के सामने पहुँचकर उन्होंने अपनी दीनता ही प्रदर्शित की थी कि–

नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता।।
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहिं तम पर नेहा।।

अस्तु, विभीषण के लिए भगवान् राम की शरण में जाने के अतिरिक्त और कोई दूसरा मार्ग ही न था । यह सत्य है कि रावण, कुम्भकर्ण, मारीच आदि अन्य राक्षसों को भी राम के परब्रह्मत्व का ज्ञान था, परन्तु उन्होंने राम की शरण में जाने का कभी विचार भी नहीं किया, वरन् भगवान् के बाणों से मृत्यु पाना ही अधिक श्रेयस्कर समझा। रावण, कुम्भकर्ण आदि में जहाँ राम के परब्रह्मत्व का ज्ञान था, वहाँ अपनी दीनता का बोध तनिक भी नहीं था, इसीलिए उन्होंने वैर-भाव से भक्ति करने का विचार किया। परन्तु विभीषण को अपनी दीनता का भी पूर्ण ज्ञान था और भगवान् की भक्त-वत्सलता और शरणागत-वत्सलता पर भी पूर्ण विश्वास था। भगवान् राम की शरण में जाने में जो उन्होंने इतना विलम्ब किया, उसका कारण सम्भवत: यही था कि अपनी दीनता और हीनता के कारण उन्हें भगवान् के पास जाने में संकोच हो रहा था। परन्तु जब हनुमान ने उन्हें राम की यह विशेषता बतायी कि–

सुनहु बिभीषण प्रभु की रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती।।

और अपना उदाहरण देकर समझाया कि–

प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिले अहारा।।
अस मैं अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुबीर।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर।।

तब उसे कुछ साहस हुआ और वह भगवान् की शरण में आए। शरणागत-वत्सल भगवान् ने भक्त के दीन वचन सुन उन्हें गले से लगा लिया और भक्त की इच्छा न रहते हुए भी अपने अमोघ दर्शन की मर्यादा की रक्षा के लिए विभीषण को लंका का राज्य दिया। जो सम्पदा रावण ने शिव जी को अपने दशों शीश चढ़ाकर प्राप्त की थी, वह सम्पदा विभीषण को सहज ही में, केवल दीन वचन कहने से मिल गये।

विभीषण नीति-निपुण और ज्ञानी तो थे ही, साथ-साथ वह संत और सज्जन भी चित्रित किए गए हैं। स्वयं भगवान् ने उससे कहा था कि–

तुम सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें।।
सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्ह के द्विज पर प्रेम।।
सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। तातें तुम अतिसय प्रिय मोरें।।

भारतीय नीति-परम्परा में विभीषण कुलद्रोही माने गए हैं। कहावत भी है– 'घर का द्रोही, लंका ढाए' और इसका संकेत विभीषण की ही ओर है। परन्तु भक्ति-परम्परा में भगवान् राम की जिस पर कृपा हो, वह सन्त और सज्जन छोड़ कुलद्रोही हो ही कैसे सकता है? इसीलिए विभीषण को भी संत और सज्जन बनाने की नितांत आवश्यकता जान पड़ी। साधारण व्यक्तियों के कहने से विभीषण को सज्जन और संत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता था; इसीलिए स्वयं भगवान् राम के श्रीमुख से उन्हें संत, सज्जन और गुणनिधान कहलाया गया है। विपत्ति के अवसर पर पिता-तुल्य बड़े भाई के त्याग का महापातक जो उन्होंने किया था, वह भी गुण बनाकर दिखाया गया है। विनय-पत्रिका में तुलसीदास जी लिखते हैं कि–

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।।
पिता तज्यो प्रहलाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी।।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनितन, भए सब मंगलकारी।।

राम का भक्त होने के कारण ही विभीषण को संत और सज्जन, ज्ञानी और कुलरक्षक कहा गया है, क्योंकि मानसकार का तो निश्चित मत है कि–

सोइ सर्वग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सो कुल त्राता। राम चरन जाकर मन राता।।

ऋषि और मुनि– तुलसीदास ने राम-भक्तों की जो विशद् प्रदर्शनी प्रस्तुत की है, उसमें वशिष्ठ और विश्वामित्र, अत्रि और अगस्त्य, सुतीक्ष्ण और शरभंग, भरद्वाज और वाल्मीकि जैसे ज्ञान और तपस्या के प्रतीक ऋषि और मुनि भी हैं। इन्हें राम का भक्त बनाकर मानसकार ने ज्ञान और तप के ऊपर भक्ति की विजय प्रदर्शित की है। ये ज्ञानी ऋषि और तपस्वी मुनि अपनी साधना और तपस्या के बल पर निगम-निरूपित 'नेति' के रूप में ब्रह्म का अनुभव प्राप्त कर चुके हैं, फिर भी; ब्रह्म के सगुण स्वरूप राम के ऊपर भी उनकी अनुरक्ति है।

राक्षस– सत्त्वगुण प्रधान ऋषि-मुनि और देवता तथा रजोगुण प्रधान सुग्रीव, हनुमान आदि भक्तों के अतिरिक्त तमोगुण प्रधान राक्षसवृंद भी राम के भक्तों में आते हैं। भेद केवल इतना है कि ये तामसी प्रवृत्ति के राक्षसगण भरत और लक्ष्मण, हनुमान और अंगद की भाँति दास्यभाव की भक्ति करने में असमर्थ होने के कारण अपनी प्रकृति के अनुरूप वैर-भाव से भगवान् का स्मरण करते हैं। खर-दूषण आदि के बध का समाचार सुनकर राक्षसराज रावण अपने मन में विचार करता है कि–

खर दूषण मो सम बलवंता। तिन्हहिं को मारे बिनु भगवंता।।
सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं जगदीस लीन्ह अवतारा।।
तौं मैं जाइ बयरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ।।
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र पढ़ एहा।
जौ नर रूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ।।

(अरण्य काण्ड–२२/१,२,३)

खर-दूषण तो मेरे ही समान बलवान थे। उन्हें भगवान् के सिवा कौन मार सकता है? देवताओं को आनन्द देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान् ने ही यदि अवतार लिया है, तो मैं जाकर हठपूर्वक उनसे वैर करूँगा और प्रभु के बाण से प्राण छोड़कर भवसागर से तर जाऊँगा। इस तामस शरीर से भजन तो न होगा; अतएव मन, वचन और कर्म से यही दृढ़ निश्चय है।

तामसी प्रकृति के अभिमानी राक्षस वैर-भाव से भगवान् को भजते हैं और स्वयं भगवान् राम भी वैर-भाव से स्मरण करने वाले इन राक्षसों को परमपद देकर उन्हें अपना भक्त स्वीकार करते हैं।

भगवान् की समुचित भक्ति के लिए केवल उनके परब्रह्मत्व का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, साथ ही; अपनी दीनता और हीनता का भी बोध होना आवश्यक है। परन्तु यह दैन्य-भाव सत्त्वगुण की प्रधानता से ही सम्भव है। इसी कारण, राक्षसों को जहाँ यह आभास अवश्य मिल जाता है कि राम परब्रह्म परमेश्वर ही हैं, मनुष्य नहीं; वहीं वे दैन्य-भाव के अभाव में भक्ति करने में असमर्थ ठहरते हैं। जिनके हृदय में काम, क्रोध आदि षड्रिपुओं का निवास है, वे दास्यभाव की भक्ति कर ही कैसे सकते हैं? अस्तु, वे भगवान् से वैर ठानकर अपने अभिमान की भी तुष्टि करते हैं और भगवान् के हाथों मृत्यु पाकर परमपद के भी अधिकारी बनते हैं । रावण के मुख से सारी कथा सुनकर निद्रा से उठा हुआ कुम्भकर्ण इतना तो समझ ही लेता है कि राक्षसराज ने जिससे शत्रुता ठानी है, उसकी सेवा शिव, विरंचि और देवतागण भी करते हैं। अस्तु, रावण की खोट (अहह बंधु तैं कीन्ह खोटाई) के लिए वह उसकी भर्त्सना भी करता है और अनुज विभीषण को राम की शरण में जाने के लिए साधुवाद भी देता है कि–

धन्य धन्य तैं धन्य विभीषण। भयउ तात निसिचर कुल भूषण।।
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर।।

परन्तु स्वयं वह न तो विभीषण की भाँति राम की शरण में जाने का विचार करता है, न भगवान् का भजन कर अपना लोक-परलोक सुधारने की बात ही सोचता है, वरन् इसके विपरीत–

महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना।।
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा।।

रावण भी इसी प्रकार भगवान् राम के वास्तविक स्वरूप का आभास पा हठ करके भगवान् से वैर मोल लेता है। मारीच, विभीषण, कालनेमि, मंदोदरी और कुम्भकर्ण तर्क और अनुमान से राम के भगवान् होने की बात उसे समझाते हैं, परन्तु वे स्वयं नहीं जानते कि राक्षसराज इन सभी बातों को भली-भाँति जानता है और जान-बूझकर ही उसने वैर मोल लिया है। अस्तु, जो उससे राम की वीरता और परब्रह्मत्व की बात कहता है, उससे वह अपने अद्भुत बल-वीर्य की बड़ाई किया करता है और इस प्रकार, अपने अहंकार और वैर-भाव को सदैव जाग्रत रखता है। विभीषण और मंदोदरी ने रावण को समझाने के लिए सबसे अधिक प्रयत्न किए थे। विभीषण का उपदेश सुनकर तो ज्ञानी राक्षसराज क्रुद्ध हो उठा–

खल तोहि मृत्यु निकट होइ आई।
जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा।।
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुजबल जाहि जिता मैं नाहीं।।
निज भुजबल मैं बयरु बढ़ावा। देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा।।

और लात मारकर उसे निकाल भी दिया। परन्तु मंदोदरी का तर्क और उपदेश सुनकर वह

प्राय: निरुत्तर हो जाता था। फिर भी; अन्त समय तक रावण ने अपने अभिमान और वैर-भाव को जाग्रत रखा। कुम्भकर्ण और मेघनाद आदि योद्धाओं की मृत्यु के पश्चात् जब राक्षस-सेना निराश और भयभीत हो चली थी, उस समय भी रावण ने यही कहा था–

निज भुजबल मैं वयरु बढ़ावा। देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा।।

और इस हठ-वैर के कारण अंत में उसे परमपद की प्राप्ति हुई, जिसकी याचना योगी लोग भी किया करते हैं।

सीता जी–मानस के राम यदि परब्रह्म परमेश्वर हैं, तो सीता जी भी आदि शक्ति हैं। भगवान् ने आकाशवाणी के रूप में देवताओं से पहले ही बतला दिया था कि– **'परम सक्ति समेत अवतरिहउँ।'** यह परम शक्ति अथवा आदि शक्ति और कोई नहीं, स्वयं ब्रह्म की माया ही हैं। भगवान् की शक्तिरूपा माया होने के कारण वे भगवान् को भी जानती हैं और स्वयं को भी। अज्ञानी जीव उन्हें किसी प्रकार नहीं जान सकता। सीता सब कुछ जानकर भी लौकिक नारी का अभिनय कर रही हैं। अस्तु, भगवान् राम ने ज्यों ही उन्हें आज्ञा दी कि–

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करब ललित नर लीला।।
तुम्ह पावक महँ करहु निवासा। जौ लगिं करौं निसाचर नासा।।

तब प्रभु के चरणों को हृदय में धारण कर वे अग्नि में समा गईं और अपनी छाया-मूर्ति को प्रभु के पास छोड़ दिया। उस छाया-मूर्ति को स्वयं लक्ष्मण तक ने वास्तविक सीता ही समझा। यही छाया-मूर्ति लक्ष्मण से मर्म वचन कहती है, रावण द्वारा हरी जाकर अशोक वाटिका में निवास करती है, राम-विरह में दीन और मलीन, रावण तथा राक्षसियों द्वारा त्रस्त हो कष्टपूर्वक दिन काटती है और अंत में रावण-वध के पश्चात् करुणानिधान भगवान् राम के दुर्वाद श्रवण पर अग्नि में अपने लौकिक कलंक सहित भस्म हो जाती है।

मानस में राम की भक्ति करने वाली सीता भी हैं। वह सीता वास्तविक सीता नहीं, उनकी छाया-मूर्ति हैं। जो भगवान् की आदि शक्ति माया हैं, वह उनसे अलग कैसे हो सकती हैं? और रावण जैसा तुच्छ राक्षस भगवान् की शक्ति-हरण में कैसे समर्थ हो सकता है? परन्तु लीला करके भक्तों को सुख देने वाले भगवान् के लिए नारद का शाप अंगीकार करने के कारण नारि-विरह का दु:ख भोगना आवश्यक था। इसलिए छाया-मूर्ति की सहायता से उन्हें लीला करनी पड़ी। यह छाया-मूर्ति भगवान् राम की अर्द्धांगिनी नहीं, भक्त मात्र हैं। भरत और लक्ष्मण आदि भक्तों की भाँति यह सीता राम की भक्त हैं और नित्य भगवान् का स्मरण और भजन करती रहती हैं। लंका की अग्नि-परीक्षा में यह छाया-सीता भस्म हो जाती है और अग्निदेव पुन: आदि शक्ति रूपा जगदम्बा जानकी को भगवान् के सम्मुख उपस्थित करते हैं। यह सीता राम की भक्त नहीं, अर्द्धांगिनी हैं। मानवी रूप में उन्होंने पतिव्रता पत्नी की मर्यादा स्थापित की।

इस तरह, मानसकार ने दो सीता की व्यवस्था कर भगवान् राम और भगवती सीता की मर्यादा की रक्षा भी कर ली, साथ ही; उन्होंने लौकिक नारी का पातिव्रत-धर्म और ईश्वर-भक्ति– दोनों का आदर्श एक साथ ही उपस्थित कर दिया।

इसके अतिरिक्त; अंगद, जामवंत, शबरी, निषाद, काग भुशुण्डि, जटायु, जनक, दशरथ आदि सभी राम के भक्त हैं। लौकिक दृष्टि से वे गुरुजन, परिजन, भाई, बंधु, सखा और शत्रु– सबकुछ हैं, परन्तु वास्तव में; वे केवल सेवक और भक्त हैं। रामचरित मानस भक्तों की एक बृहद प्रदर्शनी है।

●

हिन्दी साहित्य में नारी

प्रो. मंजुला राना*

नारी, जिसे आधी दुनिया या आधी आबादी की संज्ञा से विभूषित किया जाता है, वास्तव में; वह एक सर्वनाम है। उसे विशेषण तो बहुत से मिले, परन्तु अपना नाम, अपनी पहचान कभी नहीं मिली। इसी गुमशुदा पहचान को दर्ज करने की पहल ही स्त्री-लेखन का पर्याय है। रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में– ''औरतों के नाम खुद औरतों को याद नहीं रहते। उनसे नाम छीन लिए जाते हैं, ताकि कोई अलग पहचान ना बना सके। नामविहीन व्यक्ति चेहराविहीन हो जाता है पहले, फिर भावहीन, विचारहीन, व्यक्तित्वहीन। औरत की पहली लड़ाई अपना नाम पाने की होनी चाहिए। अपनी अलख जगाता, धुनी रमाता नाम।''[१] पुरुष-वर्चस्व में दोयम स्थिति पर जीने वाली नारी की प्रत्येक पहल को नकारने, उसकी सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगाने की कोशिश की गयी, लेकिन तमाम वर्जनाओं के बावजूद जीवन और लेखन– दोनों जगह नारी अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करवाने में सफल हुई। हिन्दी साहित्य के प्रत्येक युग में स्त्री-रचनाकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, यह बात और है कि शताब्दियों तक साहित्य की मुख्यधारा में नारी के अवदान को रेखांकित नहीं किया गया। इक्का-दुक्का लेखिकाओं को छोड़कर हिन्दी साहित्य के इतिहास में महिला-लेखन का कहीं कोई उल्लेख नहीं है, जबकि संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' की रचना में बीस विदुषियों का योगदान था। इनमें रोमशा, अपाला, उर्वशी, विश्ववासा, लोपामुद्रा और घोषा प्रमुख हैं। इन विदुषियों ने ईश-आराधना और प्रकृति-चित्रण पर आधारित सूक्तों की रचना करके अपनी प्रखर मेधा का परिचय दिया था। परन्तु स्त्री-प्रश्न का प्रथम लिखित दस्तावेज 'थेरीगाथा' को ही माना जाता है। बौद्ध धर्म के ग्रन्थ 'सुत्तपिटक' के पाँच निकायों में से एक 'खुद्दक निकाय' के नौवें भाग में ७३ बौद्ध भिक्षुणियों की थेरीगाथाएँ संकलित हैं। ''थेरीगाथा सम्भवत: महिलाओं द्वारा रचित सबसे प्राचीन साहित्य है, लगभग पच्चीस सौ वर्ष पुराना। इसमें स्त्रियों की मुक्ति-कामना को तरह-तरह से व्यक्त किया गया है। जो भी बंधन उसे बाँधता है, उसे वह तोड़ना चाहती है। यह प्रयत्न आज भी जारी है। इस संघर्ष को तिथि, वार और वर्ण में नापा नहीं जा सकता।''[२]

मध्यकाल में नाभादास कृत 'भक्तमाल' में उस युग की प्रमुख कवयित्रियों की एक सूची उपलब्ध है, जिसमें सीता, झाली, गौरी, कुँवरि, सतभामा, देवकी, कोली इत्यादि बहुत से नाम संगृहीत हैं, परन्तु इनमें से किसी भी कवयित्री द्वारा लिखित कोई भी कविता उपलबध नहीं है। कविता के क्षेत्र में लल्लेश्वरी, सहजोबाई, दयाबाई तथा जनाबाई के अतिरिक्त जो नाम प्रकाशपुञ्ज बनकर चमकता है, वह है– मीराबाई का। मध्यकाल में मीराबाई का काव्य स्त्री-सरोकारों की समर्थतम अभिव्यक्ति है। ''मीरा के पद अपनी मूल संरचना में उत्कट भावोच्छ्वास में लिखी गयी डायरी की प्रविष्टियाँ हैं।.....मीरा परमुखापेक्षी स्त्री का मिथक तोड़ कर स्वतंत्र निर्णय लेती नई स्त्री-छवि को गढ़ती हैं।''[३] मीराबाई स्त्री की निजता और निर्णय लेने की स्वतंत्रता की पक्षधरता करने वाली पहली महिला रचनाकार थीं। मीरा ने सामाजिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत स्तर पर स्त्री की पीड़ा को अपनी कविता के माध्यम से बेबाक रूप से चित्रित किया।

* पूर्व सदस्य– उत्तराखण्ड लोक सेवा आयोग, वरिष्ठ आचार्य– हिन्दी विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा, गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड

मीरा के पश्चात् भारतेन्दु युग में (१८८२ ई.) एक 'अज्ञात हिन्दू औरत' की रचना 'सीमन्तनी उपदेश' उपलब्ध है। यह रचना 'हम' शैली में लिखित है और स्त्री के समुदायगत त्रास और शोषण का उद्घाटन करती है। 'सीमन्तनी उपदेश' स्त्रियों की प्रथम आत्माभिव्यक्ति कही जा सकती है। श्री राजेन्द्र यादव के शब्दों में- ''यह अज्ञात हिन्दू औरत वर्ण-विभाजित पुरुष समाज में स्त्री की असहाय उपस्थिति को पहली बार पाठकों के सामने रखती है।''[४]

एक 'अज्ञात हिन्दू औरत' के बाद 'दु:खिनी बाला' नामक एक और महिला रचनाकार का पता चलता है, जिसके द्वारा लिखित 'सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी' जुलाई १९१५ से मार्च १९१६ तक 'स्त्री-दर्पण' पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई थी। ''आत्मकथा-विधा में लिखी किसी महिला की पहली आत्मकथा 'सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी' ही है। यह आत्मकथा समाज में बाल विधवा की स्थिति को दर्शाती है और समाज के उन दोहरे मापदण्डों पर प्रश्न भी उठाती है, जहाँ समान परिस्थितियों में होने पर भी स्त्री और पुरुष– दोनों के लिए अलग-अलग सामाजिक नियम हैं।''[५] उस दौर में 'बंग महिला' के छद्म नाम से लिखने वाली राजेन्द्रबाला घोष हिन्दी की पहली महिला कहानीकार हैं, जिन्होंने 'दुलाई वाली' कहानी लिखी, जो 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। यह महिला रचनाकार अपनी पहचान छुपाकर छद्म नामों से लिखती रही। निस्संदेह, औरत ने अपनी पहचान, अपना नाम हासिल करने के लिए एक लम्बी लड़ाई लड़ी है, जो आज भी जारी है।

हिन्दी साहित्य में नारी की सशक्त उपस्थिति बीसवीं शताब्दी में उभर कर सामने आई। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जानकी देवी, ठकुरानी शिवमोहिनी, गौरादेवी, सुशीला देवी तथा धनवती देवी जैसी रचनाकारों के नाम प्रमुख हैं, जो स्त्री-समस्याओं को अपनी रचनाओं में शब्दबद्ध कर रही थीं। तत्पश्चात् वनलता देवी, सरस्वती देवी, हेमंतकुमारी, प्रियंवदा देवी, मुन्नी देवी भार्गव, शिवरानी देवी तथा विमला देवी चौधरानी ने यथार्थपरक और समाजोन्मुखी लेखन की नींव रखी। होमवती देवी तथा चंद्रकिरण सोनरेक्सा ने अपनी रचनाओं में स्त्री की सामाजिक स्थिति से जुड़े सरोकारों को चित्रित किया।

भारत के स्वतंत्रता-आन्दोलन के दौरान महिला रचनाकारों के लेखन का फलक विस्तृत हुआ और उसमें राष्ट्रीयता की भावना का समावेश हुआ। सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, सरोजिनी नायडू तथा उषादेवी मित्र जैसी लेखिकाओं ने साहित्य-सृजन के द्वारा स्वतंत्रता-आन्दोलन में अपना योगदान दिया। इनके अतिरिक्त; अमला देवी, हीरा देवी चतुर्वेदी, हंसा मेहता तथा बेगम शीरीं जैसी रचनाकारों ने स्वतंत्रता की उत्कट इच्छा को परिभाषित करने का प्रयास किया। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पराधीन स्थिति में जीने वाली नारी के लिए स्वतंत्रता के मायने क्या थे अथवा क्या हैं, इसे बहुत आसानी से समझा जा सकता है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् विभाजन की विभीषिका महिला-लेखन में प्रमुखता से उजागर हुई। कृष्णा सोबती की रचनाओं– 'बादलों के घेरे', 'सूरजमुखी अँधेरे के', 'मित्रो मरजानी' तथा 'यारों के यार' में एक नयी स्त्री-छवि की झलक मिलती है और विभाजन से उपजे दु:ख की अनुगूँज भी उसमें स्पष्ट सुनाई देती है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में साहित्यिक परिदृश्य पर नारी-विमर्श के उदय के साथ महिला-लेखन की दशा और दिशा में भारी बदलाव हुआ। शशिप्रभा शास्त्री, मालती जोशी, शिवानी, उषा प्रियंवदा, मन्नू भण्डारी, निरुपमा सेवती, मंजुल भगत, सूर्यबाला, मृणाल पाण्डे, चन्द्रकांता, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, ममता कालिया, मेहरून्निसा परवेज, राजी

सेठ, गीतांजलि श्री, दीप्ति खण्डेलवाल, अलका सरावगी तथा मधु काँकरिया जैसी लेखिकाओं ने हिन्दी साहित्य के कथा साहित्य को विपुल रूप से समृद्ध किया। कथा और कथेतर साहित्य की सभी विधाओं, जैसे कि कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, संस्मरण, आत्मकथा, आलोचना, डायरी तथा यात्रा-वृत्तांत में महिला रचनाकारों ने बढ़-चढ़कर योगदान दिया। समय के साथ-साथ महिला-लेखन के विषय, केन्द्रीय प्रश्न, सरोकार और आयाम भी बदलते गए। इन साहित्यकारों ने साहित्य में सदियों से चली आ रही स्त्री की चुप्पी को तोड़, उसे नवीन सन्दर्भ प्रदान किए और स्त्री को देवी, दासी, भोग्या के रूप में नहीं, अपितु मनुष्य रूप में स्वीकार किए जाने की साहित्यिक पहल को अंजाम दिया।

कविता के क्षेत्र में स्त्री-उपस्थिति के विविध आयाम हैं। शिशु को दुलराती लोरियों और विविध आयोजनों में गूँजते लोकगीतों में स्त्री-कविता सदा से विद्यमान है। युगानुरूप इसमें बदलाव और जोड़-घटाव होते रहे, लेकिन प्रत्येक युग की कविता में स्त्री की सृजनात्मकता ने अपनी विलक्षण छाप छोड़ी है। अनामिका के शब्दों में– ''राजनीतिक' और 'घरेलू', 'जगबीती' और 'आपबीती', 'शहराती' और 'गँवई', 'शास्त्रीय' और 'लौकिक', 'इतिहास' और 'मिथक' के बीच के सारे पदानुक्रम स्नेह भरी झप्पी में तोड़ती हुई स्त्री-कविता एक तरह से दुनिया का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक स्पेस है।''[६] यूँ तो लोकगीतों के माध्यम से नारी सदा ही अपने मन के भावों को प्रकट करती रही है, परन्तु साहित्यिक दृष्टि से देखें, तो मीराबाई के बाद लगभग चार सौ बरस का मौन व्याप्त है। स्त्री-कविता के उस मौन को सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा ने तोड़ा। सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' और 'जलियाँवाला बाग' जैसी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना के स्वर की गूँज सुनाई देती है। महादेवी वर्मा की कविताओं में स्त्री-मुक्ति और नारी-अस्मिता का आह्वान है। महादेवी वर्मा द्वारा रचित **''तोड़ दो क्षितिज, / देख लूँ उस ओर क्या है''** जैसी पंक्तियों में नारी की मुक्ति-चेतना का सशक्त स्वर ध्वनित हुआ है। सुभद्रा कुमारी चौहान की ही तरह तोरन देवी तथा राजेश्वरी देवी जैसी कवयित्रियों ने भी इस दौरान राष्ट्र-प्रेम से भरपूर ओजपूर्ण कविताएँ लिखीं।

स्वातंत्र्योत्तर युग में स्त्री-कविता का स्वर धीमा ही रहा। दूसरा सप्तक में शकुन्तला माथुर, तीसरा सप्तक में कीर्ति चौधरी तथा चौथे सप्तक में सुमन राजे की उपस्थिति कविता के क्षेत्र में स्त्री की मौजूदगी के प्रति आश्वस्त तो करती है, लेकिन अंतराल अभी भी बहुत गहरा था। धीरे-धीरे कविता के क्षेत्र में इंदु जैन, सुनीता जैन, गगन गिल, तेजी ग्रोवर, निर्मला गर्ग, निरुपमा दत्त, अनामिका, कात्यायनी, सविता सिंह, नीलेश रघुवंशी, सुशीला टाकभौरे, निर्मला पुतुल, वाजदा खान तथा रश्मि भारद्वाज जैसी कवयित्रियों का आगमन हुआ और हिन्दी कविता में स्त्री-स्वर उत्तरोत्तर मुखर होता गया। स्त्री की परवशता के बरक्स एक बेहतर कल की उम्मीद सँजोकर इस दौर की कवयित्रियाँ स्त्री-अस्मिता के नए सन्दर्भों की तलाश करती हैं। कात्यायनी के शब्दों में–

''देह नहीं होती है एक दिन स्त्री और
उलट-पुलट जाती है सारी दुनिया अचानक।''

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त करने वाली पहली कवयित्री अनामिका स्त्री की विडम्बना को इस प्रकार शब्दबद्ध करती हैं–

''मैं एक दरवाजा थी, / मुझे जितना पीटा गया, / मैं उतना ही खुलती गयी।''

अनामिका ने अपनी कविताओं में स्त्री के संघर्ष, उसकी आकांक्षा और स्वप्न को बखूबी

दर्ज किया है। अनामिका की स्त्रियाँ बार-बार स्वयं को समझे जाने का आग्रह करती हैं–

''सुनो हमें अनहद की तरह / और समझो जैसे समझी जाती है
नई-नई सीखी हुई भाषा।''

नीलेश रघुवंशी एक नए कोण से स्त्री-मुक्ति की पक्षधरता करती हैं और वादों, आन्दोलनों अथवा विमर्शों की चौहद्दी में रास्ता भटक चुके स्त्री-प्रश्न का उत्तर चाहती हैं। उनके शब्दों में–

''मिल जानी चाहिए, अब मुक्ति स्त्रियों को,
आखिर कब तक विमर्श में रहेगी मुक्ति।''

स्त्री और कविता अन्योन्याश्रित हैं। स्त्री ने कविता में अपना घर पाया और कविता ने स्त्री के हाथों एक नयी पहचान। अनामिका के शब्दों में– ''औरतें, जन्म से बेघर, न मायके की अपनी, न ससुराल की, न गेह की अपनी, न देह की, अपनी ही देह से निष्कासित और कभी-कभी सीता, बेनजीर या तस्लीमा की तरह अपने वतन से भी.... धूप, हवा, माटी और घास की तरह हर तरफ, फिर भी; कहीं की नहीं– अन्ततः बसीं, लेकिन बसीं कहाँ? बेदरोदीवार के घर-कविता में!'' स्त्री-कविता आत्माभिव्यक्ति से शुरू होकर आत्मसजगता तक पहुँची और उसके बाद की काव्य-यात्रा के पड़ाव निरन्तर बदलते रहे, लेकिन हिन्दी साहित्य के प्रत्येक युग में स्त्री-कविता अपने बहुरंगी कलेवर की इन्द्रधनुषी छटा बिखरेती रही है।

स्त्री के लिए यह दुनिया वर्जनाओं तथा निषेधों की अन्तहीन शृंखला है। वह इसको तोड़कर मुक्ति का उच्छ्वास लेना चाहती है। इसी कोशिश में वह समाज तथा परम्परा-सम्मत लक्ष्मण-रेखाओं का अतिक्रमण करती है। साहित्यिक परिदृश्य में नारी की उपस्थिति प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से सदैव बनी रही। ऋग्वेद युग की विदुषियों से लेकर आधुनिक युग की रचनाकारों तक स्त्री-लेखन की धारा अविरल बहती रही है। अन्तर केवल इतना है कि सामाजिक दबावों के अधीन स्त्री पहले छद्म नामों से लिखती थी और आधुनिक युग की रचनाकार साहित्यिक फलक पर अपनी उपस्थिति खुल कर दर्ज करवा रही हैं। हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में आज अनेक महिला रचनाकार सशक्त लेखन कर रही हैं। कविता, कथा और कथेतर साहित्य में नई और पुरानी पीढ़ी साझेदारी में कदम से कदम मिलाकर चल रही है। महिला रचनाकारों ने किसी खेमे में बँधे बिना, विभिन्न चुनौतियों का सामना करते हुए, अपने साहित्य में मानव-मूल्यों को सँजोकर रखा है। वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप होने वाले बदलावों को अपने साहित्य में दर्ज करने का दायित्व भी इन स्त्री-रचनाकारों ने बखूबी निभाया है। महिला रचनाकारों की राहें प्रशस्त हैं और उनके सामने अनगिनत दिशाएँ बाँहें पसारे खड़ी हैं। अभी तो उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में पंख फैलाएँ हैं, सारा आसमान उनका है, अभी तो उड़ान बाकी है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. रोहिणी अग्रवाल– किले में समंदर, समालोचन
२. ममता कालिया– बीसवीं सदी का हिन्दी महिला-लेखन, पृ.११
३. रोहिणी अग्रवाल– बरजी मैं काही की नाहिं रहूँ (hindisamay.com)
४. श्री राजेन्द्र यादव– काश! मैं राष्ट्रद्रोही होता, पृ. २१७
५. बलवंत कौर– स्त्री आत्मकथा का इतिहास, पृ. १७४
६. अनामिका– बीसवीं सदी का हिन्दी महिला-लेखन, पृ. १७

●

बाजारवाद और हिन्दी

डॉ. हिमांशु शेखर सिंह*

इस विषय पर बात करने के पूर्व हमें 'वाद' और 'बाजारवाद' को पहले समझ लेना प्रासंगिक होगा। 'वाद' वह बातचीत है, जो किसी तत्त्व के निर्धारण के लिए होती है। इसे सिद्धांत, तर्क, शास्त्रार्थ, दलील भी कह सकते हैं। अत: स्पष्ट है कि किसी पक्ष के तत्त्वज्ञों द्वारा निश्चित सिद्धांत आदि को ही 'वाद' कहा जाता है। इसी प्रकार, 'बाजारवाद' का अर्थ है– वह मत या विचारधारा, जिसमें जीवन से सम्बन्धित हर वस्तु का मूल्यांकन केवल व्यक्तिगत लाभ या मुनाफे की दृष्टि से ही किया जाता है। यह मुनाफा-केन्द्रित तंत्र को स्थापित करने वाली विचारधारा होती है। यह हर वस्तु या विचार को 'उत्पाद' समझकर बिकाऊ बना देने की विचारधारा है। अब इसी के परिप्रेक्ष्य में हम उपर्युक्त विषय पर विचार करेंगे।

गणेश शंकर विद्यार्थी ने कभी कहा था कि– 'अगर देश गुलाम हो रहा हो और मेरी भाषा भी दूषित हो रही हो, तो मैं पहले अपनी भाषा को बचाऊँगा, क्योंकि यदि भाषा बची रहेगी, तो देश को आजाद कराया जा सकता है, लेकिन अगर भाषा दूषित हो गई, तो देश को गुलाम होने से कोई नहीं रोक पाएगा।''

इसी प्रकार, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का भी विचार था कि– ''जब तक पूरे देश में हिन्दी का पूरे आत्मसम्मान के साथ प्रयोग नहीं किया जाएगा, तब तक हम गुलाम ही बने रहेंगे।''

इन दो प्रमुख विचारों से भाषा के महत्त्व पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। हममें से अधिकतर लोग भाषा को 'अभिव्यक्ति का माध्यम' मात्र से अधिक कुछ नहीं समझते। किन्तु वस्तुत: भाषा अभिव्यक्ति के साथ-साथ अनुभूति का भी माध्यम है, विषय है। भाषा का प्रत्येक शब्द अपने अन्दर किसी विशिष्ट अनुभव की स्मृति को भी धारण किए रहता है। उस शब्द से परिचित होने का अर्थ है– उसमें छिपी विशिष्ट अनुभूति तथा उससे जुड़े तमाम विचारों से अवगत होना। उदाहरण के लिए दु:ख, शोक, अवसाद, विषाद, पीड़ा, कष्ट, वेदना, यातना, यंत्रणा आदि एक ही प्रकार की भावनाओं को व्यक्त करने वाले शब्द हैं, लेकिन इनमें तात्विक भेद है, जो इनके अर्थ को सूक्ष्मत: अलग-अलग करती है। जो व्यक्ति इन शब्दों के मर्म को समझता है, वह अपने जीवन में इन शब्दों से जुड़ी भावनाओं को आसानी से पहचान लेगा। कहने का तात्पर्य यह कि भाषा से वंचित होने का अर्थ है– अनुभूति के सूक्ष्म विभेदों से वंचित रह जाना।

आज, जबकि भूमण्डलीकरण के युग में देश-दुनिया के बड़े-बड़े कार्पोरेट निगम और कम्पनियाँ हमारे जल, जंगल और जमीन पर गिद्ध-दृष्टि लगाए बैठे हैं, ऐसे में भाषा अकेला हथियार है, जिसके बल पर लोग न्याय की अपनी चाहत को बचा पाएँगे और उसके लिए लड़कर सत्ता के इस शिकंजे को तोड़ पाएँगे।

अब सवाल यह उठता है कि हम भाषा में आए प्रदूषण को कैसे पहचानें और उसके खात्मे की शुरूआत कैसे करें? हिन्दी के सम्बन्ध में जो सबसे अधिक शोचनीय विषय है, वह यह कि हिन्दी आज भी ज्ञान की भाषा नहीं बन पायी है। ज्ञान-विज्ञान की बातों के लिए हम अंग्रेजी की ओर मुखातिब होते हैं, यानी बहुत कुछ उसी पर निर्भर हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि व्यवहार

* सह आचार्य– हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उ.प्र.

में न प्रयुक्त होते हुए भी संस्कृत इसीलिए जीवित है, क्योंकि वह भी ज्ञान की भाषा है। जहाँ तक हिन्दी का प्रश्न है, इसके आरम्भिक दौर में तो ज्ञान का आख्यान किया गया, लेकिन अब ऐसा नहीं हो रहा है।

कोई भी भाषा दीर्घजीवी तभी रह सकती है, जबकि वह ज्ञान की भाषा हो, क्योंकि ज्ञान आजादी देता है, ज्ञान ताकत देता है तथा ज्ञान निर्भय करता है। किसी भी भाषा के लिए ज्ञान की भाषा होने के साथ-साथ तकनीकी भाषा का होना भी जरूरी है। इस दृष्टि से यदि हम देखें, तो आज की हिन्दी में केवल क्रियाएँ हिन्दी की हैं, बाकी संज्ञाएँ बहुतायत मात्रा में अंग्रेजी से ली गयी हैं। कारण कि भारत में नयी तकनीक प्राय: यूरोप से आयी। इसीलिए उसने पूरे वातावरण को प्रभावित किया। आज बाजार में जो भी चीजें मौजूद हैं, अपनी संज्ञाओं के साथ हैं। उर्दू भाषा भी इसीलिए विलुप्ति के कगार पर है, क्योंकि वह न तो ज्ञान की भाषा है और न तकनीक की। इस तरह देखा जाए, तो यह भाषाओं के मरने का, समाप्त होने का दौर है।

हमारे यहाँ पुरानी कहावत थी कि– ''कोस कोस पर पानी बदले, चार कोस पर बानी।'' इस बहुलता को आज बाजार ने निगल लिया है या निगलता जा रहा है। हाँ, हिन्दी के समाचार-पत्रों की प्रसार-संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त; आकाशवाणी, दूरदर्शन, सिनेमा जैसे संचार-माध्यमों से विज्ञापनों ने हिन्दी को काफी बढ़ावा दिया है। आज का युग विज्ञापन का युग है और आज के बाजारवादी दौर में अपना उत्पाद जन-जन तक पहुँचाने के लिए हिन्दी में विज्ञापन देना भी अपरिहार्य समझा जा रहा है। यह हिन्दी के प्रति कोई मोह नहीं, बल्कि एक व्यावसायिक मजबूरी हो गयी है। भारत व चीन पिछले कई दशकों से किसी भी अर्थ में अच्छे पड़ोसी के रूप में नहीं रहे हैं। फिर भी; पिछले कुछ दशकों में हिन्दी भाषा सीखने वाले विदेशियों में चीनियों की संख्या सर्वाधिक होती है। दरअसल; चीनी व्यक्ति हर काम को बड़े ही सुविचारित और सुनियोजित तरीके से करता है। हिन्दी को लेकर भी ऐसा ही मामला है। चीन की नजर भारत के एक बड़े बाजार पर है। उसे यहाँ व्यापार की बहुत अधिक सम्भावना दृष्टिगोचर होती है। इसलिए वह बड़ी संख्या में ऐसे नौजवान तैयार कर रहा है, जो हिन्दी जानते और बोलते हैं। वह उनकी मदद से भारतीय बाजारों में अपनी सहज और गहन घुसपैठ करना चाहता है।

यही नहीं, यदि भारत के अंदर भी देखा जाए, तो लाखों की संख्या में भारतीय नौजवान, विशेषकर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार के नौजवान, देश के विभिन्न शहरों में जाकर या तो शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं या विभिन्न कम्पनियों में काम कर रहे हैं। परिणामस्वरूप चेन्नई, बंगलुरु, पुणे, हैदराबाद आदि अहिन्दीभाषी शहरों में हिन्दी में आसानी से काम चल जा रहा है। बावजूद इसके; जब तक हिन्दी ज्ञान व तकनीक की भाषा नहीं बनेगी, तब तक उसका दीर्घजीवी होना सम्भव नहीं है। यह एक बड़ी चुनौती है।

दु:ख है कि दुनिया की सबसे बड़ी भाषा होने के बावजूद भी हिन्दी में ज्ञान व तकनीक के क्षेत्र में काम कम हो रहा है। 'कट-पेस्ट' ने हिन्दी को और कमजोर किया है। आज भी हम 'साम्राज्यवाद' आदि शब्दों का विश्लेषण करने के लिए अंग्रेजी भाषा पर निर्भर हैं। इसी प्रकार, भारतीय जाति-व्यवस्था, संरचना, स्त्री, दलित, आदिवासी आदि विशिष्ट सन्दर्भों का विश्लेषण करने के लिए अंग्रेजीपरस्त बुद्धिजीवियों के मुखापेक्षी होने को मजबूर हैं।

आज हमें यह समझना होगा कि हिन्दी का विकास इस बात पर निर्भर होगा कि वह ज्ञान-मीमांसा और बदलती तकनीक की मीमांसा में अपने को किस रूप में ढालती है? ज्ञान की दरिद्रता

तथा हिन्दी एक-दूसरे के पूरक हो गए हैं। द्रष्टव्य है कि नवजागरण काल के हिन्दी-लेखकों, चाहे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हों, बाबू श्यामसुन्दर दास हों या आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, उन्होंने इस ओर विशेष ध्यान दिया था। आचार्य शुक्ल ने एडिसन के 'एसे ऑन इमैजिनेशन' का हिन्दी अनुवाद 'कल्पना का आनन्द' शीर्षक से किया था। इसके साथ ही; जॉन हेनरी और न्यू मैन के 'आइडिया ऑफ ए यूनिवर्सिटी' के 'लिटरेचर' निबंध का अनुवाद 'साहित्य' नाम से तथा 'प्लेन लिविंग हार्ड थिंकिंग' का अनुवाद 'आदर्श जीवन' नाम से किया था।

इसके अतिरिक्त; सन् १९२० ई. में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की प्रसिद्ध पुस्तक 'विश्व-प्रपंच' एक लम्बी भूमिका के साथ प्रकाशित हुई थी, जो हैकल के 'रिडल ऑफ द यूनिवर्स' का अनुवाद थी। इस भूमिका के माध्यम से शुक्ल जी ने विज्ञान को हिन्दी में प्रस्तुत किया था। इसी प्रकार, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'संपत्तिशास्त्र' नामक पुस्तक लिखकर अंग्रेजों की लूट का पर्दाफाश किया था।

कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी भाषा केवल कविता, कहानी, निबंध, नाटक या उपन्यास आदि लिखने मात्र से समृद्ध नहीं होती। वह ज्ञान-मीमांसा की भाषा बनकर ही समृद्ध हो सकती है। वर्तमान स्थिति यह है कि भारत की विविधता के प्रतीक दलित, स्त्री, अल्पसंख्यक आदि जैसे ज्वलंत प्रश्नों पर रचनात्मक लेखन तो हो रहा है, किन्तु सैद्धान्तिकी में पश्चिम का प्रभाव अभी भी मौजूद है। हमें यह समझना होगा कि विचार तथा चिंतन के क्षेत्र में अगर हम यूरोपीय देशों और अमेरिका के अनुगामी बने रहेंगे, तो हम अपनी भाषा को कभी स्वतंत्र नहीं कर पाएँगे। आजादी एक मूल्य है और समानता हमारे देश के हजारों हजार नागरिकों का मूल स्वर है। किन्तु, यदि तकनीकी स्तर पर और वैचारिक स्तर पर नवोन्मेष नहीं होगा, तो हम साम्राज्यवाद, अर्थात् अंग्रेजी की गुलामी झेलने के लिए अभिशप्त रहेंगे। इस रूप में बुनियादी प्रश्न यह है कि आजादी और समानता केन्द्रीय सवाल है। इस पर हिन्दी में बेहतर वैचारिक साहित्य लिखा जाना चाहिए।

हमें यह भी समझना होगा कि हिन्दी एक भाषा नहीं, बल्कि अनेक बोलियों का संयुक्त परिवार है। कविता के सन्दर्भ में जो हमारी ताकत है, वह है– हमारी बोलियाँ। इनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। बोलियों में कालजयी होने की क्षमता होती है। यही कारण है कि रामचरित मानस (अवधी), पद्मावत (अवधी), सूरदास का साहित्य (ब्रज), भिखारी ठाकुर (भोजपुरी), ईसुरी (बुंदेली) आदि कवि लोक में याद किए जाते हैं। लेकिन आधुनिक समय में बोलियों में क्या लिखा जा रहा है, इससे हम प्राय: अपरिचित ही होते हैं। इसी सन्दर्भ में; उल्लेखनीय है कि हिन्दी के विगत १५० वर्षों के साहित्य का अध्ययन लगभग नहीं के बराबर है। प्रेमचन्द को हम पढ़ते-पढ़ाते हैं, लेकिन अनेक आंचलिक उपन्यासकारों को नहीं। प्रसाद, पंत, महादेवी, निराला आदि को तो पढ़ते-पढ़ाते हैं, लेकिन अनेक अन्य आंचलिक कवियों की उपेक्षा कर जाते हैं। इसी प्रकार, उर्दू के गालिब, मीर, जफर आदि कवियों को भी विस्मृत कर देते हैं, जिनका हिन्दी की श्रीवृद्धि में महत्त्वपूर्ण अवदान है।

मेरी यह स्पष्ट मान्यता है और मैं इसकी पुरजोर वकालत करता हूँ कि हमें खुले मन-मस्तिष्क से, पूरी उदारता और व्यापकता के साथ राष्ट्रीय स्तर के चर्चित लेखकों-रचनाकारों के साथ ही क्षेत्रीय और आंचलिक कवियों-लेखकों को भी स्मरण रखना होगा, तभी हम बाजारवाद के खिलाफ सशक्त ढंग से हिन्दी की लड़ाई लड़ सकेंगे।

●

स्वाधीनता-आन्दोलन में हिन्दी साहित्यकारों का योगदान

विशेष संदर्भ : राधामोहन गोकुल

प्रो. रेनू सिंह*

राष्ट्रीय नवजागरण और भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन आधुनिक सामाजिक-सांस्कृतिक समय की वह महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं, जिनके घटित होने की समस्त प्रक्रिया के मूल में भारतीय भाषाओं के साहित्य एवं साहित्यकारों के योगदान और उनकी रचनाशीलता के मूल्यांकन को न तो कम करके आँका जा सकता है और न ही उनकी अनदेखी की जा सकती है। यह बात हिन्दी के सन्दर्भ में विशेष रूप में कही जा सकती है। प्रमाणित सत्य यह है कि प्रत्येक समय-काल का साहित्य अपने समय की गतिविधियों से न केवल गहरे स्तर पर जुड़ा होता है, साथ ही; हर सजग रचनाकार की चेतना अपने समय और समाज से प्रभावित होती और करती है। देखा जाए, तो भारतीय भाषाओं के आधुनिक साहित्य का विकास-क्रम ब्रिटिश शासन और स्वतन्त्रता आन्दोलन के समानान्तर हुआ है।

१८५७ की क्रान्ति के बिगुल में भले ही प्रत्यक्ष विजयनाद के स्वर न सुनाई दिए हों, किन्तु इसके फलस्वरूप; भारतीय कवियों, लेखकों, विचारकों, पत्रकारों, चिन्तकों ने ब्रिटिश शासन के शोषण के विरुद्ध कलम चलानी शुरू की, जो किसी मामले में भी शस्त्र चलाने से कमतर नहीं थी। यह कलम की चेतना ही थी, जिसने जनमानस को अनवरत सचेत किया, तो बाद तक चलकर गाँधी के स्वतन्त्रता-आन्दोलन को अहिंसक बनाए रखने के संकल्प को भी अंजाम तक ले जाने की शक्ति प्रदान की, जिसकी झलक पूरे भारतीय परिदृश्य में दृष्टिगोचर होती है। गुजराती के नर्मद और दौलतराम, मराठी के चिपकुणकर, बंगाल के बंकिमचन्द्र और हिन्दी के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं में ब्रिटानी हुक्मरानों के विरोध के साथ स्वतन्त्रता की छटपटाहट के परोक्ष-प्रत्यक्ष स्वरों को स्पष्ट सुना जा सकता है।

वीर सावरकर की '१८५७ का प्रथम स्वाधीनता संग्राम' हो या बाल गंगाधर तिलक की 'गीता रहस्य' या शरद बाबू का 'पथ के दावेदार' उपन्यास अथवा पण्डित नेहरू की 'भारत एक खोज'– इन जैसी अनेक रचनाओं ने उस समाज के युवा, स्त्री-पुरुष सभी को कुछ इस तरह आन्दोलित किया कि जिसने भी इन्हें पढ़ा-सुना, वे घर-परिवार, व्यक्तिगत हितलाभ आदि की चिंता को दरकिनार कर देशहित में यथाशक्ति सर्वस्व आहुति करने हेतु चल पड़े।

भारतेन्दु और उनके समय के लेखकों ने ब्रिटिश सत्ता की क्रूरतापूर्ण नीतियों का पुरजोर विरोध करते हुए 'भारत-दुर्दशा' में लिखा– **रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई। हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।** तो अगले चरण में द्विवेदी युगीन कवियों और मैथिलीशरण की रचनाओं में सांस्कृतिक पुनर्जागरण के साथ ब्रिटिश राज और उनके अमानवीय अत्याचारों के विरोध के स्वर दिखाई और सुनाई पड़ते हैं। यह स्वर आगे चलकर राष्ट्रीय काव्य-धारा में और प्रखर होकर ध्वनित होता है, जहाँ अनेक नामोल्लेख ही आपकी स्मृतियों को ताजा करने के लिए पर्याप्त हैं। माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह 'दिनकर', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि के साथ

* अध्यक्ष- हिन्दी विभाग, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकण्टक-४८४८८७, जिला अनूपपुर (म.प्र.)

छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद ने 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' के साथ राष्ट्रीय नव जागरण का उद्घोष किया। प्रसाद का सम्पूर्ण साहित्य हमारी राष्ट्रीय चेतना को प्रस्फुटित करने में उद्दीपक की भूमिका का निर्वहन करता है।

शिवकुमार मिश्र के माध्यम से कहें, तो– ''अपने प्रशस्त रूप में प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना राष्ट्र की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए विश्व मैत्री और विश्वबंधुत्व तक अपना प्रसार करती है। राष्ट्र की अपनी परिधि में भी राष्ट्र के दु:ख-दर्द और हर्ष-उल्लास से अपने को एकीकृत करती हुई राष्ट्र की शक्ति और ऊर्जा का राष्ट्रीय संस्कृति के प्रगतिशील पहलुओं का साक्ष्य देती है। भारत की राष्ट्रीय तथा जातीय अस्मिता को उभारते हुए देशवासियों के मन में अपने राष्ट्रीय तथा जातीय उत्थान का अहसास कराती है। यह वह मनोभूमि है, जो 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसे प्रशस्त भावबोध का गीत रचने वाले रचनाकार को 'हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरण का दे उपहार' जैसा गीत रचने की प्रेरणा देती है।''[१] कह सकते हैं कि अपनी रचनाधर्मिता में प्रसाद जी अपने तरीके से गहन भावात्मक स्तर पर भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन से जुड़कर अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हैं। खासकर स्वाधीनता-आन्दोलन के समय में जातीय इतिहास और संस्कृति के प्रति गौरव और गरिमा से पूरित दृष्टि ही है कि जब वे अपने सृजन के लिए इतिहास की जिस लम्बी समयावधि को चुनते हैं, वह बुद्ध से लेकर हर्षवर्धन तक का भारतीय इतिहास का समृद्ध काल है। यूनानियों, हूणों और कुषाणों के अनेक आक्रमण के बीच भी भारतीय प्रतिरोधी चेतना ने उनके पाँव जमने नहीं दिए। अतएव स्वाधीनता-आन्दोलन के समय यह पुनर्स्मरण स्वाभाविक रूप में एक प्रेरणास्पद चेतना का वातावरण निर्माण करने में सफल होगा। प्रसाद के नाटकों में 'चन्द्रगुप्त' (१९३१) और 'स्कंदगुप्त' (१९२८) में राष्ट्रीय गौरव की रक्षा और उसके लिए किए जाने वाले बलिदानों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इन अभिव्यक्तियों के तार कहीं-न-कहीं स्वाधीनता-आन्दोलन में भी तलाशे जाने चाहिए। निराला ने 'जागो फिर एक बार', 'राम की शक्ति पूजा' जैसी कविताओं के माध्यम से भारतीय जनमानस की वैचारिकी को अभिव्यक्ति दी। यहाँ इस ओर भी ध्यान दिलाना आवश्यक हो जाता है कि स्वाधीनता-आन्दोलन के विकास-विस्तार के साथ-साथ अंग्रेजी सरकार ने भारतीय समाचार-पत्रों के नियमन से सम्बन्धित अधिनियम १७९९ ई. में पारित किया, जिससे दमन-चक्र सुनियोजित तरीके से चलाया जा सके। एक कदम आगे बढ़कर पुस्तकों को प्रतिबंधित करने का क्रम भी बंग-भंग आन्दोलन के साथ शुरू हो गया, जो १९०८ तथा १९१० के प्रेस अधिनियम में संशोधन करके किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश शासन में राजविरोधी इतिहास, राजनीति, साहित्य आदि विषयों की पुस्तकों से लेकर पत्र-पत्रिकाओं और छोटे-छोटे विज्ञापनों- इश्तेहारों तक पर पाबन्दी और जब्ती की जाने लगी, जिसके कारण १९०८ में प्रेमचन्द के 'सोजेवतन' कहानी-संकलन और सावरकर जी की इतिहास पुस्तक 'इण्डियन वार ऑफ इण्डिपेण्डेस' को १९०९ ई. में प्रतिबंधित कर दिया।

इस विषय पर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेख रुस्तम राय द्वारा लिखित 'स्वाधीनता-आन्दोलन और प्रतिबंधित हिन्दी कविताएँ' (कविता के सौ बरस– सम्पादक लीलाधर मंडलोई-प्रकाशन शिल्पायन-नई दिल्ली) है, जिसमें अबतक प्राप्त लगभग ४०० प्रतिबंधित कविताओं के संकलन के माध्यम से हमें भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन के इतिहास और आजादी के शहीदों के बलिदान की मर्मपर्शी छवियाँ देखने को मिलती हैं। बहुत सी ऐसी कविताएँ हैं, जो स्वतन्त्रता-

आन्दोलन के दौरान चल रही क्रांतिकारी गतिविधियों, घटनाचक्रों, योजनाओं और आन्दोलनों के नेताओं के शौर्य का वर्णन करती हैं, तो कुछ में अंग्रेजी वस्तुओं के बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल दिया गया है।

अत्यन्त संक्षेप में; रुस्तम राय के शब्दों में कहें, तो– ''कहना न होगा कि इन कविताओं की उपेक्षा कर भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य का कोई भी मुकम्मल इतिहास नहीं लिखा जा सकता।''[२] ''अनेक प्रतिबंधित कविताओं में भारतीय समाज की कुरीतियों, बुराइयों, कर्मकाण्डों, विडम्बनाओं आदि का यथार्थपरक चित्रण किया गया है। इन कविताओं में अंग्रेजी सरकार के दोहरे चरित्र के साथ-साथ भारतीय सामंतवाद के दोमुँहापन को भी उजागर किया गया है। असल में; प्रतिबंधित कविताएँ एक ऐसा आईना हैं, जिसमें जब चाहें, जरा-सी गर्दन झुकाकर स्वाधीनता-आन्दोलन की तस्वीर देखी जा सकती है।''[३]

इन सबकी रचनाओं ने राष्ट्रीयता के विकास में बहुत योगदान दिया। बंकिमचन्द्र ने 'आनंद मठ' व 'वंदे मातरम्' की रचना की। वंदे मातरम् गीत ने हमारे सभी देशवासियों को एक सूत्र में पिरो कर उस समय ऐसा रोमांच खड़ा किया था कि अंग्रेज सरकार इस शब्द मात्र से ही काँपने लगी थी। जहाँ पर भी वंदे मातरम् का गान सुनाई दे जाता था, वहीं अंग्रेज सरकार अनुमान लगा लेती थी कि यहाँ पर, निश्चय ही; क्रान्ति की आग दहक रही है। बंकिम बाबू की 'आनंद मठ' ने बंगाल में क्रान्तिकारी राष्ट्रवाद की पाठ्य-पुस्तक का कार्य किया। माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और सुभद्रा कुमारी चौहान ने राष्ट्र-प्रेम को ही मुखरित नहीं किया, अपितु स्वतन्त्रता-आन्दोलन में भी भाग लिया। माखनलाल चतुर्वेदी ने फूल के माध्यम से अपनी देशभक्ति की भावना को व्यक्त किया–

''चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ
चाह नहीं मैं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ
मुझे तोड़ लेना ए वन माली उस पथ पर देना फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाएँ वीर अनेक।''

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' के द्वारा राष्ट्रीयता का प्रचार-प्रसार कर भारत के रणबाँकुरों को स्वतंत्रता-आन्दोलन में कूदने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने बहुत सरल शब्दों में देश के लोगों की चेतना को झकझोर कर रख दिया था। उनकी देश-भक्ति की कविताओं को लोग आज भी पढ़ कर रोमांचित हो उठते हैं। उन्होंने सोयी हुई भारतीयता को जगाते हुए कहा–

''जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहीं है पशु निरा है और मृतक समान है।''

उस समय के साहित्यकारों में प्रेमचन्द का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचन्द की कहानियों में 'सोजे वतन' से लेकर 'समर यात्रा' तक भारतीय जनमानस की प्रतिरोधी चेतना के स्वर अनेक स्तरों पर उपस्थित हैं। प्रेमचन्द जी उर्दू से हिन्दी में आये थे। उनके साहित्य में हिन्दू और मुसलमान व्यापक समझ और साझेदारी के स्तर पर इस आन्दोलन से जुड़कर ही देश की स्वतन्त्रता के लिए साथ मिलकर संघर्ष करते हैं। हिन्दी साहित्याकाश के वह सूर्य हैं, जिनके प्रकाश से साहित्य-संसार का कोई कोना अछूता नहीं है। साथ ही; नवजागरण के दौर में कई ऐसे लेखक एवं साहित्यकार हुए, जो लेखन के साथ-साथ सामाजिक और राजनीतिक कार्यों को भी

उसी प्रतिबद्धता से सम्पादित करते थे। ऐसे ही; एक विरल साहित्यकार हैं– राधामोहन गोकुल (१८७५-१९३५), जो हिन्दी साहित्य-संसार में प्रेमचन्द और निराला की परम्परा के अग्रज एवं कबीर की साहित्य-परम्परा के अंग होते हुए भी इनसे आगे थे। ईश्वर और धर्म की नकारात्मक भूमिका के उद्घाटन और तर्क की स्थापना में जहाँ वे प्रेमचन्द और निराला से बढ़कर थे, तो स्त्री-पुरुष की समता के प्रश्नों पर आज के तथाकथित प्रगतिशील चिन्तकों से भी आगे की सोच रखने वालों में थे। स्वयं प्रेमचन्द ने उन पर लिखा है– ''श्री राधामोहन गोकुल जी हिन्दी के उन गिने-चुने लेखकों में हैं, जिन्होंने धार्मिक, सामाजिक और नैतिक विषयों पर स्वतंत्र विचार किया है और उन विचारों का निडर होकर पालन किया है। आपके विचारों में मौलिकता है, गहरा अन्वेषण है और आदमी को कायल करने वाली सच्चाई है। आपकी भाषा में नजाकत और लोच की जगह स्वामी दयानंद की-सी दृढ़ता और तेज है। आप इस सत्तर वर्ष की अवस्था में भी नए से नए विचारों का प्रतिपादन बर्नार्ड शॉ और ट्राटस्की की-सी निर्भीकता से करते हैं।'' राधामोहन गोकुल की निर्भीकता इसलिए भी अनुकरणीय है कि यह केवल चुने हुए या अपनी पसन्द के क्षेत्र में नहीं हैं। वह सर्वत्र हैं। एक उदार मनुष्य को जिस निर्भीकता के साथ सभी के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए, वह राधामोहन गोकुल में महती रूप में विद्यमान है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द लिखते हैं– ''जात-पाँत, छूत-छात, धर्म-सम्प्रदाय– इन सभी को समाज के लिए घातक और उसकी स्वाभाविक प्रगति में बाधक समझते हैं और आपकी दलीलों के सामने सिर न झुका देना कठिन है। अट्ठाईस वर्ष की युवावस्था में जो आदमी स्त्री के मर जाने पर इसलिए विधुर जीवन व्यतीत करे कि वह मर जाता, तो उसकी स्त्री आजीवन वैधव्य का पालन करती– त्यागमय जीवन का ऐसा पवित्र और ऊँचा आदर्श है कि जिसकी मिसाल मुश्किल से मिलेगी और इस अवस्था में भी आपकी जिंदादिली नौजवानों को लज्जित करती है।...हम तो यही कहेंगे कि आपके रूप में महात्मा चार्वाक ने अवतार लिया है।''[४]

राधामोहन गोकुल का जन्म १५ दिसम्बर, १८६५ में इलाहाबाद के पास भदरी में हुआ था। गोकुल जी नवजागरण एवं स्वतन्त्रता-आन्दोलन के पन्नों पर अपनी कोई छाप न छोड़े हों, ऐसा नहीं है, बल्कि उनका चिन्तन और बेबाक अभिव्यक्ति आज भी हमें अनेक बिन्दु-विमर्शों पर पुनर्विचार को बाध्य करता है। अतएव वे सर्वथा विस्मृत रचनाकारों में नहीं, क्योंकि डॉ. राम विलास शर्मा ने उनकी दो पुस्तकों– 'देश का धन' और 'कम्युनिज्म क्या है?' पर विस्तृत चर्चा की है। उन्होंने कुछ साम्यवाद सम्बन्धी लेखों के साथ विप्लव के निबन्धों से उदाहरण भी संकलित किए हैं। लेकिन गोकुल जी के महत्त्व को समझने के लिए यह बहुत नाकाफी है। कह सकते हैं कि उनकी सोच और सम्वेदना ठीक-ठीक न तो भारतेन्दु युग के अनुरूप थी, न ही द्विवेदी युग के। वास्तव में; इन दोनों युगों की विचारधारा से जुड़कर भी वे बहुत कुछ विषयों पर इनसे बहुत आगे की सोच, एक नयी विचार-परम्परा की नींव डालते हैं। उनका साहित्य जितना महत्त्वपूर्ण है, उनका जीवन उतना ही दिलचस्प। शायद ही इस तरह के क्रान्तिकारी संघर्षों से भरा जीवन उस समय किसी रचनाकार का रहा हो। अपने समय पर अपनी महत्त्वपूर्ण छाप छोड़ने वाले क्रान्तिकारी रचनाकार का जीवन और साहित्य हिन्दी साहित्य के परिदृश्य से नदारद होना एक गहरे अन्तराल का निर्माण करता है। इन सबके केन्द्र में कारण या परिस्थितियाँ जो भी हों, परिणाम यह है कि इसीलिए वे अपने अन्य समकालीन साहित्यकारों-रचनाकारों की तरह साहित्य के इतिहास में अपनी उपस्थिति नहीं दर्ज करा सके। अतएव हममें से बहुतों के लिए वे सुपरिचित

नहीं हैं। इस समय, जब हम आजादी के अमृत महोत्सव और अमृत काल पर विविध आयोजन कर रहे हैं, नि:संदेह विद्यार्थियों-शोधार्थियों को राधामोहन गोकुल से परिचित कराने का यह एक महत्त्वपूर्ण अवसर है।

कर्मेन्दु शिशिर के हवाले से कहना चाहते हैं कि– ''दरअसल; नवजागरण के रचनाकार सिर्फ लेखक भर नहीं थे, वे तत्कालीन समाज के अत्यन्त जागरूक और जिम्मेदार नागरिक भी थे। वे समाज और समय से गहरे जुड़े थे। देश-विदेश में जो कुछ जहाँ घट रहा था, उन तमाम हलचलों और परिवर्तनों के प्रति वे सजग थे। समाज को बदलने के उपाय सोचने और अपने विचारों को लिखकर छपवा देने तक ही वे सीमित नहीं थे। वे सांगठनिक स्तर पर तथा अन्य स्तरों पर भी कई तरह की गतिविधियों में प्रत्यक्ष रूप से शामिल थे।''[५]

गौर करें, तो पाते हैं कि भारतेन्दु युगीन अथवा भारतेन्दु मण्डल के अधिकांश साहित्यकारों द्वारा रचनाधर्मिता के साथ अलग-अलग सक्रिय संगठनों का निर्माण अथवा उनसे अलग-अलग स्तरों पर जुड़ाव बनाकर कार्य सम्पादित करना भी उनकी सक्रिय क्रिया-विधि का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। इनमें से कुछ ने तो क्रान्तिकारी आन्दोलनों में सक्रिय भागीदारी की। गणेश शंकर विद्यार्थी का बलिदान भला किसको विस्मृत हो सकता है? इसी कड़ी में, अधिकतम क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के रूप में राधामोहन गोकुल आते हैं। गोकुल जी के विचार जितने क्रान्तिधर्मी थे, उनका जीवन-संघर्ष भी उतना ही मर्मस्पर्शी था, जो मानवीय सम्वेदनाओं को गहरे स्तर पर झकझोर देने के लिए पर्याप्त है। उनके लिए कहना चाहूँगी–

पीर की एक पूँजी प्रकृति से मिली, पीर मानव हृदय का सुघर साज है ।
पीर रोने लगे तो लोरियाँ दो उसे, पीर सोने लगे तो जगाते चलो ।।

उनके विचारों में जो ताप और ताकत दिखाई देती है, वह उन्हीं जीवन-संघर्षों की देन है। उनके लेखन और विचारों के साथ-साथ उनके जीवन को भी जानना कम रोमांचक अनुभव नहीं हैं। नि:संदेह एक अत्यन्त संक्षिप्त बात-चीत में न उसे समेटा जा सकता है, ना समझा जा सकता है, इसलिए उनके समकालीन अथवा उनको समझने का प्रयास करने वाले विद्वानों के विचारों को आप तक रख रही हूँ। तमाम उतार-चढ़ाव के बीच जब वे कलकत्ता आये, तो उनका सघन सम्पर्क प्रसिद्ध क्रान्तिकारी आशुतोष लाहिड़ी से हुआ, जिन्हें बाद में काला पानी की सजा हुई। गोकुल जी क्रान्तिकारियों को पैसा और हथियार पहुँचाते थे।

शिवपूजन सहाय ने अपने संस्मरण में लिखा है कि– ''गोरी नौकरशाही के प्रति आपके उद्धत विचारों को सुनकर बार-बार यह आशंका होती थी कि आप कब कहाँ गिरफ्तार हो जायेंगे, कुछ ठीक नहीं। पुलिस और जेलखाने के अधिकारी आपको बहुत खतरनाक समझते थे। जेल से छूटते समय आप स्पष्ट कह दिया करते थे कि हमारा स्थान सुरक्षित रखना, हम शीघ्र ही आयेंगे। वैसा निडर लेखक, वक्ता और सम्पादक उस समय हिन्दी संसार में कम ही लोग थे।''[६] नागपुर में जब वे 'प्रणवीर' के सम्पादक थे, तो तिरंगे झण्डे के विरुद्ध लगी रोक के खिलाफ उन्होंने जबर्दस्त आन्दोलन किया। राजद्रोह के अभियोग में गिरफ्तारी के बाद न्यायालय में उनका दिया जोशीला व्याख्यान तमाम समाचार-पत्रों की सुर्खियाँ बना। भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन के सबसे बड़े व्यक्तित्व महात्मा गाँधी ने झण्डा-सत्याग्रह में उनके अदालत में दिये गये वक्तव्य पर 'यंग इंडिया' में सम्पादकीय लिखा था, जिसमें उनके व्यक्तित्व की काफी प्रशंसा थी। स्वामी दयानंद सरस्वती, मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपत राय जैसे लोगों से उनके व्यक्तिगत

सम्पर्क–संवाद थे। क्रान्तिकारियों में रास बिहारी बोस, चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह तक सम्मिलित थे। क्रान्तिकारियों के बीच उनकी स्थिति बेहद सम्मानजनक एवं विश्वसनीयता की थी। काकोरी काण्ड के बाद चन्द्रशेखर आजाद ने फरारी के दिनों में उन्हीं के यहाँ शरण लेकर दुबारा क्रान्तिकारी संगठन को स्थापित किया। उन्हीं की उपलब्ध पिस्तौल से भगत सिंह ने साण्डर्स का बध किया था। जीवन के अंतिम काल में वे बुन्देलखण्ड के एक अत्यन्त पिछड़े गाँव 'खोही' में साधु बनकर क्रान्तिकारियों को प्रशिक्षित करते, उन्हें छुपाते और मदद करते। बाद में, 'संदेह होने पर उन्हें मुख्यालय बुलवाया गया। इसी आने-जाने और खराब भोजन से वे बीमार पड़े और ३ सितम्बर, १९३५ को सुदूर गाँव में उनका निधन हो गया।

उनके साहित्यिक सम्पर्क का दायरा भी काफी व्यापक था। प्रताप नारायण मिश्र के सम्पर्क में आकर उन्होंने लेखन-कार्य प्रारम्भ किया। 'ब्राह्मण' में मैनेजर के रूप में उनका नाम भी छपने लगा। इलाहाबाद में रहते हुए पं. बालकृष्ण भट्ट का सामीप्य और उनके कुछ लेख 'हिन्दी प्रदीप' में भी छपे। पं. पद्मसिंह शर्मा, श्यामसुन्दर दास, गणेश शंकर विद्यार्थी, ईश्वरी प्रसाद शर्मा, महादेव प्रसाद सेठ, मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव, शिवपूजन सहाय सहित अपने समय के तमाम प्रमुख लेखकों के बीच वे सम्मानित रहे। निराला जी तो उन्हें अपना राजनीतिक गुरु ही मानते थे। उदय शंकर शास्त्री ने किन्हीं चंद्रोदय दीक्षित के हवाले से यह लिखा है कि– ''पं. किशोरीदास वाजपेयी ने किसी प्रसंग में कहा था कि हिन्दी लिखने की प्रेरणा तो मुझे राधामोहन गोकुल जी से मिली थी।''[७] गोकुल जी का कसमसाता देश-प्रेम उनके गद्य में उतर आता है। एक ही लेख में प्रांजल भाषा भी है और ठेठ गँवई किसान वाला हरमुठाहीपन (हल पर हाथों की कड़ी पकड़) भी। तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज, हिन्दी, उर्दू– सब एक ही प्रवाह में घुले-मिले हैं। वे प्रकृति को ईश्वर-स्थानापन्न मानते थे। पदार्थ और प्रकृति ही सत्य है। राधामोहन गोकुल में बहस और तर्क करने की अद्भुत प्रतिभा थी। गोकुल जी समाज के हर पहलू, हर समस्या को व्यापक फलक में रखकर विचार करते हैं। उनके विचार समय-समाज के गहरे सरोकारों से जन्म लेते हैं। वे अंग्रेजों और ईसाई धर्म के रिश्तों की बात करते हैं। जो लोग अंग्रेजों को आधुनिक और प्रगतिशील मानते हैं, गोकुल जी उनसे सहमति नहीं रखते, न ही ईसाई धर्म को करुणा का धर्म मानते हैं।

गोकुल जी ने सामाजिक विषयों पर काफी कुछ लिखा। इसमें स्त्री विषयक लेखों का एक बड़ा हिस्सा है, जिसका थोड़ा भाग ही अभी उपलब्ध हो सका है। इसके अध्ययन से लगता है कि उन्होंने स्त्रियों के समाज को बड़ी गहराई से समझा था और उनकी समस्याओं पर विस्तार से सोचा-विचारा था। वे स्त्रियों की समस्याओं को दूसरी अन्य समस्याओं से अलग कर नहीं देखते, बल्कि उसको सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में रखकर ही विचार करते हैं। राधामोहन गोकुल और 'रैडिकल : स्त्री-चेतना' शीर्षक से प्रो. सुधा सिंह का एक महत्त्वपूर्ण आलेख है, जिसमें उन्होंने राधामोहन जी के स्त्री सम्बन्धी विचारों का गहन विवेचन प्रस्तुत किया है। हिन्दी नवजागरण में दलित विमर्श को लेकर राधामोहन गोकुल के विचारों का आँकलन भी एक विचारोत्तेजक अनुभव है। समाज में मौजूद दलित समस्या पर भी वे प्रारम्भ से ही सोचते-विचारते हैं, जिसका प्रमाण उनकी सामाजिक विचारों की प्रारम्भिक पुस्तक 'नीतिदर्शन' (१९१२) में मिलता है। समस्या यह है कि इस विषय पर उनकी कुछ सामग्री अनुपलब्ध है। गोकुल जी का जीवन बड़ा ही संघर्षपूर्ण और घटना-बहुल था। उनकी सक्रियता के आयाम भी अलग-अलग रहे। वे व्यवस्थित रहकर

साहित्यिक लेखन करने वाले साहित्यकार भी नहीं थे। उनकी प्राथमिकता में साहित्यिक लेखन था भी नहीं। उन्होंने जीवन भर राजनीतिक और सामाजिक कार्यों को ही अहमियत दी और उसी के निमित्त अपना ज्यादातर लेखन किया। उनके लेखन में जनता के बीच वैज्ञानिक सोच और विचार फैलाना, राष्ट्रीय भावनाओं को उत्प्रेरित करना, पुरानी और जड़ परम्पराओं को खत्म करना, नयी वैज्ञानिक समझ पैदा करना मुख्य था। उनकी देशभक्ति उन्हें इस तरह बेचैन किये रहती थी कि उनके भीतर समाज में बुनियादी उलटफेर कर देने का आश्चर्यजनक रूप से तूफानी जज्बा भरा था। राधामोहन गोकुल के वैचारिक उत्कर्ष की चरम उपलब्धि उनके अंतिम काल के लिखे निबन्धों में देखने को मिलती है। खासतौर से 'ईश्वर का बहिष्कार' लेख की प्रशंसा में प्रेमचन्द ने लिखा कि– ''हिन्दी संसार में इसने हलचल मचा दी थी। इसकी दलीलों का जवाब नहीं है और लेख की शैली इतनी चुलबुली और विनोदमय है कि क्या कहना।'' (हंस– जनवरी, १९३३) उन्होंने इस लेख को 'हिन्दी साहित्य के विचार-साहित्य में एक स्तम्भ-सा' माना था। दरअसल; नवजागरण के नायकों में ईश्वर और धर्म को इस तेवर के साथ चुनौती देने वाले संभवत: वे पहले रचनाकार थे। ईश्वर और पुरोहित वर्ग के प्रति उनके विचारों में इतना तीखापन है, गोया वे बिजली के नंगे तार हों– 'हाई वोल्टेज' के।

अन्त में; सामाजिक यथार्थ का हवाला देकर वे सावधान करते हैं कि 'पोथीदास' मत बनो। समाज को नए समय के अनुसार ढालना जरूरी है। कागज की पुस्तकों की तुलना में प्रकृति की पुस्तकें हमें ज्यादा ज्ञानवान बनाती हैं। समानता, स्वाधीनता और न्याय पर सबका नैसर्गिक अधिकार है। यह उनके विचारों के मूल में है। गोकुल जी के विचारों में बड़ी बात यह है कि उनमें सिर्फ बौद्धिक उपक्रम भर नहीं है। और अंत में; स्वाधीनता-आन्दोलन में हिन्दी साहित्यकारों के स्वर्णिम योगदान को स्मरण करते हुए वर्तमान समय के प्रखर आलोचक-लेखक प्रोफेसर विजय बहादुर सिंह के शब्दों के आलोक में कहना चाहती हूँ– ''प्रसाद ने निराला के साथ मिलकर जो संसार रचा है, उसमें राष्ट्रीय अस्मिता की खोज का युगव्यापी अभियान है और यह क्यों और किस तरह है, इसे वे ही समझ पाएँगे, जिन्हें आज भी साम्राज्यवाद के सांस्कृतिक हमलों को लेकर चिन्ता है और जो भारतीय समाज को आज भी स्वाधीन तथा स्वतंत्र देखना चाहते हैं, जिसमें आज भी हिन्दी अपने बहुआयामी स्वरूप में अपने दायित्वों, चुनौतियों एवं बाजार के मापदण्डों में न केवल खरी उतर रही है, साथ-ही; अग्रणी पंक्ति में विराजमान हो 'जय हिन्द– जय हिन्दी' का उद्घोष कर रही है।''

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. शम्भुनाथ (सम्पादक)– राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और प्रसाद, नयी किताब, नई दिल्ली, पृ. ८०-८१
२. लीलाधर मंडलोई (सम्पादक)– कविता के सौ बरस, शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा, नई दिल्ली, पृ. २७६
३. वही, पृ. २८४।
४. प्रेमचन्द के विचार– भाग-२, पृ. ३५२
५. किशन कालजयी (सम्पादक)– एक थे राधामोहन गोकुल, अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. ३२
६. रचनावली-४, पृ. २५०
७. राधामोहन गोकुल स्मारिका, पृ. ११७

●

निर्मल वर्मा का कथा साहित्य : परिवेश की आधुनिकता

डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह*

निर्मल वर्मा एक कथाकार, निबन्धकार और चिन्तक के रूप में चर्चित हैं। ये नई कहानी आन्दोलन के दौर के कथाकार हैं, जिन्होंने हिन्दी कहानी को नया रूप, भाव-भंगिमा और कलात्मक सार्थकता प्रदान की है। निर्मल वर्मा की रचना-यात्रा में देश और विदेश– दोनों प्रकार के परिवेश हमारे सामने आते हैं। निर्मल वर्मा के ऊपर विदेशी परिवेश; विशेषत: प्राग का अधिक प्रभाव पड़ा है, इसलिए उनकी रचनाओं में पश्चिमी परिवेश का प्रभाव अधिक दिखायी पड़ता है।

घटना चाहे दिल्ली की हो, शिमला की हो या लन्दन की– सब जगह पश्चिमी परिवेश का प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ता है। निर्मल वर्मा की कहानियों में चेकोस्लोवाकिया, प्राग व लन्दन आदि देशों की सभ्यता एवं संस्कृति की झलक मिलती है, जहाँ बियर तथा रेडवाइन की महक बराबर मिलती रहती है। इनके पात्र शोर-शराबे के बीच क्लबों में गूँजते 'हॉट सांग्स' तथा 'पॉप म्यूजिक' (लोकप्रिय संगीत) की उत्तेजक लय पर थिरकते हैं।

भारतीय परिवेश पर लिखित कहानियों के पात्र भी विदेशी संगीत ही गाते-सुनते नजर आते हैं। भारतीय संगीत से उनका विशेष सरोकार नहीं दिखायी पड़ता है। निर्मल वर्मा की रचना-यात्रा से गुजरते हुए ऐसा महसूस होता है कि मानों जिन्दगी के परिवेश का चित्रण करना इनका खास मकसद रहा हो। निर्मल वर्मा के कथा-संसार में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की झलक मिलती है। मायादर्पण, डायरी का खेल, परिन्दे, सितम्बर की एक शाम, तीसरा गवाह, पिक्चर पोस्टकार्ड, कव्वे और काला पानी, सुबह की सैर इत्यादि कहानियों में भारतीय परिवेश के क्रिया-कलापों द्वारा आधुनिक जीवन की समस्याओं, जटिलताओं, रूढ़ियों एवं संस्कारों की अभिव्यक्ति मिलती है। निर्मल वर्मा की कहानियों में हर घटना; भले ही वह दिल्ली के कनॉट प्लेस की हो या शिमला की अथवा दिल्ली या प्राग की हो, कोई विशेष अन्तर अनुभव नहीं होता।

निर्मल वर्मा स्वयं अपनी कहानियों में विदेशी परिवेश के चित्रण को स्वीकार करते हैं। लेकिन उन्हें कहानियों-कविताओं के भौगोलिक खण्डों में विभाजित करना अरुचिकर और कुछ हद तक अर्थहीन लगता है। निर्मल वर्मा का मानना है– ''वर्षों विदेश में रहने के कारण मेरी कुछ कहानियों में शायद एक विराने किस्म का प्रवासीपन चला आया है। मुझे नहीं मालूम, यह इन कहानियों को अच्छा बनाता है या बुरा। कुछ भी हो, इन्हें विदेशी कहानियाँ कहना शायद ठीक नहीं होगा। यों भी मुझे कहानियों-कविताओं को भौगोलिक खण्डों में विभाजित करना अरुचिकर और बहुत हद तक अर्थहीन लगता रहा है। ग्राहम ग्रीन जिन्दगी-भर इंग्लैण्ड के बाहर अपने उपन्यासों के कथानक ढूँढते रहे– लेकिन रहे शुरू से लेकर आखिर तक ठेठ अंग्रेजी लेखक। क्या लारेन्स की कहानियों-उपन्यासों को देशी-विदेशी कटघरों में बाँटना हास्यास्पद नहीं होगा? मैं यहाँ यह चीज अपनी कहानियों को 'बचाने' के लिए नहीं (इसकी मुझे लालसा नहीं), केवल एक सीधी-सी बात को सीधे ढंग से रखने की कोशिश में कह रहा हूँ, ताकि हम निरर्थक बहसों से छुटकारा पा सकें। दरअसल; किसी लेखक की पृष्ठभूमि विदेशी है या देशी, यह चीज बहुत ही गौण है। इसका महत्त्व है, तो सिर्फ इसमें कि किस सीमा तक और कितनी गहराई से वह किसी खास स्थिति या नियति

* सहायक आचार्य– हिन्दी विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

को खोल पाती है- बल्कि यूँ कहें, महत्त्व की कोई चीज है, तो सिर्फ यह ही, बाकी सब राख है।''[१]

इस प्रकार, किसी लेखक की कहानियों को देशी-विदेशी पृष्ठभूमि में विभाजित करना निर्मल को उचित प्रतीत नहीं होता। कहानी किसी खास बात को किस सीमा और गहराई तक खोल पाती है, इसी में उसका महत्त्व आँका जा सकता है। निर्मल वर्मा की कहानियों में परिवेश की प्रधानता होती है। वे अपनी कहानियों में एक विशेष प्रकार के वातावरण का निर्माण करते हैं। यह वातावरण ही उनकी कहानियों को अन्त तक ले जाता है। कहानी के विकास या अन्त तक उसे पहुँचाने के लिए उन्हें किसी विशेष घटना की आवश्यकता नहीं पड़ती है। यही कारण है कि उनकी कहानियों एवं उपन्यासों में घटनाएँ नहीं के बराबर होती हैं। निर्मल अपनी कहानियों में घटना के बजाय वातावरण के निर्माण पर बल देते हैं। यही वातावरण कहानी के पात्रों व स्थितियों को खोलता हुआ उस मुकाम पर पहुँचता है, जहाँ कहानी अपना पूर्ण विकास प्राप्त करती है। निर्मल वर्मा अपनी कहानियों में घटनाओं के आरोहों-अवरोहों पर ध्यान देने के बजाय भावों के आरोहों-अवरोहों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस सन्दर्भ में डॉ. गोवर्धन सिंह शेखावत का विचार उपयुक्त जान पड़ता है। उनका मानना है कि– ''कथा-रचना की दृष्टि से निर्मल वर्मा की कहानियाँ वातावरण में लिपटी हुई हैं। वहाँ न घटनाएँ हैं और न कथावस्तु का अनावश्यक विस्तार। उनकी अधिकांश कहानियाँ भाव दशा का संकेत करने वाली हैं।''[२]

निर्मल वर्मा की सृजन-यात्रा में सुहावनी पहाड़ियों की तलहटी, समुद्रधारा का प्रवाह, उन्माद भरी नदी, प्रेम एवं यौवन के समान निर्बाध गति से बहता हुआ जान पड़ता है। 'एक शुरूआत' कहानी का नायक वियना से वापस आता है। उस समय वह यूरोप की भौगोलिक स्थिति का अवलोकन करते हुए स्वयं से कहता है– ''अब मैं वापिस यूरोप लौट रहा हूँ। बीच में चैनल का समुद्र है और दूर सागर के पास पार 'सीगल्फ' का झुण्ड उड़ जाता है– डोवर से परे यूरोप के आकाश पर।''[३] 'एक शुरूआत' कहानी से ही प्राकृतिक परिवेश का उदाहरण द्रष्टव्य है। इस कहानी का नायक स्टीमर पर बैठकर फेनिल समुद्र के सौन्दर्य को निहारता हुआ कहता है– ''स्टीमर चल रहा है। आस-पास समुद्र के फेनिल जल में पूरे द्वीप डूब जाते हैं और फिर जब हम उन्हें भूल जाते हैं, वे कहीं दूर के बच्चे की किलकारी की मानिंद अपना चेहरा उठा लेते हैं।''[४] देश-काल और स्थिति के अनुसार नयी कहानी में मानव-सम्बन्धों को शहरी जीवन-सन्दर्भों और स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में निर्मल वर्मा में चित्रित करने की प्रवृत्ति अधिक दिखायी पड़ती है– ''नई परिस्थितियों के कारण सम्बन्धों में जो ढीलता और बदलाव आ गया था, उसकी ओर कहानीकार की दृष्टि गयी है।''[५]

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में चरित्र, देश-काल और परिस्थितियों के अनुसार प्राकृतिक वातावरण में किसी पेंड़, पौधे, पर्वत और बादल की तरह अंकित होते हैं। 'परिन्दे' कहानी की छोटी-छोटी लड़कियों तथा मीडोज, झरने, झाड़ियों, फूलों आदि में कोई अन्तर नहीं है।

झाड़ियों के नीचे वे शोर करती पहुँच रही हैं, जिसका प्रभाव लतिका तक पहुँच रहा है। लतिका उन झरनों, झाड़ियों और लड़कियों के स्वर में तन्मय हो जाती है। देश-काल और परिस्थितियों का यह उदाहरण 'परिन्दे' कहानी में वातावरण के साथ संगीतमय चित्रित हुआ है। उदाहरण देखिए– ''लीड काइंडली लाइट.... संगीत के सुर मानों एक ऊँची पहाड़ी पर चढ़कर हाँफती हुई साँसों को आकाश की अबाध शून्यता में बिखेरते हुए नीचे उतर रहे हैं। बारिश की

मुलायम धूप चैपल के लम्बे-चौकोर शीशे पर झिलमला रही है, जिसकी एक महीन चमकीली रेखा ईसा मसीह की प्रतिमा पर तिरछी होकर गिर रही है। मोमबत्तियों का धुआँ धूप में नीली-सी लकीर खींचता हुआ हवा में तिरने लगा। पियानों के क्षणिक पॉज में लतिका-पत्तों का परिचित मर्मर कहीं दूर अनजानी दिशा से आता हुआ सुनाई दे जाता है। एक क्षण के लिए मुझे भ्रम हुआ कि चैपल का फीका-सा अँधेरा उस छोटे से 'प्रेयर हॉल' के चारों कोनों से सिमटता हुआ उसके आस-पास घिर आया है.... और पियानों के सुर अतीत की धुँध को भेदते हुए स्वयं उस धुँध का भाग बनते जा रहे हों ...।''[६] मानवीय सम्बन्धों की कहानियों में निर्मल वर्मा ने स्थूल यथार्थ की सीमा पार करने की कोशिश की है। उनकी कहानियों में अनुभूतियों का जीवन्त वातावरण चरित्र के रूप में पाठक के सामने उपस्थित होता है। मानव-सम्बन्धों में आयी उदासी और ठण्डेपन को देश-काल और परिस्थितियों के अनुसार निर्मल वर्मा ने मानवीय सम्वेदना के धरातल पर चित्रित करते हुए समाज के सामने रखने का सार्थक प्रयास किया है।

निर्मल वर्मा की अमूमन सभी कहानियाँ प्राकृतिक परिदृश्यों से परिपूर्ण हैं। उनकी कहानियाँ धुँध, कोहरे एवं बादलों से घिरी हुई हैं। जब भी नायक अथवा नायिका के मन में निराशा, कुण्ठा, अवसाद या अकेलेपन की छाया धुँध की तरह आती है, ऐसी स्थिति में प्रकृति और उनका साथ देते हुए धुँधमय हो जाती है। 'परिन्दे' कहानी की लतिका खिड़की खोलते ही धुँध का साक्षात्कार करती है– ''सुबह की बदली छायी थी। लतिका के खिड़की खोलते ही धुँध का गुब्बारा-सा भीतर घुस आया, जैसे रातभर दीवार के सहारे सर्दी में ठिठुरता हुआ वह भीतर आने की प्रतीक्षा कर रहा हो।''[७] परिन्दे को निर्मल वर्मा ने एक प्रतीक बनाकर व्यक्ति की पीड़ा को व्यक्त किया है। यह पीड़ा भरी प्रतीक्षा परिन्दे एवं लतिका में एक समान है। यहाँ निर्मल वर्मा ने मनुष्य की पीड़ा को परिन्दों के माध्यम से व्यक्त किया है। परिन्दे कहानी में प्रकृति का मानवीकरण किस प्रकार हुआ है? इस उदाहरण से समझ सकते हैं– ''पक्षियों का एक बेड़ा धूमिल आकाश में त्रिकोण बनाता हुआ पहाड़ों के पीछे से उनकी ओर आ रहा था। लतिका और डॉक्टर सिर उठाकर इन पक्षियों को देखते रहे। लतिका को याद आया, हर साल सर्दी की छुट्टियों से पहले ही परिन्दे मैदानों की ओर उड़ते हैं। कुछ दिनों के लिए बीच के इस पहाड़ी स्टेशन पर बसेरा करते हैं, प्रतीक्षा करते हैं बर्फ के दिनों की, जब वे नीचे अजनबी, अनजाने देशों में उड़ जायेंगे...।''[८] यहाँ पर लतिका की प्रतीक्षा को पक्षियों (परिन्दे) के माध्यम से बताने का सार्थक प्रयास निर्मल वर्मा ने किया है, जो उनकी अपनी विशिष्ट पहचान है।

निर्मल वर्मा की कहानियों के कथानक चीड़ों के पेड़ों से तथा उनके पात्र उन पेड़ों की छाया में घिरे रहते हैं। चीड़, कर्वा, ब्रुश, पाइन्स, चिनार, देवदार आदि के पेंड़ कुमायूँ, दिल्ली, शिमला, वेनिश तथा प्राग– हर एक जगह के कथानक में मिलते हैं। 'अन्तर' कहानी में इस तरह का उदाहरण मिलता है– ''खिड़की के इर्द-गिर्द कर्क के पेंड़ थे और उनकी नयी पत्तियाँ डूबती हुई धूप में झिलमिला रही थीं।''[९] 'परिन्दे' कहानी में चीड़ एवं खुबानी के पेंड़ों की उपस्थिति कहानी के वातावरण को प्राकृतिक बनाती है– ''स्कूल के पास पहुँचते-पहुँचते चीड़ के पेंड़ पीछे छूट गये, कहीं-कहीं खुबानी के आस-पास बुहस के लाल फूल धूप में चमक जाते थे।''[१०]

निर्मल वर्मा की कहानियों में वनस्पतियाँ चरित्रों के साथ चित्रित होकर स्वयं एक जीवन्त रूप धारण कर लेती हैं। 'डायरी का खेल' कहानी का बच्चा दिल्ली में यूकिलिप्टस के वृक्षों की लाइनें देखता हुआ कहता है– ''आधी रात के समय हवा से सरसराती यूकिलिप्टस वृक्षों की टेढ़ी-

मेढ़ी छायाओं के पीछे चैपल की उन सफेद दीवारों को देखकर शरीर में एक झुरझुरी-सी आ गयी थी।''[११]

निर्मल वर्मा की देशी-विदेशी समस्त कहानियों के पात्र चर्च, गिरजाघर, कब्रिस्तान, मन्दिर, रेतीली धूहों, नदी, नालों से सम्बन्धित हैं। यहाँ ये कहानी को गम्भीर एवं रहस्यमयता प्रदान करते हैं। कहीं-कहीं गिरजे, चर्च आदि का सुबह से लेकर दोपहर, शाम तथा रात के अँधेरे में, उनके सौन्दर्य का वर्णन किया गया है, जिसके सौन्दर्य को देखकर पात्र मुग्ध हो जाते हैं। 'पराये शहर' कहानी का नायक अपनी प्रेमिका से 'सेण्टमार्क' के 'स्क्वायर' में मिलता है। वह स्वयं बतलाता है– ''मैं उससे सेण्टमार्क के स्क्वायर में मिला था। स्क्वायर में ही नहीं, उसके जरा पीछे पुल के पास, जहाँ गदोले खड़े रहते हैं।''[१२]

निर्मल वर्मा की कहानियों में शुष्क एवं ठण्डी हवाएँ चलती हैं। 'अन्तर' कहानी का नायक शीतलहर से बचने के लिए अपने बैग से मफलर निकालकर लपेटता है। इस प्रकार, निर्मल के कथा साहित्य में वेनिस के टापू, समुद्र तथा लन्दन की सुहावनी मस्त रातें, शाम के समय पार्कों, बेंचों तथा हवाओं में उड़ते पत्ते, म्यूजियम, आर्टगैलरी, कब्रिस्तान, बवण्डर आदि हैं, जो देश-काल और परिस्थितियों के अनुसार पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक होते हैं। ठण्ड से सम्बन्धित एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है। 'दो घर' कहानी का नायक ठण्ड सहन नहीं कर पाता है, इसलिए वह कहता है– ''हम अँधेरे में चलते रहे। ठण्ड काफी थी। पेड़ों के नीचे शान्ति थी..... हवा का निशान न था, इसलिए जो पत्ते नंगी शाखाओं पर अधमरे लटके थे, उनके गिरने की कोई आशंका नहीं थी। नंगे पेड़ों को देखकर भारतीय नायक को आश्चर्य होता है.... अपने देश में पत्ते कब उगते हैं, कब झरते हैं, पता ही नहीं चलता। यहाँ एक बाढ़-सी आ जाती है।''[१३]

निर्मल वर्मा की कहानियाँ विदेशी परिवेश को लेकर भी लिखी गयी हैं। उनकी कहानियों में भारतीय पात्र गर्मियों में भारत छोड़कर पेरिस की, वेनिस की सैर करने लगते हैं। 'एक शुरूआत' कहानी का नायक कहता है– ''वे गर्मियों के दिन थे और सब लोग यूरोप में छुट्टियाँ गुजारकर अपने-अपने घर लौट रहे थे। स्टीमर खचाखच भरा था। चारों ओर जींस पहने लड़कियाँ, हवा में उड़ते रंग-बिरंगे स्वार्क और बीयर के ग्लासों के इर्द-गिर्द बैठे लड़के-लड़कियों के गुच्छे दिखायी दे जाते थे।''[१४] भारतीय संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति से अलग प्रकार की संस्कृति है। भारतीय संस्कृति पूजनीय और गौरवमयी है, जिसके समक्ष पश्चिमी संस्कृति हीन दिखाई पड़ती है। फिर भी; जाने क्यों निर्मल वर्मा की कहानियों में पात्र एवं चरित्र विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति आकर्षित नजर आते हैं। आधुनिक भारतीयों का पश्चिमी संस्कृति एवं सभ्यता से जो लगाव है, उसका अंकन निर्मल वर्मा आज के परिवेश में करते हैं। आज की पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने में स्वयं को गौरवान्वित महसूस करती है। इस सम्बन्ध में निर्मल के विचार इस प्रकार हैं– ''आज का कोई कलाकार, चाहे वह फ्रेंच हो या जापानी या भारतीय, स्वयं को पश्चिमी सभ्यता के अन्तर्विरोधों और संकट से अछूता नहीं रख सकता। इसे यूरोप की विशेष स्थिति कहकर टाला नहीं जा सकता, क्योंकि वह बीसवीं सदी की केन्द्रीय स्थिति है, जिसमें कमोवेश सभी देश के कलाकार प्रतिबद्ध हैं।''[१५]

भारतीय संस्कृति की अपनी कुछ विशिष्ट पहचान है, जिसे शील, संयम, उदारता, लज्जा, नैतिकता, सहृदयता एवं पूजा-पाठ के अन्तर्गत समझ सकते हैं। इन आधारभूत तत्त्वों को निर्मल वर्मा के भारतीय परिवेश की कहानियों में देख सकते हैं। इन कहानियों में 'डायरी के खेल' एवं 'कव्वे और काला पानी' को लिया जा सकता है। 'कव्वे एवं कालापानी' कहानी के अन्तर्गत साधु-सन्तों एवं संन्यासियों की उपस्थिति भारतीय परिवेश की पहचान को दर्शाती है। निर्मल वर्मा की

कहानियों का परिवेश कुछ इस प्रकार का है कि पाठक उन्हें पढ़ते हुए विदेश में भ्रमण करने लगता है, जिनके पात्र बियर बार, पब में शराब का सेवन करते हुए, उत्तेजक संगीत पर नृत्य करते हुए पाये जाते हैं। उनकी रचना-यात्रा के दौरान हम पाते हैं कि गिटार, वायलिन, आर्केस्ट्रा, पियानों के संगीत बराबर विद्यमान रहते हैं। निर्मल के कथा साहित्य के पात्र अपनी थकान, उदासी एवं अकेलेपन के अवसाद को दूर करने के लिए शाम के समय किसी होटल, रेस्तराँ में बैठकर संगीत सुनते हुए अक्सर दिखायी पड़ते हैं। यदि हम कहें कि निर्मल वर्मा के अधिकांश पात्र विदेशी रंग में रंगे हुए हैं, तो गलत नहीं होगा। 'डायरी का खेल' कहानी की चाची भी ग्रामोफोन सुनने की शौकीन है। वह कहती है– ''क्या भइया! बहुत दिनों से रिकार्ड नहीं बजाया और जब तक वह घिसा-पिटा रिकॉर्ड दम तोड़ता हुआ भर्राये स्वर में बजता रहता, चाची आँखें मूँदे सुस्त-सी बैठी रहतीं और उनके होंठ बार-बार फड़फड़ा उठते।''[१६] 'पिक्चर पोस्टकार्ड' के लगभग सभी पात्र– परेश, नीलू, सी.डी. और निकी भी संगीत प्रेमी हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि संगीत-वर्णन निर्मल वर्मा के लिए शोभा की वस्तु नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण रचना-प्रक्रिया ही संगीतधर्मी है। निर्मल वर्मा ने संगीत का चित्रण केवल वातावरण-चित्रण के लिए नहीं किया है, बल्कि संगीत के राग-धर्म को भी व्यक्त किया है, जिसके द्वारा विविध वस्तुएँ पिघल कर, अपनी पृथक् सत्ता खोती हुई, एक भाव-धारा में बदल जाती हैं।

निर्मल वर्मा की रचना-प्रक्रिया में पात्रों का चरित्र देश-काल और परिस्थितियों के अनुसार विकसित हुआ है। विदेशी परिवेश की कहानियों में नैतिकता का अभाव-सा पाया जाता है। ऐसी कहानियों में नग्नता की अभिव्यक्ति हुई है, जिसके पात्र एक अलग प्रकार के अनैतिकता एवं वासनामय परिवेश में पाये जाते हैं। निर्मल वर्मा के पात्रों में नग्नता के प्रति एक विशेष आकर्षण है। 'लवर्स' कहानी में– ''अधेड़ उम्र का व्यक्ति मैग्जीन के कवर पर लेटी एक अर्द्धनग्न युवती के चित्र को दुकान पर बैठे लड़कों को दिखाता है और आँख मारकर हँसता है।''[१७] निर्मल वर्मा ने अपने कथा साहित्य में जितने खुले रूप से अपनी आधुनिक नायिकाओं को शराब एवं सिगरेट पीते दिखाया है, उतना उनके समकालीन कथाकारों ने दिखाने का साहस नहीं किया है। उनकी नायिकाएँ काफी बिन्दास हैं। उनमें किसी प्रकार की वर्जनाएँ नहीं हैं। सुख की खातिर वे किसी से सम्बन्ध बना सकती हैं। फिर वहाँ घर-परिवार कुछ भी देखना मायने नहीं रहता। निर्मल वर्मा के पात्र मुक्त भोगी हैं। शरीरवाद के प्रति उनका आग्रह है। वे विवाहपूर्व शारीरिक सम्बन्ध बनाने में हिचकते नहीं हैं। सम्भोग के समय न मर्यादा का ध्यान रहता है, न समाज की परवाह। किन्तु भारतीय परिवेश की कहानियों में यह बात बहुत कम पायी जाती है। उन्मुक्त भोग एवं नग्नता का खुला प्रदर्शन भारतीय परिवेश की कहानियों में नहीं दिखायी देता है। भारतीयों की यह विशेषता रही है कि वे विजातीय जीवन-उपकरणों के बीच भी अपनी पहचान बनाये रखने के लिए कहानी के परिवेश पर बहुत ध्यान देते हैं। इसलिए देश-काल एवं परिस्थितियों के अनुसार, निर्मल वर्मा के चरित्रों की भारतीयता प्रामाणिक है, सिर्फ इस नाते नहीं कि ये परिवेश के दबाव में बँधे रहते हैं।

निर्मल वर्मा की अधिकांश कहानियों में एक भुतहा वीरानापन छाया रहता है। ये वही कहानियाँ हैं, जिन पर विदेशी होने का ठप्पा लगता है। 'वे दिन' उपन्यास का पूरा परिवेश ही विदेशी है। यह उपन्यास उन तीन दिनों का बखान है, जो कथानायक और रायना ने प्राग के शान्तिपूर्ण वातावरण में बर्फ, पुराने गिरजाघर और पुराने शहर के पुलों के बीच छुट्टियों के खालीपन के अहसास के साथ बिताये थे। उपन्यास के सभी पात्र अपने-अपने अतीत से जूझते हुए जी रहे हैं। इसके सभी पात्र अपने निजी विचार रखते हैं। यह व्यक्तिपरक दृष्टिकोण उन्हें अलगाववादी बना देता है। अपनी अलगाववादी प्रकृति के कारण ही रायना अपने पति से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेती है। रायना का

दूसरे पुरुषों के साथ रात बिताना उसके लिए केवल उस अँधेरे कोने को भरना-भर होता है। 'लाल टीन की छत' उपन्यास दिल्ली, लन्दन और शिमला के परिवेश की याद दिलाती है, जहाँ शिमला की प्राकृतिक वादियों में काया का शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' निर्मल वर्मा की कहानियों में परिवेश की उपस्थिति को इस प्रकार बताते हैं– ''निर्मल वर्मा की कहानियों में परिवेश की अवधारणा अमूर्त्त है। गाँव या शहर के उस आदमी का साक्षात्कार नहीं होता, जिसे हम रोज अपने भीतर जी रहे हैं। विडम्बना यह है कि शहर के लिए जिस परिवेश का दबाव कहानियाँ उभारना चाहती हैं, उस परिवेश का दबाव भी नहीं उभरता।''[१८]

संक्षेप में; हम कह सकते हैं कि निर्मल वर्मा के यहाँ परिवेश की काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। चूँकि वे अपनी कहानियों में एक स्वतन्त्र चमत्कार से परिपूर्ण संसार की रचना करते हैं, तो यह जरूरी हो जाता है कि उसमें निहित परिवेश के छोटे-छोटे ब्यौरे देकर ही उसे वास्तविकता के धरातल पर खड़ा करें और वे ऐसा करते भी हैं। 'कहानी : नयी कहानी' में एक जगह नामवर सिंह कहते हैं– ''निर्मल वर्मा की कहानियों में चरित्र, वातावरण, कथानक आदि का कलात्मक रचाव है। कलात्मक रचाव स्वयं रूप के विविध तत्त्वों के अन्तर्गत, फिर वस्तु और रूप के बीच नयी वस्तु के अन्तर्गत। पात्र अलग इसलिए याद नहीं आते कि वे परिस्थितियों के अंग हैं।''[१९]

इस प्रकार, हम देखते हैं कि निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में परिवेश की प्रधानता है। यह परिवेश का अधुनापन निर्मल वर्मा के पूरे कथा साहित्य में अलग तरह के वातावरण का निर्माण करके कहानी को अन्त तक ले जाता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. निर्मल वर्मा– मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका से उद्धृत, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ. vii
२. गोवर्धन सिंह शेखावत– नई कहानी की उपलब्धियाँ और सीमाएँ, पृ. १६
३. निर्मल वर्मा– जलती झाड़ी, एक शुरूआत, पृ. १५०
४. निर्मल वर्मा– जलती झाड़ी, पृ. १५०
५. नरेन्द्र मोहन– आज के सन्दर्भ में नई कहानी, पृ. ३४
६. निर्मल वर्मा– परिन्दे, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. ११९
७. वही- पृ. ११४
८. वही, पृ. १३५
९. निर्मल वर्मा– जलती झाड़ी, अन्तर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. १४५
१०. निर्मल वर्मा– परिन्दे, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, २००८, पृ. १२६
११. वही– पृ. १८
१२. निर्मल वर्मा– जलती झाड़ी, पराए शहर में, पृ. ७३
१३. निर्मल वर्मा– बीच बहस में, दो घर, पृ. ५९
१४. निर्मल वर्मा– जलती झाड़ी, एक शुरूआत, पृ. ५७
१५. निर्मल वर्मा– हर बारिश में, दो संस्कृतियों के बीच, पृ. ११
१६. निर्मल वर्मा– परिन्दे, डायरी का खेल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, २००८, पृ. १३
१७. निर्मल वर्मा– जलती झाड़ी, लन्दन की एक रात, पृ. ९
१८. उपेन्द्रनाथ 'अश्क'– हिन्दी कहानी : अन्तरंग परिचय, पृ. १३४
१९. नामवर सिंह– कहानी : नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २००८, पृ. ५६

●

'द सब्जेक्शन ऑफ वुमेन' की प्रासंगिकता

डॉ. किंगसन सिंह पटेल*

जॉन स्टुअर्ट मिल की 'द सब्जेक्शन ऑफ वुमेन' नारीवादी इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण किताब के रूप में दर्ज है। एक चिंतक के रूप में जॉन स्टुअर्ट मिल का योगदान बहुआयामी है। वे १९वीं सदी के महत्त्वपूर्ण उदारवादी अर्थशास्त्री, दार्शनिक व नारीवादी चिंतक के रूप में जाने जाते हैं। अर्थशास्त्र व दर्शन की जिस धारा से मिल सम्बद्ध थे, वह लम्बे समय तक समाज में प्रगतिशील भूमिका निभा पाने में समर्थ न हो सकी, लेकिन बतौर नारीवादी चिंतक उनका महत्त्व आज भी बरकरार है। नारीवादी चिंतन के इतिहास में 'द सब्जेक्शन ऑफ वुमेन' को क्लॉसिक का दर्जा प्राप्त है। आज इस किताब का सम्बन्ध उदारवादी नारीवाद से जोड़ा जाता है, लेकिन अपने समय में यह किताब इतनी विस्फोटक थी कि उन्हें प्रकाशक बड़ी मुश्किल से मिले तथा उन्हें भारी विरोध का सामना करना पड़ा था। इस किताब को प्रकाशित कराने के लिए मिल को दो साल इंतजार करना पड़ा। दो सालों के बाद १८६९ ई. में यह किताब प्रकाशित हुई। कहते हैं मिल की यह एकमात्र पुस्तक थी, जिस पर प्रकाशक को घाटा उठाना पड़ा।

जॉन स्टुअर्ट मिल का जन्म २० मई, १८०८ ई. को लंदन के पेंटॉनविले शहर में हुआ था। वे अर्थशास्त्री और इतिहासकार जेम्स मिल के बड़े बेटे थे। इनके पिता ने हर सम्भव कोशिश की कि उनका बेटा उनके विचारों को आत्मसात् करे और उन्होंने जॉन स्टुअर्ट मिल को तीन वर्ष की अवस्था से ही कठिन पढ़ाई के काम में लगा दिया। आम बच्चों की तरह न तो उन्हें खेलने-घूमने का मौका मिला और न ही उन्हें किसी स्कूल में डाला गया। बचपन की सारी पढ़ाई पिता की देख-रेख में हुई। तीन वर्ष की अवस्था में ही उन्हें लैटिन और ग्रीक के अध्ययन में और आठ वर्ष की अवस्था में विज्ञान, गणित, इतिहास और अर्थशास्त्र की कठिन पढ़ाई में लगा दिया गया। जेम्स मिल स्वयं और अपने दोस्तों की मदद से अपने बेटे को महान चिंतक बनाना चाहते थे, इसलिए वे अपने बेटे को हमेशा स्वयं या किसी-न-किसी परिचित विद्वान् के संरक्षण में रखे। दरअसल; वे उनकी पढ़ाई के प्रति कुछ ज्यादा ही सचेत थे, इसीलिए जॉन स्टुअर्ट मिल के पास पढ़ने के अलावा कोई काम था ही नहीं। हर वक्त पढ़ाई और उस पर बातचीत। पिता की असंतुष्टि ने जॉन स्टुअर्ट मिल के शारीरिक और मानसिक विकास को बुरी तरह प्रभावित किया। सामान्य बच्चे की तरह न तो उनका पालन-पोषण हुआ और न ही वे सामान्य व्यक्ति बन पाये। अपने सहपाठियों की अपेक्षा अधिक ज्ञान और चिंतन होते हुए भी उनमें आत्मविश्वास की कमी रही। पिता की अपेक्षाओं और विचारों पर खरा न उतर पाने और अपने मन की न कर पाने के द्वंद्व ने उनके मानसिक संतुलन को सामान्य नहीं रहने दिया। परिणामस्वरूप; बीस वर्ष की अवस्था में वे खतरनाक मानसिक आघात के शिकार हुए। उन्हें यह आघात शायद पिता की कामनाओं पर खरा न उतर पाने और लगातार पढ़ने से हुआ था। लेकिन वे जल्द ही इस व्याघात से उबर गये। उबरने के बाद उनके विचारों में जबरदस्त परिवर्तन आया। वे अपने पिता और उनके मित्र जेरेमी बेंथम से न केवल दूर हो गये, बल्कि बेंथमवादी विचारों को भी मानने से इंकार कर दिया। इसके बाद मिल की अपने पिता से बौद्धिक दूरी बन गयी। यह दूरी इतनी अधिक बढ़ गई कि इनके पिता ने इन्हें 'सैद्धान्तिक भगौड़ा' तक कह डाला।

* एसोसिएट प्रोफेसर– हिन्दी विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-२२१००५

जॉन स्टुअर्ट मिल की जिंदगी में बड़ा और महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हैरियट टेलर के सम्पर्क के कारण आया। जब २४ वर्ष की अवस्था में स्टुअर्ट मिल हैरियट टेलर से मिले, तो वे विवाहित थीं। हैरियट समझदार और स्वत:स्फूर्त महिला थीं। वे कविता, निबंध आदि लिखा करती थीं, जिससे मिल बहुत प्रभावित हुए। उनका मिलन दोस्ती और फिर आत्मीय सम्बन्धों में बदल गया। २१ वर्ष की दोस्ती के बाद जब हैरियट के पति की मृत्यु हो गयी, तो इन दोनों ने १८५१ में विवाह कर लिया। विवाह के सात साल बाद ही हैरियट की मृत्यु हो गयी। हैरियट की मृत्यु के बाद मिल ने कहा कि 'मेरे जीवन की बहार खत्म हो गयी'। उन्होंने उनकी कब्र पर स्मारक बनवाये और वहीं छोटा-सा कॉटेज लेकर रहने लगे, ताकि रोज उनके दर्शन कर सकें। मिल के मरने के बाद उन्हें उनकी पत्नी की कब्र में ही दफनाया गया। मिल की रचनाओं पर हैरियट के विचारों का बहुत प्रभाव है, खास करके 'ऑन लिबर्टी' और 'द सब्जेक्शन ऑफ वूमेन' पर। ऐसा कहा जाता है कि हैरियट के कारण ही वे स्त्रियों के अधिकारों के इतने बड़े समर्थक बने। स्वयं मिल हैरियट को न केवल अपनी 'एकमात्र प्रेरणा' कहते थे, बल्कि वह उसे अपने 'श्रेष्ठतम लेखन की सहलेखिका' भी मानते थे।

हिन्दी में इस किताब के दो अनुवाद हुए हैं। एक प्रगति सक्सेना का, जिसका नाम 'स्त्रियों की पराधीनता' है, दूसरा युगांक धीर का, जिसका नाम 'स्त्री और पराधीनता : प्रकृति, शक्ति और भूमिका से जुड़े प्रश्न' है। नाम से ही जाहिर है कि यह स्त्री की और साथ में पुरुष की भी शक्ति, शारीरिक-मानसिक क्षमताओं और सम्भावनाओं की प्रकृति को लेकर जो अलग-अलग धारणाएँ समाज में मौजूद हैं, लेखक उनसे जिरह करता है। पहले अध्याय में लेखक उन मान्यताओं को रखता है, जो स्त्री के बारे में कमोवेश सभी समाजों में मान्य हैं। स्त्री को सभी समाजों में पुरुष से शारीरिक और मानसिक तौर पर कमजोर माना जाता है। स्त्री की प्रकृति के बारे में अब तक जो भी मान्यताएँ समाज में व्याप्त हैं या पुरुष लेखकों ने उनके जानने के बारे में अब तक जो भी दावे किये हैं, स्टुअर्ट मिल उसकी सीमाओं को पहचानते हुए लिखते हैं कि– ''स्त्रियों के बारे में जो जानकारी उपलब्ध है, वह अपूर्ण और बनावटी है; और स्त्रियों के चरित्र को तब तक पूरी तरह नहीं जाना जा सकता, जब तक कि स्त्रियाँ खुद हमें पूरी कहानी न सुना दें।''[१] जाहिर सी बात है कि यहाँ मिल स्त्री को अपनी बात कहने के अधिकार की वकालत कर रहे हैं और उसकी अभिव्यक्ति को ही अन्तिम प्रमाण मान रहे हैं।

इस किताब के प्रथम अध्याय– 'स्त्री की प्रकृति को जानने के झूठे दावे' में मिल विस्तार से स्त्रियों के बारे में लोगों की सही-गलत धारणाओं को सामने रखते हैं। स्त्रियाँ प्राकृतिक रूप से कमजोर होती हैं। वे भावनात्मक अधिक और बौद्धिक कम होती हैं– इसीलिए वे गम्भीर चिन्तन नहीं कर सकतीं। वे प्रशासनिक जिम्मेदारियों को उठाने के अनुपयुक्त तथा घर-परिवार और बच्चों को सँभालने के उपयुक्त होती हैं– आदि जो तथ्यविहीन मान्यताएँ समाज में व्याप्त हैं, मिल उन तर्कों को समाज में मौजूद उदाहरणों के जरिए खारिज करते हैं। मिल बहुत साफ कहते हैं कि– ''किसी के लड़के या लड़की के रूप में पैदा होने को उसी तरह देखना चाहिए, जैसे कोई इंसान गोरा तो कोई काला पैदा होता है, कोई शाही तो कोई आम पैदा होता है।''[२] उनकी समझ से सभी मनुष्य की प्रकृति समान होती है। स्त्री-पुरुष का स्वभाव जैसी कोई चीज नहीं होती– ''जिसे आज 'स्त्री का स्वभाव' कहा जाता है, वह एक नकली चीज है और कुछ दिशाओं में बाध्यतापूर्ण दमन और कुछ दिशाओं में अप्राकृतिक फैलाव का परिणाम है।''[३] यहाँ मिल सामाजीकरण के

अपने इस महत्त्वपूर्ण विश्लेषण के दौरान उस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं, जहाँ से कोई लड़का, तो कोई लड़की बनती है।

मिल समाज में मौजूद स्त्रियों की दोयम स्थिति का कारण उनकी प्रकृति या 'स्वभाव' में नहीं, बल्कि समाज में मौजूद असमानता और उनके सामाजीकरण में देखते हैं। समाज में स्त्री-पुरुष के अलग-अलग नियम और भूमिकाएँ हैं। उनका पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा और गुणों का विकास समान न करके अलग-अलग ढंग और उद्देश्य से किया जाता है, जिसके कारण उनकी क्षमताओं का विकास भी अलग होता है। स्त्री को चूँकि एक व्यक्ति तक सीमित मान लिया जाता रहा है, इसलिए उसकी क्षमताओं का पूर्ण विकास न करके उसे एक पुरुष– भावी पति– को ध्यान में रखकर किया जाता है। उन्हें समाज के लिए उपयोगी व्यक्ति बनने के लिए तैयार ही नहीं किया जाता है, इसीलिए स्त्रियाँ सामाजिक कार्यों में पिछड़ जाती हैं और उन्हें किसी पुरुष पर निर्भर होकर जीवनयापन करना पड़ता है। इसलिए उन्हें जीवन-जगत में दोयम दर्जे का जीव मान लिया जाता है।

जॉन स्टुअर्ट मिल वर्तमान समय में मौजूद स्त्री-पुरुष सम्बन्ध को मालिक और गुलाम के सम्बन्ध के रूपक के तौर पर देखते हैं। वे उसकी मजबूरी और नियति को बहुत साफ रेखांकित करते हैं कि– ''किसी तानाशाह की अन्तरंग गुलाम बनकर जीना ही स्त्री की नियति है। और अगर हर चीज के लिए उसे उसी पर निर्भर रहना है, तो क्या यह न्यायसंगत नहीं कि उसे कम-से-कम ऐसा तानाशाह तो मिले, जो उसे खुश रख सकता हो? क्या उसे कई तानाशाहों को आजमाने का हक़ नहीं होना चाहिए, जब तक कि उसे पनपसंद तानाशाह न मिल जाए? पर आज स्थिति ऐसी है कि उसे एक ही तानाशाह का गुलाम बनकर जीना पड़ता है, भले ही वह उसे जरा भी पसंद न करता हो और उसे एक नरक-सी जिंदगी जीने के लिए बाध्य किये हो।''[४] मिल उन सम्बन्धों और मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं, जो अब तक समतामूलक और आत्मीय मान लिए गये हैं। ''पति, परिवार, विवाह आदि मान ली गयी पवित्र संस्थाओं को वे स्त्री-शोषण के केन्द्र बताते हैं।''[५] वे स्त्री को सुन्दर वस्तु के रूप में विकसित करने के बजाय उसे समाज में सकारात्मक भूमिका निभा सकने वाले सामाजिक व्यक्ति के रूप में विकसित करने की वकालत करते हैं।

इस किताब में मिल स्त्री-पुरुष के साथ समाज को नये नजरिए से देखने और गढ़ने का प्रयास करते हैं। वे बहुत साफ लिखते हैं कि चूँकि स्त्री और पुरुष के बीच निर्मित असमान सम्बन्ध किसी प्राकृतिक नियम के तहत नहीं, बल्कि सामाजिक निर्मितियों की देन है, इसलिए उसे बदला जा सकता है। वे विस्तार से सामाजीकरण की उन प्रक्रियाओं का विश्लेषण करते हैं, जो स्त्री और पुरुष की नियति को निर्धारित करते हैं। अलग-अलग सामाजीकरण और नियम-कानून जहाँ स्त्री को घरेलू, सुन्दर और कमजोर बनाते हैं, वहीं पुरुष को ताकतवर और 'मर्द' बनाते हैं। इस तरह, समाज में स्त्री कमतर और पुरुष वर्चस्व की स्थिति में आ जाता है। असल में; यह सामाजीकरण ही है, जो एक 'नर' को 'मर्द' और 'मादा' को 'औरत' बनाता है। 'मर्द' और 'औरत' बनने की यह प्रक्रिया एक दिन में नहीं, बल्कि हजारों सालों के सामाजीकरण का परिणाम है।

कमतर और श्रेष्ठ का यह सम्बन्ध उन्हें शोषित और शोषक, मिल के शब्दों में 'गुलाम और मालिक' के सम्बन्ध में तब्दील कर देता है। गुलाम-मालिक का यह सम्बन्ध देखने में चाहे जितना 'सौन्दर्यबोधीय' लगे, परन्तु यह मालिक को भी गुलाम बना लेता है। इस तरह, एक अमानवीय

व्यवस्था का जन्म होता है, जिसमें सब-के-सब विकृत चरित्र के जीव बनते हैं। मिल इस बात को बहुत जोरदार ढंग से स्थापित करते हैं कि समतामूलक सम्बन्ध और समाज के निर्माण के बाद ही यह समझा जा सकता है कि 'स्त्री और पुरुष का वास्तविक चरित्र क्या होगा?'

स्त्रियों के बारे में मौजूद धारणा के विपरीत जाकर मिल यह देखने में सफल होते हैं कि इन दमनकारी परिस्थितियों के बीच भी स्त्रियों में ऐसे गुणों को देखा जा सकता है, जो उन्हें किसी भी मामले में पुरुषों से कमतर साबित नहीं करता। वे विभिन्न उदाहरणों से यह साबित करते हैं कि इन असमान सामाजिक संरचना और जीवन-स्थितियों के बीच रहते हुए भी उनमें सहज व्यावहारिकता, निर्णय की निपुणता, सम्वेगों की सम्वेदनशीलता आदि गुण देखे जा सकते हैं। वे बहुत साफ लिखते हैं– ''पुरुषों की मानसिक क्रिया धीमी होने की अपेक्षा की जा सकती है। वे महिलाओं की शक्ति न तो विचार में, न ही भावनाओं में इतने तीव्र होते हैं। बड़े आकार का शरीर हमेशा कार्य करने में थोड़ा समय लगाता है। दूसरी तरफ; जब वे सक्रिय हो जाते हैं, तो पुरुषों का दिमाग अपेक्षाकृत अधिक काम कर सकता है। जिस कार्य को पहले शुरू किया, वह उसी की निरन्तरता में अधिक कुशल होगा और एक प्रकार के कार्य से हटकर दूसरे प्रकार के काम को करने में उन्हें अधिक समय लगेगा। लेकिन जो काम वह पहले से ही कर रहा है, उसे वह बिना थके लगातार लम्बे समय तक कर लेगा। और क्या हम यह नहीं पाते हैं कि जिन चीजों में पुरुष अधिकतर महिलाओं से श्रेष्ठ साबित होते हैं, वे वही कार्य हैं, जिनमें एक ही विचार पर लम्बे समय तक परिश्रम करने की आवश्यकता होती है, जबकि महिलाएँ वे काम श्रेष्ठता से कर लेती हैं, जिन्हें तुरन्त व शीघ्र करने की जरूरत होती है? एक महिला का दिमाग जल्दी थक जाता है; लेकिन थकान की मात्रा देखते हुए हमें उम्मीद करनी चाहिए कि वह जल्दी ही थकान से उबर भी जाती है।''[६] उनकी व्यस्त जीवन-स्थितियाँ और यह गुण उन्हें दर्शन, अविष्कार आदि लम्बा समय और एकाग्रचिंतन लेने वाले विषयों की विशेषज्ञता में यदि बाधक बनाते हैं, तो जीवन-जगत के अन्य व्यावहारिक मामलों में उन्हें पुरुषों से श्रेष्ठ भी ठहराते हैं। मजेदार बात यह है कि मिल इसमें उन्हीं कार्यों और व्यवहारों के आधार पर स्त्री को सहज, समझदार और निर्णय में निपुण सिद्ध करते हैं, जिन्हें हेय या छुद्र माना जाता रहा है। इस तरह से, मिल स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले कार्यों और व्यवहारों को महत्त्व प्रदान करने का सराहनीय काम करते हैं।

मिल एक ऐसी स्त्री के निर्माण की बात करते हैं, जो सहज और स्वतन्त्र हो। उन्हें लगता है कि इसे सामाजिक क्रान्ति के जरिए पाया जा सकता है। इसीलिए वे उन सामाजिक और कानूनी बंधनों को खत्म करने की बात करते हैं, जो स्त्री के सहज विकास में बाधक हैं। वे सभी क्षेत्रों में खुली प्रतियोगिता का समर्थन करते हैं। इस प्रक्रिया में वे गरीब, स्त्री, 'नीग्रो' आदि सबके आने के अधिकार का समर्थन करते हैं। वे बहुत साफ लिखते हैं कि– ''कोई व्यक्ति उस क्षेत्र में ही अच्छा और मौलिक कर सकता है, जिसमें उसकी स्वाभाविक रुचि और क्षमता होगी। वह स्वयं ही उस तरफ नहीं जायेगा, जो उसके 'स्वभाव' के प्रतिकूल होगा।'' इसलिए ''स्त्रियों को पुरुषों के साथ खुली प्रतियोगिता न करने देना अन्यायपूर्ण और एक तरह का सामाजिक अपराध है।''[७] स्त्रियों की सम्पूर्ण क्षमताओं का विकास न होना, केवल स्त्रियों के लिए बाधक नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के विकास में बाधक है। मिल का मानना है कि– ''स्त्रियों को अपनी क्षमताओं का उपयोग करने देने और किसी भी कार्यक्षेत्र में उनके प्रवेश की स्वतंत्रता होने का दूसरा लाभ होगा– मनुष्यों की उपलब्ध मानसिक क्षमताओं में दुगुनी वृद्धि। आज अगर किसी कार्यक्षेत्र में समाज और मानवता के विकास में हाथ बँटाने के लिए एक व्यक्ति उपलब्ध है, तो कल दो होंगे। ...आज

जबकि श्रेष्ठतम मस्तिष्क गिनी-चुनी मात्रा में उपलब्ध है, आधी आबादी को इस प्रतिस्पर्धा से बाहर रखना बहुत ज्यादा गम्भीर मामला बन जाता है।''[८] मिल पुरुषों के इस भय को खोखला बताते हैं, जिनके कारण उनको लगता है कि यदि स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दे दिया जायेगा, तो पुरुष के अधिकार छिन जायेंगे। इसके उलट; वे यह समझाने की कोशिश करते हैं कि असमान समाज में ही यह सम्भव है कि किसी के अधिकार छीने जाएँ और उसका बेवजह फायदा कोई और उठा रहा हो। एक समतामूलक समाज में किसी के अधिकार छीने नहीं जाएँगे, बल्कि सब उसका लाभ अपनी क्षमताओं के अनुसार उठा सकेंगे।

यह पहली ऐसी किताब है, जो स्त्री के छोटे-मोटे, घरेलू कामों को करने की उनकी क्षमता में उनकी बौद्धिकता की खोज करती है। यह किताब बड़े विस्तार से समझाती है कि जिसे 'स्त्री स्वभाव' कहा जाता है, वह 'कंस्ट्क्ट' है। स्त्री की शारीरिक-मानसिक क्षमता वैसे ही है, जैसे पुरुष की, इसलिए उसे जीवन के हर क्षेत्र में बराबर का अधिकार पाने का हक़ है। समान अधिकार पाये बिना न तो स्त्री अपना सम्पूर्ण विकास कर सकती है और न ही समाज का सम्पूर्ण विकास हो सकता है। 'एक व्यर्थ हुए जीवन की भावना से जन्मे गहन दु:ख को प्राय: बहुत कम लोग ही जानते हैं।' इसलिए मनुष्य को अपनी विकृति से मुक्त होना है, तो स्त्रियों को समान धरातल पर लाना होगा। इस समानता के लिए सामाजिक क्रान्ति का होना जरूरी है।

यह पहली ऐसी कृति है, जो सामाजिक क्रान्ति की बात करती है, स्त्री की आत्मनिर्भरता की भी बात करती है, लेकिन उसका जोर आर्थिक मुक्ति पर कम, सामाजिक मुक्ति पर ज्यादा है। इस किताब का महत्त्व इसी से लगाया जा सकता है कि आज के नारीवादी चिंतक भी यह मानते हैं कि स्त्रियों की मुक्ति केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक भी है। सामाजिक मुक्ति न मिल पाने के कारण ही आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर स्त्रियाँ भी जीवन और समाज में दोयम दर्जे की ही जीव मान ली जाती हैं। लेकिन केवल सामाजिक क्रान्ति से स्त्रियों की मुक्ति का सवाल हल नहीं हो पायेगा। स्त्री की मुक्ति तभी सम्भव है, जब नये सिरे से समाज का गठन हो। जब 'स्त्री-पुरुष' का समान सामाजीकरण हो। उन्हें सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक धरातल पर समान महत्त्व और अधिकार प्राप्त हो। चूँकि उनकी असमानता हजारों सालों की मेहनत का परिणाम है, इसलिए उनमें समानता लाने के लिए उससे कहीं अधिक परिश्रम करना पड़ेगा, जितना कि अधीन बनाने में किया गया है। व्यवस्था-परिवर्तन में समय नहीं लगता, लेकिन लोगों के दिमाग को परिवर्तित करने में समय लगेगा। स्वयं मिल भी मानते हैं कि 'स्त्रियों के दिमाग के साथ सबसे ज्यादा छेड़-छाड़ की गयी है।' सवाल इस छेड़-छाड़ से मुक्ति पाने का है। इस किताब का महत्त्व मुक्ति के इन रास्तों की तलाश के कारण ही है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. युगांक धीर– स्त्री और पराधीनता, सम्वाद प्रकाशन, २००२, पृ. ३५
२. वही– पृ. २९
३. देखें, युगांक धीर– 'स्त्री और पराधीनता' का आगे का कवर पेज
४. युगांक धीर– स्त्री और पराधीनता, उपर्युक्त, पृ. ४३
५. देखें, प्रगति सक्सेना– स्त्रियों की पराधीनता, राजकमल, २००२, पीछे का कवर पेज
६. वही– पृ. ९६
७. युगांक धीर– स्त्री और पराधीनता, उपर्युक्त, पृ. ६०
८. वही– पृ. ९०

●

प्रारम्भिक उर्दू गजलों का यथार्थवादी स्वर

प्रो. रसाल सिंह*, हर्षित तिवारी**

अठारहवीं सदी का दौर उर्दू कविता के बनने का दौर रहा है। इस दौर में प्रारम्भिक उर्दू कविता, जिसकी नींव दक्कन में पड़ चुकी थी, अब वह दक्कन से दिल्ली और लखनऊ की ओर प्रस्थान कर चुकी थी और यहाँ से उसमें भाषायी और कथ्यगत परिवर्तन आना धीरे-धीरे शुरू हो गया था। उर्दू कविता के तमाम नामचीन शायरों की पृष्ठभूमि इसी दौर में तैयार हो रही थी। इस दौर में उर्दू कविता की मूलत: दो शाखाएँ भारत वर्ष में चलती हुई दिखाई पड़ती हैं। पहली शाखा दिल्ली के शायरों की है, तो वहीं दूसरी शाखा लखनऊ के शायरों की। इसके अलावा; कुछ महत्त्वपूर्ण शायर और भी थे, जो इन दोनों शाखाओं से पृथक् अपनी अलग तरीके की शायरी से लोगों को प्रभावित कर रहे थे। उर्दू कविता के उत्तर भारत में प्रभावित होने और अपनी पैठ जमाने की स्थितियों का वर्णन करते हुए 'एहतशाम हुसैन' अपनी पुस्तक 'उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में लिखते हैं कि– ''कहा जा चुका है कि 'वली' के प्रभाव से उत्तरी भारत में उर्दू कविता के लिए एक नया वातावरण बन गया। यहाँ तक कि १७२० ई. के लगभग दिल्ली के वह कवि भी कभी-कभी अपने विचार उर्दू में प्रस्तुत करने लगे, जो केवल फारसी में ही रचना करते थे।''[१] इसके आगे वे कवियों की पूर्ववर्ती स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि– ''उस समय तक कुछ कवि जो कविता लिखते थे, उसमें भी एक पंक्ति उर्दू की होती, तो एक फारसी की और कभी एक ही पंक्ति का आधा भाग फारसी होता और आधा उर्दू। कभी-कभी तो विचार तक फारसी के होते। परन्तु १८वीं शताब्दी के आरम्भ ही से हमको उर्दू काव्य के साफ-सुथरे उदाहरण मिलने लगते हैं। राज-काज की भाषा फारसी रही, किन्तु कवियों ने जनता की बोली से काम लिया। उच्च वर्ग में फारसी का जादू चलता रहा और जन-साधारण में हिन्दुस्तानी जड़ पकड़ती रही।''[२]

स्पष्ट है कि अठारहवीं शताब्दी तक आते-आते उर्दू कविता अपना एक मकाम हासिल कर चुकी थी। लेकिन उर्दू कविता का मूल स्वर अब भी केवल प्रेम और सौन्दर्य ही था। ज्यादातर शायरी मासूक और महबूब को लेकर चलने वाली इश्किया शायरी ही थी। ऐसे में; कविता एक बँधी हुई परिपाटी पर चल रही थी। लेकिन अठारहवीं सदी का दौर उर्दू कविता के लिए एक महत्त्वपूर्ण दौर की तरह साबित हुआ, क्योंकि इस दौर में उर्दू के ऐसे महान शायरों की सूची शामिल हुई, जिन्होंने उर्दू कविता के मेयार को बदल कर रख दिया। इन शायरों ने न केवल इश्क़ और मासूक के विविध सन्दर्भों का भावात्मक चित्रण किया, बल्कि उससे कहीं ऊपर उठ कर उर्दू कविता को जीवन के विविध सन्दर्भों के साथ भी जोड़ा। साथ-ही-साथ; अपनी शायरी में अपने समय एवं समाज के चित्रण के साथ-साथ प्रगतिशील तत्त्वों का भी समावेश किया। अठारहवीं सदी में देश का माहौल बदल रहा था। समाज कई तरह के ऊहापोह से गुजर रहा था। ऐसे में; कविता में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक ही था। लेकिन उर्दू कविता के साथ स्थितियाँ थोड़ी भिन्न थीं। तत्कालीन स्थिति का वर्णन करते हुए एहतशाम हुसैन लिखते हैं कि– ''इस बात को न भूलना चाहिए कि १८वीं शताब्दी में भारतवर्ष के कई भागों में अंग्रेजी कम्पनी ने अपनी नींव दृढ़ कर ली थी और

* अध्यक्ष– हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू-कश्मीर
** शोध छात्र– हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू-कश्मीर

वह जीवन के जो साधन अपने साथ लायी थी, उनका प्रभाव भी बंगाल, मद्रास और बम्बई के क्षेत्रों पर पड़ रहा था। जहाँ तक उर्दू-साहित्य का सम्बन्ध है, उसने भी इस प्रभाव को स्वीकार किया। परन्तु हिन्दू-मुस्लिम सभ्यता की पुरानी परिस्थितियाँ स्वयं इतनी दृढ़ थीं कि यहाँ नये विचारों की उन्नति तेजी से नहीं हो सकी।''[३]

इन तमाम स्थितियों के बावजूद, इस दौर की उर्दू कविता में एक क्रांतिकारी परिवर्तन यह आया है कि इस दौर की कविता अपने समय और समाज के साथ सम्वाद करती हुई नजर आती है। इसमें वली से लेकर गालिब तक कुछ महत्त्वपूर्ण शायर मिलते हैं, जो अपने समय और समाज की परिस्थितियों से जूझते हुए तथा इनके मद्देनजर अपनी बात करते दिखाई पड़ते हैं। यही बात इनकी प्रगतिशीलता की परिचायक है, जहाँ शायर केवल अपने इश्किया शायरी की चपेट में नहीं है, बल्कि अपने समय और समाज की परिस्थितियों से सम्वाद भी करता है। वली के बारे में जिक्र करते हुए जानकी प्रसाद शर्मा अपनी पुस्तक 'उर्दू साहित्य की परम्परा' के एक लेख 'साझा भाषा और संस्कृति के कवि वली दकनी' में कहते हैं कि– ''वली मनुष्य और मनुष्य के बीच विभेद उत्पन्न करने वाले धर्म के बाह्य रूपों का विरोध करते हैं। वे हिन्दू या मुसलमान के बजाय मनुष्य के रूप में पहचान बनाने पर जोर देते हैं। तस्बीह और जुन्नार (जनेऊ) बन्धन में डालते हैं, मुक्त नहीं करते। जिसे मुक्ति की आकांक्षा है, उसे इन बन्धनों का क्या अर्थ है? कहते हैं– **'गर हुआ है तालिबे-आजादगी / बंद मत हो सब्हा-ओ-जुन्नार का।'**[४]

आगे, वली की कविता के तथा उनकी समकालीन समझ के बारे में बताते हुए वे कहते हैं कि– ''वली की शाइरी सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के दौरान की साझा संस्कृति की एक झाँकी प्रस्तुत करती है। उनकी शाइरी से एक साथ हिन्दी और उर्दू भाषा एवं काव्य के विकास को समझने में मदद ली जा सकती है। जहाँ तक उर्दू शाइरी के इतिहास की बात है, उन्हें इसमें एक युग-प्रवर्तक की हैसियत प्राप्त है।''[५] वली को उर्दू कविता के प्रवर्तक शायर के तौर पर देखा जाता है। यह दिलचस्प है कि जिस शुरूआती उर्दू कविता पर केवल इश्किया शायरी का ठप्पा लगा दिया जाता है, उसका प्रवर्तक अपने समय और समाज से संघर्ष करता हुआ अपनी शायरी में उपस्थित होता है।

वली के अलावा उस दौर में एक और महत्त्वपूर्ण नाम है, जो अक्सर हमारी नजरों से ओझल कर दिया जाता है। वह शायर है– मोहम्मद रफी सौदा। सौदा मूलत: व्यंग्य कविता करते थे, वह भी ज्यादातर अपने समय के शायरों के ऊपर। उन्होंने गजल कम रेख़ता ज्यादा लिखे हैं। उनके बारे में भी जानकी प्रसाद शर्मा अपने लेख 'सौदा : उर्दू के पहले समर्थ व्यंग्य कवि' में कहते हैं कि– ''वली दकनी ने जिस रेख़ता जबान को शाइरी में रिवाज दिया था, उसे अपने कृतित्व में समृद्ध करने वालों में दिल्ली के 'सौदा' और 'मीर' जैसे महान रचनाकारों का बड़ा योगदान रहा। 'सौदा' और 'मीर' के युग को उर्दू शाइरी का स्वर्ण युग कहा जाता है।''[६] सौदा मूलत: अपने हज्व के लिए जाने जाते हैं। यह उर्दू कविता में व्यंग्य के लिए प्रयोग किया जाने वाला शब्द है। इसके बारे में बात करते हुए जानकी प्रसाद शर्मा कहते हैं कि– ''सौदा की हज्वें शाइरी को शृंगारिकता के संकीर्ण क्षेत्र से बाहर निकालकर एक विस्तृत जमीन पर खड़ा करने की रचनात्मक कोशिश हैं। उन्हें अपनी हज्वों का लोहा मनवाने के लिए कोई अलग से बयान देने की जरूरत महसूस नहीं हुई, जैसा कि उन्हें गजल के सिलसिले में करना पड़ता था।''[७] शर्मा जी इसके आगे सौदा की एक पुस्तक की चर्चा करते हैं, जिसके माध्यम से सौदा के समकालीन बोध को समझा जा

सकता है। वे कहते हैं कि– '' 'तजहीके-रोजगार' सौदा के दिल्ली के दिनों की रचना है। इसका वर्ण्य-विषय घोड़ा है। तजहीक का अर्थ खिल्ली उड़ाना या निंदा करना है। यानी इसमें रोजगार की खिल्ली उड़ाई गई है। 'तजहीक' विषय की दृष्टि से एक घोड़े की नज्म भले हो, लेकिन असल में; यह उस दौर की जर्जर सैन्य-व्यवस्था का एक मार्मिक मर्सिया है।''[८] इन शायरों की सूची में अगला नाम है– उस सदी के सबसे बड़े शायर ख़ुदा-ए-सुखन मीर तक़ी मीर का। मीर उर्दू गजल-परम्परा में दर्द-ओ-गम को अपने अन्दर बसा लेने वाले संजीदा शायर हैं। उनकी शायरी मूलत: अपने साधारण कहन और प्रेम के दर्द की गहरी पीड़ा के लिए जानी जाती है। जैसा दर्द मीर की शायरी में देखने को मिलता है, वैसा कहीं अन्यत्र नहीं मिलता। किन्तु मीर की शायरी में उनके दिल का दर्द केवल उनका दर्द नहीं है, बल्कि वह दिल्ली का दर्द है। मीर की कविता में दिल्ली बार-बार दिल के रूप में उभर कर सामने आता रहा है। इस बात का जिक्र करते हुए प्रो. वशिष्ठ अनूप अपनी पुस्तक 'उर्दू के प्रतिनिधि शायर और उनकी शायरी' में मीर के बारे में कहते हैं कि– ''मीर की शायरी अपने समय, समाज और तत्कालीन राजनीतिक हलचलों का काव्यात्मक दस्तावेज है। उनके समय का इतिहास और समाज उनकी वैयक्तिक अनुभूति में ढल गया है। उनका समय मुगलों के पतन, हिन्दुस्तान पर नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों और दिल्ली के लूटे जाने का समय है। मीर का दिल और दिल्ली– दोनों की दशा एक-सी थी। दोनों उजड़े हुए थे। अगर कोई उस पतनशील समाज का काव्यात्मक रूप उसकी सारी शोकपूर्ण गहराइयों के साथ देखना चाहे, तो वह उस समय के इतिहास के बजाय मीर की कविताओं में ज्यादा स्पष्ट रूप से देख सकता है।''[९] दरअसल; मीर का व्यक्तित्व ही उनके युग के अनुरूप ढल चुका है। यही कारण है कि उनकी शायरी में दिल और दिल्ली एक हो गए हैं। दिल्ली या दिल पर लिखे उनके कुछ शेर देखें, जहाँ मीर अपने समय और समाज से बातचीत करते नजर आते हैं–

'दिल्ली में आज भीख भी मिलती नहीं उन्हें
था कल तलक दिमाग, जिन्हें ताज-ओ-तख़्त का।'
'दिल की विरानी का क्या मजकूर है
यह नगर सौ मर्तबा लूटा गया।'
'दिल वो नगर नहीं कि फिर आबाद हो सके
पछताओगे, सुनो हो! ये बस्ती उजाड़ के।'

आप देखेंगे कि बात भले ही दिल की हो रही हो, लेकिन स्थितियाँ कहीं-न-कहीं दिल्ली के हालात की बयाँ हो रही हैं। उनके दिल के दर्द के साथ-साथ दिल्ली का दर्द और उसकी भी पीड़ा मीर की शायरी में जाहिर तौर पर आती है। न केवल मुगल आक्रमण, बल्कि दुनियाभर के तमाम हमले जो दिल्ली शहर पर हुए हैं, मीर की शायरी उन सभी हमलों और लूटों की दास्ताँ को बयाँ करती है। अपने वक्त के हालातों के अलावा मीर की शायरी उस दौर में भी धर्म के आडम्बरों और उसकी कुण्ठाओं से लड़ते तथा उसे तोड़ते नजर आती है। मजहब को लेकर हर जगह एक अलग तरह की कट्टरता हावी दिखाई पड़ती है। चूँकि मीर इस्लाम धर्म से थे, तो स्वाभाविक है उन्होंने इस्लामिक आडम्बरों की पोल खोली है। साथ-ही-साथ; तमाम धर्मों के बीच सामंजस्य किस तरह बैठाया जा सकता है, उसका भी संकेत उन्होंने किया हुआ है। कुछ शेर देखें–

'शेख जो है मस्जिद में, नंगा रात को था मयखाने में
जुब्बा, खिर्कघ, कुर्ता, टोपी मस्ती में इनआम किया।'

'मीर के दीन-ओ-मजहब को अब पूछते क्या हो उनने तो
कश्क़ खेंचा, दैर में बैठा, कब का तर्क इस्लाम किया।'
'उसके फरोगे-हुश्न से झमके है सबमें नूर
शम्अ-ए-हरम हो या कि दिया सोमनाथ का।'

इस तरह का विद्रोह उस दौर में, जब के दौर की शायरी को और उस दौर के शायरों को भी महज इश्किया शायरी के दायरे में बाँध दिया गया हो, वाक़ई शायरों की तरक़्क़ी-पसन्दगी का नमूना पेश करती है। मीर के बारे में फिराक़ गोरखपुरी लिखते हैं कि– ''मीर के उत्तम शेर जादू का असर करते हैं। ऐसी रचनाओं में उनका स्वर जीवन का स्वर बन जाता है। इन रचनाओं में जैसी धुलावट है, जैसी चमकार है, जो करुणा है, जो मानवता है, जो विनम्रता है, जो स्वाभाविकता है और जो हृदय को विदीर्ण करने वाली मृदुलता और तीव्रता का संगम है, उनका उदाहरण कहीं और नहीं मिलता।''[१०]

उस दौर के दूसरे ऐसे शायर, जिनके यहाँ यह तरक्की पसंदगी और बेहतर रूप में मिलती है, वह शायर हैं– नजीर अकबराबादी। उस समय उर्दू कविता की उत्तर भारत में मूलत: दो शाखाएँ चल रही थीं। पहली शाखा दिल्ली की तथा दूसरी शाखा लखनऊ की थी। इन्हीं दोनों जगहों पर उर्दू शायरी फल-फूल रही थी। लेकिन नजीर इन दोनों परम्पराओं से अलग अपनी एक अलग तरह की शायरी को प्रस्तुत कर रहे थे। यह शायरी उस वक्त के बाकी शायरों से ज्यादा प्रगतिशील तथा सामाजिक जान पड़ती है। नजीर के विषय में एहतशाम हुसैन ने अपनी पुस्तक में अयोध्या प्रसाद गोयल की किताब 'शेर-ऐ-शायरी' में कही उनकी बात का जिक्र करते हुए लिखा है कि– ''एक हिन्दी लेखक ने 'नजीर' की उदार-हृदयता और उर्दू-साहित्य की नयी धारा निकालने की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि... उस शुष्क और उजाड़ संगम पर आकर 'नजीर' ने अजान भी दी, शंख भी फूँका। तसबीह भी ली और जनेऊ भी पहना। मुहर्रम में रोये, तो होली में भडुवे भी बने। रमजान में रोजे रखे और सलूनों पर राखी बाँधने को मचल पड़े। शब्बरात पर महताबियाँ छोड़ीं, तो दिवाली पर दीप सजाये। नबी, रसूल, वली, पीर, पैगम्बर के लिए जी भरकर लिखा, तो कृष्ण, महादेव, नरसी, भैरो और नानक पर भी श्रद्धांजलि चढ़ायी।''[११] साफ जाहिर है कि न केवल इस्लाम के त्योहारों और महोत्सवों, बल्कि हिन्दू देवता और त्योहारों पर भी उनकी कलम पुरजोर तरीके से चली है। हिन्दू-मुस्लिम एकता का जैसा समर्थन नजीर के यहाँ मिलता है, वैसा कहीं अन्यत्र नहीं देखने को मिलता है। नजीर ने ऐसे-ऐसे विषयों पर अपनी कविताएँ अथवा नज़्म लिखे, जो समाज की बुनियादी जरूरतों के काम आती हैं। मसलन उनकी नज्म 'आदमीनामा' हो या 'बंजारानामा', 'मुफलिसी' हो या 'रोटियाँ'– ये सभी के सभी नज़्म नजीर की तरक्की-पसन्दगी और सामाजिकता के बेहतरीन उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं। नजीर का मूल्यांकन करते हुए डॉ. सभापति मिश्र ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि– ''हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति और भाषा, भेद-भाव भूलकर, नजीर अकबराबादी की कविता में एकाकार हो गई है। मीर, सौदा, दर्द, जुरअत, हसन, इंशा, महसफी, नासिख़ और आतिश आदि के काव्य में वह अकृत्रिमता एवं जीवन की सत्यता उपलब्ध नहीं हो पाती, जो नजीर के काव्य में है। इन्हें हम सच्चे अर्थों में 'हिंदुस्तानी शाइर' कह सकते हैं।''[१२]

इन शायरों की सूची में अगला नाम है– आख़िरी मुगल बादशाह 'बहादुर शाह जफर' का। १८५७ के विद्रोह के दौरान भारतवर्ष का अंग्रेजों के खिलाफ बगावत करने में जफर प्रतिनिधि

थे। उर्दू शायरों में हिन्दुस्तान का मुकम्मल स्वरूप मिलता है और अंग्रेजी सत्ता के विरोध में हिन्दुस्तान खड़ा होता हुआ दिखाई पड़ता है। जफर अपनी शायरी में जीवन की स्थितियों की तथा गहन अनुभूतियों की बात करते ही हैं, लेकिन हिन्दुस्तानी शान-ओ-शौकत के मुआमले में भी उनका गुरूर किसी भी तरह से कमतर नहीं आँका जा सकता। इस शान और अभिमान का परिचय उनका यह शेर देता है, जहाँ वे कहते हैं कि– **''हिन्दियों में बू रहेगी जब तलक ईमान की / तख़्त-ए-लंदन पर चलेगी तेग हिंदुस्तान की।''**

इसी लिहाज का एक और शेर देखिये, जिसमें अपने वक़्त की बर्बादियों का जिक्र करते हुए जफर नजर आते हैं। ये बात यह बयान करती है कि यह शायर अपने वक़्त को लेकर कितना सम्वेदनशील है और उसको अपने वक़्त और अपने देश की कितनी चिन्ता है। वह कहता है कि– **''ये रियाया हिंद तबाह हुई कहूँ क्या-क्या इन पे जफा हुई / जिसे देखा हाकिमे-वक़्त ने कहा ये भी क़ाबिले-दार है।''**

ये चीजें कहीं-न-कहीं जफर के अपने देश के प्रति प्रेम और समर्पण को प्रस्तुत करती हैं। बहादुर शाह जफर का मूल्यांकन करते हुए वशिष्ठ अनूप अपनी किताब में लिखते हैं कि– ''बहादुर शाह जफर सिर्फ एक देशभक्त मुगल बादशाह ही नहीं, बल्कि उर्दू के मशहूर कवि भी थे। उन्होंने बहुत-सी कविताएँ लिखीं, जिनमें से काफी अंग्रेजों के खिलाफ बगावत के समय मची उथल-पुथल के दौरान खो गईं या नष्ट हो गयीं।''[१३] जाहिर है कि ऊपर लिखी उनकी शायरी से उनकी बाकी की कविताओं का अन्दाजा लगाया जा सकता है और साथ ही; इन बातों से यह भी साफ तौर पर दिखाई देता है कि जफर कितने देशभक्त और प्रगतिशील शायर प्रस्तुत होते हैं।

इस क्रम में; आख़िरी उल्लेख सदी के महान शायर मिर्जा असद उल्लाह खाँ 'गालिब' का है। यह शायर यूँ तो किसी परिचय का मोहताज नहीं, फिर भी; कई दफा यह देखा जाता है कि गालिब की शायरी को केवल इश्क़ और मासूक़ के दायरे में समेट कर रख दिया जाता है। इसमें कोई शक़ नहीं है कि गालिब के यहाँ प्रेम की गहरी अनुभूतियों के जैसे अशआर मिलते हैं, वैसे कहीं और मिलना मुश्किल हैं। लेकिन बावजूद इसके; गालिब के यहाँ इसके अतिरिक्त; जीवन और समाज से जुड़े हुए तरक्की-पसंद शेरो-शायरी की भी भरमार है। इनके सम्बन्ध में बात करते हुए वशिष्ठ अनूप अपनी पुस्तक में दिवाने गालिब का सन्दर्भ उद्धरण देते हुए लिखते हैं कि– ''गालिब की शायरी बहुआयामी और प्रयोगधर्मी है। उन्होंने राजनीतिक कविता तो नहीं लिखी, लेकिन अपनी कविता में नये युग के मिजाज को समाहित कर लिया। श्री आले अहमद सुरूर की मान्यता है कि– ''गालिब की कला के कारण गजल प्रेम-वर्णन से बढ़कर जीवन-वर्णन बनती है और जीवन के विविध युगों, करवटों और क्रान्तियों का साथ देने लगती है।'' (उद्धृत– दिवाने-गालिब, पृ.-१४)।[१४]

गालिब के महत्त्व को रेखांकित करते हुए अली सरदार जाफरी भी अपनी सम्पादित पुस्तक 'दिवाने-गालिब' में यह उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि– ''गालिब की महानता केवल इसमें नहीं है कि उसने अपने युग की आन्तरिक व्याकुलता को समेट लिया, बल्कि इसमें है कि उसने नयी व्याकुलता पैदा की। उसकी शायरी अपने युग के बन्धनों को तोड़ देती है और भूत और भविष्य के विस्तार में फैल जाती है। गालिब ने अपने हर अनुभव को, जो एक अत्यन्त मृदुल सौन्दर्य-बोध रखने वाले मस्तिष्क की प्रक्रिया थी, मानवी मनोविज्ञान की आग में तपाकर पिघलाया है, व्यापक नियम की कसौटी पर कसा है और फिर काव्य-रूप में ढाला है, तब उसके यहाँ एक

विश्व कवि का स्वर पैदा हुआ है और वह जीवन के हर क्षण का कवि बन गया है।''[१५] गालिब की प्रगतिशीलता का अन्दाजा एहतशाम हुसैन के इस विवरण से लगाया जा सकता है, जहाँ वे धर्म और मजहब के मतभेदों को लेकर गालिब की चर्चा करते हैं और उनके बारे में लिखते हैं कि– ''उनमें संकीर्णता नाममात्र को भी न थी। धर्म का भेद-भाव उनके विचारों में कोई महत्त्व नहीं रखता था। वे सहानुभूति और मानव-प्रेम को सबसे बड़ा धर्म समझते थे। उनके यहाँ शेख और ब्राह्मण में कोई अन्तर न था। उनका विचार था कि अपने-अपने ढंग से सच्चाई का पथ खोजने वाले और विश्वासपूर्वक अपने विचारों पर दृढ़ रहने वाले एक ही होते हैं, चाहे वे किसी धर्म से सम्बन्ध रखते हों।''[१६] सभापति मिश्र लिखते हैं कि– '' 'करुणा' मानव-स्वभाव से मानवीयता की सबसे बड़ी गारण्टी है और मिर्जा गालिब की गजलों की करुणा आज भी हमारी पलकों को भिगो देती है, क्योंकि यह करुणा मिर्जा गालिब के हृदय की पुकार है। ऐसी पुकार, जिसकी प्रतिध्वनियाँ कण्ठ-कण्ठ में सुनाई देती हैं। इसी 'करुणा' के सहारे मिर्जा गालिब सचमुच 'लाजवाब शाइर' हो गए।''[१७]

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट तौर पर देख सकते हैं कि १८वीं तथा १९वीं शताब्दी की उर्दू की प्रारम्भिक कविता, जिसे केवल इश्किया शायरी के लिए जाना जाता है, वह केवल इश्क़ और मासूक़ की ही बात नहीं करता, बल्कि उन कविताओं में हम तरक़्क़ी-पसन्द अशआर भी भारी मात्रा में पाते हैं। साथ-ही-साथ; इस सम्पूर्ण दौर में शायरों की एक बड़ी संख्या है, जो प्रगतिशील चेतना को अपने जेहन में बसाये हुए है तथा न केवल प्रेम की अनुभूतियों, बल्कि जीवन और जगत से जुड़े तमाम विषयों तथा देशप्रेम और अपने समय-समाज की भी बातें करते हैं। उर्दू में लिखी गयी यह शुरूआती दौर की शायरी में अपने समय और समाज का यथार्थ बहुत गहरे देखने को मिलता है। तत्कालीन समाज में चल रही बेरोजगारी, भूख और गरीबी के साथ-साथ ये कविताएँ अपने समय की राजनीतिक परिस्थितियों से भी जूझती और सवाल करती नजर आती हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. एहतशाम हुसैन– उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन पृष्ठ-४०
२. वही– पृष्ठ-४१ ३. वही– पृष्ठ-४८
४. जानकी प्रसाद शर्मा– उर्दू साहित्य की परम्परा, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ-१४
५. वही– पृष्ठ-२० ६. वही– पृष्ठ-२१
७. वही– पृष्ठ-२५ ८. वही– पृष्ठ-२९
९. वशिष्ठ अनूप– उर्दू के प्रतिनिधि शायर और उनकी शायरी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ-१०
१०. फिराक गोरखपुरी– उर्दू भाषा और साहित्य, पृष्ठ-२९
११. एहतशाम हुसैन– उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ-९९
१२. डॉ. सभापति मिश्र– उर्दू साहित्य का इतिहास, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-१३७
१३. वशिष्ठ अनूप– उर्दू के प्रतिनिधि शायर और उनकी शायरी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ-५१ १४. वही– पृष्ठ-६१
१५. सं. अली सरदार जाफरी– दिवाने-गालिब, राजकमल पेपरबैक, १९९४, नई दिल्ली, पृष्ठ-१४
१६. एहतशाम हुसैन– उर्दू साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ-११३
१७. डॉ. सभापति मिश्र– उर्दू साहित्य का इतिहास, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ-८५

●

उत्तर आधुनिक समाज व मीडिया

डॉ. भावना*, नेहा चौरसिया**

सारांश (Abstract)– प्रस्तुत शोध-पत्र में वर्णनात्मक विश्लेषण द्वारा उत्तर आधुनिक समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का, मीडिया के परिप्रेक्ष्य में, विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र के माध्यम से ज्ञान व सूचना के महत्त्व को परिभाषित करते हुए, भविष्य में इनकी उपयोगिता का वर्णन किया गया है। नयी अर्थव्यवस्था, नयी विचारधारा, नयी संचार-व्यवस्था के उदय के कारण उत्तर आधुनिक समाज एक लोकप्रिय संस्कृति में परिणत हो गया है, जिसमें उत्पादन को बढ़ावा व सेवा को महत्त्व प्रदान किया गया है।

मुख्य शब्द (Key Words)– आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता, मीडिया, ज्ञान व सूचना, उपभोक्तावादी संस्कृति।

उत्तर आधुनिकता– समाज वैज्ञानिकों के अनुसार, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, जिस समाज की रचना हुई, उसे कई नामों से जाना जाता है, जैसे– उपभोक्ता समाज, उत्तर आधुनिक समाज, मीडिया समाज इत्यादि। उत्तर आधुनिक समाज का उद्‌गम पूँजीवादी देशों की संस्कृति व जीवन-पद्धति से जुड़ी है। इसका उद्‌गम १९६० में न्यूयार्क के कलाकार व १९७० में यूरोप के सिद्धान्तकारों से माना जाता है, जिसमें जीन फ्रेंकोज ल्योटार्ड की पुस्तक 'The Post Mordern Condition' (१९८४) का विशेष महत्त्व है।

उत्तर आधुनिक समाज की मुख्य विशेषता विज्ञान व तकनीकी है। उत्तर आधुनिक समाज में भाषा की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए यह कहा गया है कि विचारों की अभिव्यक्ति भाषा के आधार पर होती है और भाषा का सम्बन्ध आज कम्प्यूटर यानी तकनीक से जुड़ गया है। आज जनसंचार माध्यम द्वारा सूचना प्राप्त कर, उसका भण्डारण कर, ज्ञान में वृद्धि की जाती है। जैसे-जैसे उत्तर आधुनिक समाज का विकास होगा, ज्ञान का महत्त्व बढ़ता जायेगा। जिस देश के पास जितनी सूचनाएँ होंगी, वह देश उतना ही शक्तिशाली माना जायेगा। अत: उत्तर आधुनिक समाज के मुख्य मुद्दे विज्ञान, तकनीकी, कम्प्यूटर व इण्टरनेट तथा ज्ञान का भण्डारण है। डिक हेबडिगे ने १९८० में पापुलर संस्कृति तथा मीडिया को अपनाने का जिक्र किया है, जो उत्तर आधुनिकता के परिवर्तन का परिणाम है। उत्तर आधुनिक समाज में जिस नये समूह का निर्माण हो रहा है, वह मीडिया का उपयोग कर अपनी पहचान बनाता है।

यह समाज मुख्यत: 'सूचना समाज' (Information Society) कहा जाएगा, जिसको वैश्वीकरण द्वारा व्यापक बना दिया जाएगा। अब समाज में एक नया वर्ग पैदा हो रहा है, जिसे 'ज्ञान अभिजन' (Knowledge Elite) कहा जाएगा, जिससे लोग सॉफ्टवेयर पर काम करते हुए सेवा-वर्ग का निर्माण करेंगे।

* एसोसिएट प्रोफेसर– लाल बहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चन्दौली, उ. प्र.।

** शोधार्थिनी– लाल बहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चन्दौली, उ. प्र.।

उद्देश्य–

१. मास मीडिया द्वारा वर्तमान समाज को उत्तर आधुनिक समाज बनाने की भूमिका का मूल्यांकन करना।
२. मास मीडिया का सामाजिक प्रतिमानों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
३. उत्तर आधुनिक समाज में सूचना व ज्ञान के महत्त्व को जानना।
४. उत्तर आधुनिक समाज में उपभोक्तावादी मूल्यों की उपयोगिता की प्रधानता का मूल्यांकन करना।
५. लोकप्रिय संस्कृति के रूप में संचार माध्यम का अध्ययन करना।

शोध-प्रविधि– प्रस्तुत शोध-प्रपत्र में सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य द्वारा मीडिया व उत्तर आधुनिक समाज का वर्णनात्मक अध्ययन किया गया है तथा विषय से सम्बन्धित द्वितीयक स्रोतों के विषय-वस्तु विश्लेषण द्वारा सम्बन्धित विषय के निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास किया गया है। द्वितीयक स्रोतों में पाठ्य-पुस्तकों का उपयोग किया गया है। शोध के द्वारा ही समस्याओं का हल जानने का प्रयास किया जाता है। शोध का आज के समय में विशेष महत्त्व है, क्योंकि तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण व सत्यापन शोध द्वारा ही सम्भव है।

उत्तर आधुनिकता के सम्बन्ध में कोई एक व निश्चित परिभाषा देना कठिन है। इसे बौद्धिक अभिवृत्तियों के रूप में समझा जा सकता है, जिसके मूल में सृजन की आजादी है। अर्थ को रूढ़िगत परिभाषाओं से मुक्त करने की माँग है। पहले से जो सर्वस्वीकृत परिभाषा चली आ रही है, उसे बदलने की और दलित व उपेक्षित पक्ष के प्रदर्शन की पहल है। उत्तर आधुनिकता बहुल्यवाद पर आधारित है, जिसमें कम्प्यूटर व प्रौद्योगिकी ने, विभिन्न सांस्कृतिक प्राथमिकताओं को परिवर्तित कर, नव्य विचारधारा का उदय किया है।

भारत को उत्तर आधुनिक समाज में केन्द्र की स्थिति प्राप्त है, जहाँ उनके साहित्यिक विमर्श व संस्कृति पर ध्यान दिया जाने लगा। यही स्थिति नारी व दबे हुए वर्ग की थी, जो अब बदल गयी है।

२१वीं शताब्दी को 'मीडिया युग' के नाम से जाना जाता है। मार्शल मैकलुहान ने मीडिया की व्याख्या करते हुए कहा है कि– ''मीडिया का अर्थ मध्यस्थता करने वाला होता है, जो दो बिन्दुओं को आपस में जोड़ने का कार्य करता है। व्यावहारिक दृष्टि से जनसंचार एक ऐसा सेतु है, जो विभिन्न समूहों के श्रोताओं को एक विचारधारा में जोड़ता है।''

आज के उत्तर आधुनिक समाज में उन्नत तकनीक है, सुपरफास्ट कम्प्यूटर है, इण्टरनेट व सोशल मीडिया है, जिसने दुनिया को एक 'विश्व ग्राम' (Globle Villege) में परिणत कर गाँधी जी के अहिंसा से परिचालित वैश्विक समाज की कल्पना को साकार कर दिया है।

ल्योतार (Lyotard) द्वारा अपनी पुस्तक 'The Post Modern Condition : A Report On Knowledge (१९७९) में अपने समाज का वर्णन करते हुए आधुनिकता का विरोध व ज्ञानोदय युग में समाज में आए वैज्ञानिक व तकनीकी परिवर्तन का वर्णन किया गया है। ल्योतार के अनुसार, आधुनिक समाज एकरूपता, सामूहिकता व सार्वभौमिकता पर आधारित था, अब उत्तर आधुनिकता में वैयक्तिकता, विखण्डता और अन्तर पर आधारित समाज होगा। ल्योतार के अनुसार– ज्ञान का उपयोग लाभ के लिए किया जाता है, अब अध्यापक के स्तर से आगे बढ़कर, कम्प्यूटर व मेमोरी बैंक का उपयोग किया जाएगा। उत्तर आधुनिक समाज में उत्पादन

के लिए कम्प्यूटरीकृत ज्ञान की आवश्यकता है। आज सूचना को बेंचा जाता है, उसका निर्माण व उपयोग होता है। यह सूचना की नयी अवस्था का उल्लेख है। अब ज्ञान व सूचना का व्यापार होने लगा है, जिससे समाज की दशा में परिवर्तन हो गया है।

इसी तरह, ज्यॉ बोड्रिलार्ड (Jean Baudrillard), जो एक फ्रांसीसी सिद्धान्तकार हैं, की विशेष रुचि मास मीडिया में थी। बोड्रिलार्ड के अनुसार– उत्तर आधुनिक समाज, संचार समाज है। इसकी एकता मास मीडिया के द्वारा ही स्थापित है। इसके आगे बोड्रिलार्ड, उत्तर आधुनिक समाज को एक उपभोक्ता समाज भी मानते हैं। मीडिया द्वारा ही नयी-नयी माँगों का सृजन किया जाता है, जिससे समाज उपभोक्तावादी समाज में परिवर्तित हो जाता है।

आज व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन के भेद समाप्त हो गए हैं। मीडिया के द्वारा ही अतियथार्थ का चित्रण किया जाता है, अर्थात् टेलीविजन पर जो दिखाया जाता है, हम उसे ही यथार्थ मानते हैं और जो वास्तविकता होती है, उससे कभी हमारा सम्पर्क नहीं होता। टीवी और उसके उपभोक्ता के बीच सीधा फीडबैक का कोई माध्यम नहीं है। यही बात प्रिंट मीडिया पर भी लागू होती है। समाचार-पत्रों में भी सूचना से ज्यादा विज्ञापन की भरमार होती है। प्रो. कुमुद शर्मा के अनुसार– ''भूमण्डलीकरण और बाजारीकरण में मीडिया के अर्थ बदल गये हैं। आज मीडिया के इस बदलाव में उपभोक्तावादी संस्कृति तथा बाजार प्रमुख तत्त्व है, जिसमें प्रसारण तथा संचार माध्यम अपनी साख का एक स्त्रोत देख सकते हैं।''

निष्कर्ष– उत्तर आधुनिक समाज, आधुनिक काल के बाद आया। इसकी जड़ें पूँजीवाद व सांस्कृतिक तत्त्वों से जुड़ी हुई हैं। सांस्कृतिक तत्त्वों में कला, साहित्य, शिल्पकला शामिल है। उत्तर आधुनिक काल में, कला के विभिन्न पक्षों से तत्त्वों और अवधारणाओं को ग्रहण कर उनको व्यवस्थित किया जाता है। यह समाज पहले से चली आ रही रूढ़िगत परिभाषाओं का खण्डन करती है व उपेक्षित वर्ग को केन्द्र में लाने की पक्षधर है। उत्तर आधुनिक समाज उन्नत प्रौद्योगिकी तकनीकों से परिपूर्ण है, जिसमें जनसंचार के माध्यम से, विशेषत: कम्प्यूटर व इण्टरनेट का उपयोग किया जाता है। यह समाज ज्ञान व सूचना का है। जिसके पास जितना उन्नत ज्ञान है, उतना ही वह शक्तिशाली है। ज्ञान की प्राप्ति का आधार सूचना है और सूचना प्राप्त करने का माध्यम संचार है। आज एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो रहा है, जो उन्नत तकनीक का इस्तेमाल करते हुए सॉफ्टवेयर पर कार्य कर रहा है। ऐसे वर्ग को 'ज्ञान अभिजन' कहते हैं। इसके आगे, अगर उत्तर आधुनिकता के विस्तार की चर्चा की जाए, तो एक नकारात्मक पक्ष भी प्रकट होता है, जिसमें उत्तर आधुनिकता द्वारा वैश्विक संस्कृति को प्रस्तुत किया जाता है। इससे क्षेत्रीय संस्कृति व परम्परा अपना अस्तित्व खो देती है, जिसका असर आपसी सम्बन्ध पर पड़ता है। व्यक्तियों के बीच व्यवहार के मानक बदल जाते हैं। इसी प्रकार, उत्तर आधुनिक समाज तकनीकी समाज है, जहाँ उन वर्गों का वर्चस्व है, जो इस क्षेत्र में विशेषज्ञ हैं। इससे उन लोगों का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा, जिनके पास तकनीकी कुशलता नहीं है। यह वर्ग बहुसंख्यक है, जबकि समाज में तकनीकी विशेषज्ञ, यानी अल्पसंख्यक वर्ग का कब्जा हो जायेगा। वस्तुत: यह समाज मीडिया समाज, उपभोक्ता समाज व सांस्कृतिक तत्त्वों से जुड़ा समाज होगा।

सुझाव

१. जन माध्यम को जनसेवा के हित में कार्य करना चाहिये।

२. विश्वसनीयता व निष्पक्ष पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये।

३. बहुसंख्यक वर्ग के हितों की पूर्ति में सहायक होना चाहिये।
४. लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए स्वतंत्र विचारों की अभिवयक्ति के माध्यम तक सबकी पहुँच सम्भव हो।
५. ज्ञान व सूचना का केन्द्रीकरण अल्पसंख्यक वर्ग तक ही सीमित ना हो।
६. मीडिया कर्मियों व प्रबन्धकों का यह दायित्व है कि वे समाज में सन्तुलन बनाये रखने का कार्य करें, जिससे समाज में किसी एक वर्ग की सत्ता न स्थापित हो।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. Kavita Bhatia- "Social Media Virtual Se Vastavik", Setu Prakashan, New Delhi, 2021.
2. L.S. Doshi- "Morden Sociological Thinkers", Rawat Publications, Jaipur, 2016.
3. L.S. Doshi- "Modernity, Post-Modernity And Neo-Sociological Theories," Rawat Publication, New Delhi, 2010
4. Sandip Kulshresth- "Bharat Me Print, Electronic Aur New Media", Pratibha Prathistan, New Delhi, 2020.
5. Shree Rajkrishan Mishra, Dr. Muktinath Jha- Media : Avadhanayan & Siddhant", Nitish Printers, Allahabad, 2008.
6. Dr. Ravi Prakash Pandey- "Sociological Theory : Approach & Perspective", Shekhar Prakashan, 2011.
7. Dr. Arjun Tiwari- "E-Journalism", Sanjay Book Centre, Varanasi, 2005

●

तालमेल एक्सप्रेस | प्रयागराज, सोमवार, 30 जनवरी, 2023 | प्रयागराज | 3

आंदोलन में साहित्य और पत्रकारिता के योगदान विषयक संगोष्ठी आयोजित

तालमेल एक्सप्रेस

प्रयागराज। प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास एवं महामना मदन मोहन मालवीय हिंदी पत्रकारिता संस्थान के संयुक्त तत्वाधान मे महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के केंद्रीय पुस्तकालय स्थित समिति कक्ष में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन मे साहित्य और पत्रकारिता के योगदान विषयक दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ। जिसमे आज दूसरे दिन के पहले सत्र मे भारतीय स्वाधीनता आंदोलन मे पत्रकारिता की चुनौतियां विषय पर प्रमुख विद्वानो ने अपने अपने वक्तव्य दिए।इस संगोष्ठी के अध्यक्ष महामना मदन मोहन मालवीय हिंदी पत्रकारिता संस्थान के पूर्व निदेशक प्रो ओम प्रकाश सिंह ने कहा कि आज भी समाज मे बहुत सुधार की आवश्यकता है। हमारे राष्ट्रीय आंदोलन मे पत्रकारिता के कई चुनौतियां थी। रही बात भाषा की तो हिन्दी भाषा देश के हर कोने मे ग्राह्य है। देश का कोई भी कोना हो, वहां हिंदी बोली पढ़ी और समझी जाती है। इसलिए हमें भाषा के परिष्कार और उसके रहस्य के अपवाद पर ध्यान देना चाहिए। हमें उस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि स्वाधीनता के समय भारतीय पत्रकारिता का परिवेश कैसा था। उस समय पत्रकारों को आर्थिक समस्या का भी सामना करना पड़ता था। उन्होंने कहा कि जब तक भारतीयों मे स्वाभिमान की भावना नहीं आई तब तक आजादी की प्रेरणा नही मिली। संगोष्ठी के मुख्य वक्ता डॉ. वशिष्ठ नारायण सिंह ने हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए कहा कि उस दौर में एक खबर हिन्दी प्रदीप को सरकार के खिलाफ लिखने पर 3000 रुपए का जुर्माना हुआ।वहीं बनारस से प्रकाशित आज अखबार ने भी अपने जीवन में कई उतार चढ़ाव देखे। उसके संपादक पराड़कर जी को कई बार जेल जाना पड़ा। प्रेमचंद ने भी आर्थिक कारण से ही हंस को बंद कर दिया। लेकिन उन्होंने 200 रुपए घाटे पर भी जागरण अखबार का प्रकाशन किया। 1947 में आजादी के समय की स्थिति विकट थी।

उन्होंने उस स्थिति को बे... ढ़क जी की कविता का जिक्र करते हुए बयां किया। उन्होंने कहा कि उस समय का पत्रकार और साहित्यकार सभी आंदोलन में कूदे हुए थे।साथ ही आज के परिवेश पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आज के युग में पत्रकारिता की चुनौतियां और भी ज्यादा बढ़ गई है। आज भाषा की समस्या है। सही विषय की समस्या है, लेकिन फिर भी यह युग नया है और नई तकनीक के साथ है। डॉ. विनोद सिंह ने जेम्स अगस्टस हिक्की की पत्रकारिता से लेकर भारतेंदु जी की पत्रकारिता का जिक्र किया। भारतेंदु का काल गद्य निर्माण का काल कहलाता है। उन चुनौतियों के बीच साहित्य और पत्रकारिता को संरक्षण देने का काम भारतेंदु जी ने किया। उन्होंने पत्रकारिता की चुनौतियों में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को सा... ।। उन्होंने प्रो. वासुदेव सिंह को याद किया और कहा कि गुरु जी की प्रेरणा से ही मैं पिछले तीन दशक से पत्रकारिता में सेवारत हूं। वहीं सत्र के वक्ता डॉ. अरुण कुमार शर्मा ने कहा कि आज तो मीडिया मे फेक न्यूज ज्यादा छप रही है। जो की पत्रकारिता की ग्रीन जर्नलिज्म है। इस फेक न्यूज से लड़ना ही हमारी सबसे बड़ी चुनौती है। आज विज्ञापन का दौर है जिसकी वजह से पैड न्यूज की चुनौतियां भी बढ़ी है। जिसकी वजह से पत्रकारिता मे विश्वसनीयता दूर होती जा रही है। इस मौके पर चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ से डॉ. नवीन चंद लोहानी वर्चुअल रूप से जुडे और उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के समय भारतीय पत्रकारिता की चुनौती पर प्रकाश डाला। संगोष्ठी के दूसरे सत्र में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन हाशिए के सिपाही विषय पर प्रमुख विद्वानों ने वक्तव्य दिया साथ ही शोधार्थियों ने भी अपने शोध पत्र प्रस्तुत किए। इस सत्र के अध्यक्ष डॉ. श्रद्धा नंद ने प्रो. वासुदेव सिंह को याद करते हुए कहा कि गुरु जी इतिहास के मर्मज्ञ थे, इतिहास पढ़ाना सबके बूते की बात नही। उन्होंने विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा कि पत्रकारिता में साहित्य की उपस्थिति होनी चाहिए। उन्होंने हाशिये के सिपाहियों से आग्रह किया कि हमारे पास पराड़कर जी का साहित्य ही नही है, हमे उनके साहित्य पर शोध की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि साहित्य सभी विमर्शों का सार होता है। उन्होंने प्रो. वासुदेव सिंह को नमन किया और कहा कि ऐसी संगोष्ठी हमेशा काशी विद्यापीठ में होती रहनी चाहिए क्योंकि विद्यापीठ में ही वासुदेव सिंह जी की आत्मा सुरक्षित है। इस मौके पर प्रो. गायत्री सिंह, प्रो. गायत्री माहेश्वरी, नीरज कुमार सिंह, पूजा, सीमा तिवारी आदि लोगों ने भी अपने विचार रखे। अंत में प्रो. वासुदेव सिंह की तस्वीर पर माल्यार्पण और दीप प्रज्वलन के पश्चात समापन सत्र की शुरुआत हुई। इस सत्र के अध्यक्ष डॉ. आनंद वर्धन ने रुद्र काशिकेय की पुस्तक बहती गंगा का जिक्र किया। साथ ही उन्होंने मेरठ से प्रकाशित प्रताप और बनारस से प्रकाशित भूमिगत अखबार रणभेरी का भी जिक्र किया और पत्रकार, पत्रकारिता की चुनौतियों पर प्रकाश डाला। उन्होंने आज, स्वदेश,स्वराज,कर्मभूमि जैसे तमाम अखबारों का नाम लेते हुए कहा कि उस दौर मे तमाम साहित्यकार मूलतः पत्रकार रहे है। इसलिए पत्रकार और साहित्यकार का पारस्परिक संबंध है। सत्र मे विशिष्ट वक्ता प्रो. ओम प्रकाश सिंह ने 1857 के मुक्ति संग्राम का जिक्र किया। उन्होंने कहा कि उस दौर की यह बहुत बड़ी चुनौती थी कि साहित्य कैसे गढ़ा जाय तब भारतेंदु जी अपने अखबार और पत्रिका में नव रचनाकारों को स्थान दिया। इस मौके पर उमापति दीक्षित ने कहा कि निश्चित रूप से यह ध्रुव सत्य है की साहित्य और पत्रकार का अन्योन्याश्रित संबंध है। स्वतंत्रता संग्राम के वीर गाथा को याद करते हुए आज हम इस बात का संकल्प लें कि राष्ट्रीय संगोष्ठी का यह मौका देने वाले आचार्य के दृष्टांतों और उनके शैली को हम लोग ग्रहण करें। उनके अंदर इतिहास पढ़ाने के की एक अक्षुण्ण कला थी। सत्य की बात कही गई है। हमें सत्य चाहिए तो आचार्य के पास आने की जरूरत है। समापन सत्र के अध्यक्ष डॉ. वशिष्ठ नारायण सिंह ने बहती गंगा, चंद्र शेखर आजाद, विश्वनाथ शर्मा आदि लोगों का जिक्र करते हुए कहा कि जिस प्रकार काशी को नही बांधा जा सकता उसी प्रकार प्रो. वासुदेव सिंह को भी किसी सीमा में नही बांधा जा सकता। कार्यक्रम का संचालन प्रो. श्रद्धा और धन्यवाद ज्ञापन प्रो. हिमांशु शेखर सिंह ने किया। इस मौके पर शोध छात्र देवी प्रसाद तिवारी, पूजा चौधरी समेत अन्य लोग मौजूद रहे।

प्राचीन भारतीय कला में शालभंजिका

पंकज यादव*

किसी भी देश की धार्मिक मान्यताएँ, उसके पौराणिक देवी-देवता, उसके आचार-विचार एवं उसकी नीति-परम्पराएँ वहाँ की कला में अभिव्यक्त होती हैं। कला भी साहित्य की ही भाँति समाज का दर्पण है। कला का उद्देश्य केवल भौतिक जगत को मूर्त्त रूप देना ही नहीं है, अपितु अमूर्त्त भावों या विचारों को, लोक-मान्यताओं तथा आध्यात्मिक विचारों को भी साकार रूप देना है। इस कड़ी में भारतीय कला वस्तुत: लोक को परलोक से मिलाने वाला सेतु है। वह लौकिक और आध्यात्मिक जगत का सम्मेलन-बिन्दु है। भारतीय कलाकारों ने कतिपय प्रतीकों के माध्यम से भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति को व्यक्त करने का श्लाघनीय प्रयास किया है। इस परम्परा में 'शालभंजिका' रूपांकन भारतीय कला प्रतीक-परम्परा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

शालभंजिका से अभिप्राय उस मूर्ति-शिल्प से है, जिसमें एक रूपसी तरुणी को एक वृक्ष के नीचे त्रिभंग मुद्रा में खड़े हुए अंकित किया जाता है। युवती अपने एक हाथ से वृक्ष की एक शाखा को पकड़कर झूलती-सी दिखाई देती है। अपने दूसरे हाथ से वह बहुधा वृक्ष के तने को लपेटती अथवा आलिंगन-सी करती है। ऐसा करते हुए वह युवती अपने एक पैर से वृक्ष के तने को या तो लपेटती है या उस पर प्रहार करती है।

प्रारम्भिक भारतीय कला में शालभंजिका-क्रीड़ा का अंकन देखने को मिलता है। अपने आरम्भिक काल में यह शब्द क्रीड़ा विशेष का वाचक था, किन्तु कालान्तर में यह शब्द अर्थ-परिवर्तन के साथ-साथ कला में भी तदनुरूप प्रतिबिम्बित होता हुआ दिखाई देता है। साँची एवं मथुरा के तोरण-कोष्ठकों एवं वेदिका-स्तम्भों पर वृक्ष-शाखा को अवनमित करती नमितजानु सुन्दरियों के जो अंकन मिलते हैं, वह इस बात के प्रमाण हैं कि कम-से-कम पहली शताब्दी ईसा पूर्व तक शालभंजिका शब्द अपने मूलार्थ के स्थान पर ललित कला-मुद्रा का बोधक बन गया था।

शालभंजिका शब्द से भारतीय साहित्यकार सदैव से प्रभावित रहे हैं। इस शब्द का अर्थ विभिन्न कालों में बदलता रहा है। वस्तुत: शालभंजिका एक उद्यान-क्रीड़ा थी, जो पूर्वी भारत में स्त्रियों द्वारा खेली जाती थी। पाणिनि के सूत्र 'प्राचा क्रीड़ायाम्' की व्याख्या के रूप में, काशिका के अन्तर्गत, सबसे पहले शालभंजिका का उल्लेख पाया जाता है। पूर्वी भारत में शाल वृक्ष अधिक पाए जाते थे, सम्भवत: इसीलिए शालभंजिका-क्रीड़ा प्राय: पूर्वी भारत में ही प्रचलित रही होगी। इस क्रीड़ा में स्त्रियाँ बसंत ऋतु में शाल वनों में एकत्र होकर पुष्पित शाल की शाखाओं से सम्भवत: एक दूसरे पर प्रहार करके खेलती होंगी।[१]

'अवदान शतक' में शालभंजिका-क्रीड़ा का उल्लेख वन-महोत्सव के रूप में हुआ है। एक बार जब गौतम बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डक के जेत वन में ठहरे हुए थे, तब शालभंजिका महोत्सव का पर्व पड़ा। उस दिन सैकड़ों-हजारों नर-नारी शाल वन में एकत्रित हुए, शाल-पुष्पों को एकत्रित किया और इधर-उधर खेल-कूद कर उत्सव मनाया।[२] ऐसा प्रतीत होता है कि महामाया देवी के द्वारा शालभंजिका-क्रीड़ा किए जाने के समय बुद्ध-जन्म होने से उस क्रीड़ा को विशेष महत्त्व दिया

* शोधार्थी– इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान सङ्काय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

जाने लगा था और उसे हर वर्ष महोत्सव के रूप में मनाया जाता था।

राजशेखर ने 'शालभंजिका' शब्द का प्रयोग नायिका (मृगाङ्कावली) की प्रतिमा के अर्थ में किया है। उन्होंने अपने एक ग्रन्थ (नाटिका) का शीर्षक ही 'विद्धशालभंजिका' रखा। ग्यारहवीं शताब्दी के लेखक श्रीकृष्ण मिश्र के 'प्रबोध चन्द्रोदय' नामक नाटक में भी शालभंजी या सालभंजी शब्द आया है। महामोह, मिथ्या दृष्टि से कहता है– 'प्रिये! जो हृदय से दूर हो, उसे याद किया जाता है, तुम तो हमारे चित्त रूपी भित्ति में शालभंजी-तुल्य सर्वदा ही विराजमान हो।' निश्चित रूप से; यहाँ इस शब्द से तात्पर्य भवन की दीवार पर उत्कीर्ण नायिका-प्रतिमा से है–

स्मर्यते सा हि वामोरु भवेद्हृदयाद्बहिः।
मच्चित्तभित्तो भवती शालभंजीव राजते।।[३]

'विद्धशालभंजिका' की व्याख्या करते हुए 'चमत्कार-तरंगिणी' टीका में कहा गया है– ''वेधितश्छिद्रितो विद्धः इति सुधाद्याः स्तम्भादौ प्रतिमा सालभंजिकेत्यमरः।'' स्पष्ट रूप से यहाँ यह शब्द स्तम्भ पर टङ्कित प्रतिमा का द्योतक है। इसी टीका में अन्यत्र कहा गया है– ''विद्वेति विद्वेषु छिद्रित-स्तम्भेषु सालभंजिकेव मनोहरा मृगाङ्कावली'' अर्थात् प्रासाद-स्तम्भ पर नायिका मृगाङ्कावली प्रतिमा-तुल्य उत्कीर्ण थी। स्पष्ट रूप से, इस शब्द का तात्पर्य यहाँ स्वयं नायिका-प्रतिमा से है।

इन शालभंजिका-मूर्तियों के अंग-प्रत्यंग को कलाकारों ने इतने मनोयोग से उत्कीर्ण किया है कि वे साक्षात् अप्सरा, गन्धर्वी अथवा किन्नरी-सी सुघड़, सलोनी एवं मोहिनी हो उठी हैं। यौवन एवं सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमाएँ हैं। अपने अलंकृत केशपाशों, आकर्षक आभूषणों, मोहक मुद्राओं, त्रिभंग भंगिमाओं, उभरे उठे सुगठित उरोजों, सुस्मित वदनों और पारदर्शी पोशाकों से वे दर्शकों का मन मोह लेती हैं।

शालभंजिकाओं की आकृतियाँ प्रायः स्तूपों के तोरणों की कड़ियों अथवा उनके चारों ओर की वेदिका के स्तम्भों पर उत्कीर्ण पायी गयी हैं। इसीलिए इन्हें तोरण-शालभंजिकाएँ और स्तम्भ-शालभंजिकाएँ कहा जाता है। तोरण-शालभंजिका का उल्लेख अश्वघोष कृत 'बुद्धचरित' में मिलता है, जहाँ गवाक्ष के पार्श्व में धनुषाकार देहयष्टि लिए खड़ी युवती को तोरण-शालभंजिका के समान कहा गया है–

अवलम्ब्य गवाक्षपार्श्वमन्या, शयिता चाप-विभुग्नागात्र-यष्टिः।
विरराज विलम्बि-चारुहारा रचिता तोरण-शालभंजिकेव।।[४]

स्तम्भ-शालभंजिकाओं का उल्लेख महाउम्मग्ग जातक, नाट्यशास्त्र, रघुवंश, कामसूत्र की जयमंगल टीका, हर्षचरित, कादम्बरी, विद्धशालभंजिका, नैषधीयचरितम्, कथासरित्सागर तथा जैन ग्रन्थ पउमचरिय में मिलता है। तोरण-शालभंजिकाएँ साँची, ऐरण, मथुरा और नागार्जुनकोंडा से तथा स्तम्भ-शालभंजिकाएँ भरहुत, साँची, कुम्हरार, मेहरौली, मथुरा आदि अनेक स्थानों से प्राप्त हुई हैं। कौशांबी, नागोद, भुवनेश्वर तथा गांधार-कला के फलकों पर भी शालभंजिकाओं के दृश्य देखने को मिलते हैं। नेवासा तथा बस्ती से मिली कुछ मृण्मूर्तियों पर तथा अफगानिस्तान के बेग्राम से प्राप्त दंत कलाकृतियों पर भी शालभंजिका का प्रतीक मिलता है।

शालभंजिका का स्वरूप : उद्यान क्रीड़ा– इस क्रीड़ा का उल्लेख अनेक बौद्ध साहित्य में मिलता है। निदानकथा जातक के अनुसार, जब मायादेवी अपनी बहन प्रजापति गौतमी और दासियों के साथ कपिलवस्तु से देवदह जा रही थीं, तो मार्ग में लुम्बिनी वन में विश्राम करने के लिए रुकीं। बसंत की ऋतु थी, पुष्पित शालवृक्षों से सुरभित शीतल बयार चल रही थी और वृक्षों

पर नाना प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे थे। शाल वन की उस बसन्ती शोभा को देखकर मायादेवी ने शाल-क्रीड़ा करने की इच्छा की। ज्यों ही उन्होंने एक शालवृक्ष की डाल पकड़ी, त्यों ही उन्हें प्रसव-वेदना हुई और तत्काल खड़े-ही-खड़े उन्होंने बोधिसत्व गौतम को जन्म दिया। अविलम्ब आकाश से इंद्र, ब्रह्मा तथा अन्य लोकपाल नवजात शिशु को प्राप्त करने के लिए उपस्थित हो गए और अप्सराओं तथा देवगणों ने वाद्य-वृन्दों से नवागंतुक का स्वागत किया।[५]

दोहद : यह प्रतीक 'वृक्ष एवं स्त्री' अभिप्राय का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकार था। एक प्रकार का यह कवि-विश्वास माना जाता था, जिसके अनुसार यह समझा जाता था कि युवती के पाद-प्रहार से अथवा स्पर्शालिंगन से असमय में भी वृक्ष कुसुमित हो उठते हैं। ऐसी सामान्य अवधारणा थी कि अशोक वृक्ष तब तक पुष्पित नहीं होता है, जब तक मदिरासक्त सुन्दरी के बाएँ चरण से स्पर्श ना हुआ हो। अनेक साहित्यिक विवरणों से ज्ञात होता है कि यदि तरुणी अशोक वृक्ष के तने पर अपने बाएँ पैर का आघात या मुखमदिरा का उस पर कुल्ला कर देती है, तो चमत्कारिक रूप से उसमें प्रसून सद्य: प्रस्फुटित हो जाते हैं। ऐसा कवि का विश्वास था कि नवयौवना सुन्दर तरुणी के कोमल स्पर्श से प्रियंगु, उसकी मुखमदिरा से बकुल, पाद-प्रहार से अशोक, दृष्टि-निक्षेप से तिलक, आलिंगन से कुर्बक, सुरीली बोली से मंदार, स्मिति से चंपक, सुगंधित नि:श्वास से आम्र, मधुर संगीत से नमेरु और उसके नृत्य से कर्णिकार का वृक्ष असमय में ही पुष्पित हो उठता है।[६]

दोहद के कई उदाहरण कालिदास के ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। 'मालविकाग्निमित्रम्' में अस्वस्थ होने के कारण रानी अपनी दासी मालविका से अपने प्रमद वन में स्थित अशोक वृक्ष के साथ दोहद (चरणाघात) क्रिया सम्पन्न करने का निवेदन करती है– ''चिरायमाणकुसुमोदगमस्य तपनीयाशोकस्य दोहदनिमित्त।''

'रघुवंश' तथा 'मेघदूत' में भी दोहद के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। वस्तुत: दोहद-क्रिया के माध्यम से प्रकृति और मानव की एकरूपता और परस्पर निर्भरता का संकेत मिलता है। स्पर्श तथा आलिंगन से तरुणी की सर्जना-शक्ति वृक्ष को सहज ही पुष्पित कर देती है। प्राचीन भारतीय कला की शालभंजिका मूर्तियाँ अपने गोल और कलश की भाँति उभरे उरोजों से सर्जनात्मक मातृत्व-शक्ति का बोध कराती हुई प्रतीत होती हैं।

भरहुत, साँची, मेहरौली, कुम्हरार, बोधगया तथा ऐरण की शालभंजिकाएँ दोहद के रूपांकन का श्रेष्ठ उदाहरण हैं। दोहद-दृश्य से अलंकृत शुंगकालीन वेदिका-स्तम्भ कोलकाता संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें एक स्थूलकाय यक्षिणी अशोक के वृक्षमूल को अपने बाएँ हाथ एवं पैर द्वारा आलिंगनबद्ध तथा तरुशाखा को दक्षिण कर से स्पर्श करती हुई दिखाई देती है। भरहुत से प्राप्त एक अन्य दृश्य में एक स्थूल वपु एवं नाना भरण शोभाढ्य यक्षिणी, जिसका बायाँ हाथ उसके कटि प्रदेश पर कलात्मक शैली में अवलम्बित है, कमल यान पर खड़ी उत्कीर्ण है। राजकीय संग्रहालय, मथुरा से प्राप्त एक वेदिका-स्तम्भ में दोहद दृश्य का एक सुन्दर दृश्य देखने को मिलता है। विविध आभरणों से मण्डित तन्वंगी चौड़ी कमरपेटी धारण किए अशोक वृक्ष के नीचे खड़ी है। वह अपने दोनों हाथों से कमल के डण्ठल को पकड़े हुए बाएँ पैर के स्थान पर दाएँ पैर से तरु मूल को आघात करती निरूपित है।

दोहद दृश्य का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में द्रष्टव्य है। इसमें एक युवती अशोक वृक्ष के नीचे खड़ी उसके तने को अपने बाएँ पैर से स्पर्श करती हुई रूपांकित

है। वह अपने बाएँ हाथ से अशोक वृक्ष की शाखा का अवलम्बन करती है तथा दाएँ हाथ से अपनी नग्नता पर आवरण डाले अधोवस्त्र को स्पर्श कर रही है। प्राचीन भारतीय साहित्य एवं कला में अशोक वृक्ष युवती के चरणाघात से सम्बद्ध था, तो बकुल विटप उसके मुख की मदिरा से सिक्त होने एवं कुरबक उसकी कुचघात-क्रीड़ा के रस का प्रत्याशी था।[७]

स्त्री-सौन्दर्य का प्रतिमान : इन रमणीय शालभंजिकाओं के माध्यम से रूप, यौवन और सौन्दर्य अपने जीवंत रूप में साकार हो उठा है। प्राचीन भारतीय साहित्य में स्त्री-सौन्दर्य के अनेक उपमान मिलते हैं, जैसे– चंद्रमा की भाँति मुख, कमान जैसी भौंहें, खंजन की तरह नेत्र, बिम्बफल जैसे अधर, कम्बु ग्रीवा, कमलनाल जैसी सुकोमल भुजाएँ, स्वर्ण घट जैसे उरोज, कदली जैसी जंघाएँ हैं और कमलपुष्प जैसे हाथ-पैर इत्यादि। इस प्रकार, आकर्षक केश-विन्यास लुभावने आभूषण, सुष्मित वदन, सुडौल स्तन, क्षीण कटि, चिकने गात्र और मोहक त्रिभंग मुद्राओं से भारतीय कला की ये शालभंजिकाएँ स्त्री-सौन्दर्य के मानदण्ड पर खरी उतरती हैं।

शालभंजिका-क्रीड़ा और बुद्ध-जन्म : शालभंजिका-क्रीड़ा के समय ही महामाया देवी ने सिद्धार्थ गौतम को जन्म दिया था, इसलिए यह क्रीड़ा बौद्ध धर्म से प्रभावित क्षेत्रों में महोत्सव के रूप में मनायी जाने लगी। कालान्तर में बौद्ध कलाकारों ने बुद्ध-जन्म के इस ऐतिहासिक दृश्य को भाँति-भाँति से उत्कीर्ण किया। बौद्ध ग्रन्थ 'निदानकथा' के अनुसार, जब महामाया देवी शालवृक्ष के नीचे खड़ी थीं, उसी समय उन्होंने बोधिसत्व को प्रसवित किया था। 'मज्झिम निकाय' के अनुसार भी बुद्ध-जननी उन्हें खड़ी होकर ही जन्म देती हैं। बुद्ध-जन्म के ये दृश्य-फलक कौशांबी, अमरावती, नागार्जुनकोंडा, लुम्बिनी वन, सारनाथ तथा गांधारकला में प्राप्त हुए हैं। बुद्ध-जन्म के इन दृश्यों में महामाया देवी को शाल वृक्ष के नीचे एक डाल पकड़कर त्रिभंग मुद्रा में खड़ा दिखाया गया है। उनके साथ एक ओर प्रजापति और सेविकाएँ तथा दूसरी ओर इंद्र, ब्रह्मा आदि लोकपाल अंकित किए गए हैं। अमरावती तथा नागार्जुनकोंडा से प्राप्त बुद्ध-जन्म के दृश्य-फलकों में कलाकारों ने रेशमी पट पर सात पद-चिह्न उकेरे हैं, जो बोधिसत्व के जन्म लेते ही खड़े होने तथा सात डग भरने का प्रतीकात्मक दृश्य प्रदर्शित करते हैं। कुछ फलकों में छत्र तथा चाँमर जैसे राजत्व के प्रतीक उकेरे गये हैं, जिनमें कलाकारों द्वारा बुद्ध की उपस्थिति को प्रस्तुत किया गया है।

गांधार कला में मायादेवी की शालभंजिका-क्रीड़ा अत्यन्त गरिमामय ढंग से उत्कीर्ण है। शाल वृक्ष के नीचे वे तरुशाखा का दाहिने हाथ से अवलम्बन किए त्रिभंगी मुद्रा में खड़ी हैं तथा बाईं ओर उन्हें सहारा देती उनकी छोटी बहन गौतमी निरूपित हैं। भारत कला भवन, वाराणसी में गांधार कला की एक आकृति संरक्षित है। इस दृष्टांत में माया देवी का ऊर्ध्वकाय मात्र प्रदर्शित है। इसमें वे शाल वृक्ष की मुख्य शाखा को अवलम्बित करती उत्कीर्णित हैं। बुद्ध-जन्म के दृश्यों में मायादेवी को सम्पूर्ण राजकीय गरिमा से मण्डित दिखाया गया है। एक भी दृश्य में उन्हें वृक्ष का आलिंगन करते हुए नहीं अंकित किया गया है।

शालभंजिकाओं के विविध रूपांकन : भरहुत, मथुरा, बोधगया, नागार्जुनकोंडा में बहुत सी शालभंजिकाएँ या तो किसी झुके अथवा लेटे हुए पुरुष के ऊपर खड़ी हैं या फिर हाथी या मकर पर। भरहुत की वेदिकाओं में मानव और हाथी के अतिरिक्त घोड़े पर भी खड़ी शालभंजिकाओं के अंकन प्राप्त हुए हैं। नेपाल और मथुरा की अधिकांश शालभंजिकाएँ पुरुष आकृतियों पर और कुछ पशु आकृतियों पर खड़ी उत्कीर्ण की गयी हैं। गया से प्राप्त शालभंजिका एक बैठे हुए पुरुष का आधार ले रही है, वहीं नागार्जुनकोंडा से प्राप्त शालभंजिका मकर पर अधिष्ठित है। साँची

से प्राप्त शालभंजिकाओं में से किसी के भी नीचे कोई वाहन नहीं है। वे प्राय: वृक्ष के तने पर ही खड़ी उकेरी गयी हैं। भरहुत और मथुरा से प्राप्त अधिकांश शालभंजिकाएँ या तो नर-वाहना हैं या पशु-वाहना।

राजकीय संग्रहालय, मथुरा में संरक्षित एक वेदिका-स्तम्भ में स्त्री कंदुक-क्रीड़ा का एक विलक्षण दृश्यांकन प्राप्त है। इसमें एक तरुणी एक ही हाथ द्वारा दो गेंदों से खेलते प्रदर्शित है। एक गेंद को वह अपने दाहिने हाथ की हथेली से पकड़े है तथा दूसरे हाथ की कोहनी को असाधारण रूप से ऊपर उठाकर एक दूसरी गेंद हवा में उछालती दिखायी गयी है। यह कंदुक-क्रीड़ा राजशेखर की विद्धशालभंजिका में वर्णित 'कंदुक-केलि ताण्डव' का स्मरण कराता है।

भारतीय कला में शालभंजिका प्रतीक ईसा पूर्व द्वितीय शती से ही उत्कीर्ण किया जाने लगा था। भरहुत तथा साँची की शालभंजिकाएँ सर्वाधिक प्राचीन हैं। शील और मर्यादा की भावना में वृद्धि होने से यद्यपि गुप्त काल में शालभंजिकाओं की लोकप्रियता में कमी हुई, किन्तु उनकी परम्परा अनवरत चलती रही। साहित्य में नारी-मूर्तियों के रूप में इस प्रतीक का उल्लेख १८वीं शती ईस्वी तक मिलता रहा।[८]

प्रख्यात् भारतीय कला-मर्मज्ञ ई.बी. हेवेल शालभंजिका-प्रतीक के विषय में लिखते हैं– ''भारतीय कला पर प्राय: विद्वान् पश्चिमी जगत का प्रभाव परिलक्षित करते हैं, जो पूर्णत: सत्य नहीं है। भारतीय कला में शालभंजिका-प्रतीक जिस सौन्दर्य-बोध, सुकुमारता, यौवन, अंगचारुता और भाव-भंगिमाओं की सृष्टि करता है, उसकी समता पश्चिमी जगत की किसी कलाकृति में उजागर नहीं हो सकती।''[९] वस्तुत: भारतीय कला की यह शालभंजिकाएँ हमारे सुखमय जीवन के उस पक्ष को उजागर करती हैं, जिसमें यौवन और रूप का अक्षय और अक्षुण्ण भण्डार अभीप्सित था, जिसमें तृतीय पुरुषार्थ अर्थात् काम-सार्थकता सन्निहित थी।

सन्दर्भ-सूची

१. वासुदेव शरण अग्रवाल– 'इण्डिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृष्ठ १५९
२. वासुदेव शरण अग्रवाल– 'इण्डिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृष्ठ १५९
३. प्रबोध चन्द्रोदय– अङ्क-२, श्लोक-३७
४. अश्वघोष– बुद्धचरित, अंक-५, श्लोक-५२
५. वासुदेव शरण अग्रवाल– 'इण्डिया ऐज नोन टु पाणिनि', पृष्ठ १५९, जातक (अनुवादक-भदन्त आनन्द कौशल्यायन), खण्ड-१, पृष्ठ ६८-६९
६. ए. एल. श्रीवास्तव– 'भारतीय कला प्रतीक', पृष्ठ १३५
७. कुरबक कुचघातक्रीड़ारस्न वियुज्यसे,
बकुलविटपिन्स्मर्तव्यं ते मुखासवसेवनम।
चरणघटनाशून्यो यास्य स्वशोकसशोकतामिति,
निजपुरत्यागे मयस्य द्विषां जगदुरू स्त्रिय:।।
-सुभाषित रत्नावली, २५६४, शिवराममूर्ति, संस्कृत लिट्रेचर एण्ड आर्टमिरर्स ऑफ इण्डियन कल्चर्स, पृष्ठ ४०
८. उदय नारायण राय– शालभंजिका, पृष्ठ ७४, ७९
९. ई.बी. हेवेल– द हैण्डबुक ऑफ इण्डियन आर्ट, पृष्ठ ३७

●

विहारों की संरचना एवं बौद्ध कला का क्रमिक विकास

डॉ. अभिषित त्रिपाठी*

सिन्धु सभ्यता में शिल्प और वास्तु धार्मिक जीवन के सहायक अंग के रूप में पाये गए हैं। सैन्धव शिल्प में परवर्ती भारतीय कला के कुछ विशिष्ट लक्षण देखे जा सकते हैं, जैसे– मानव रूप की आदर्शपरक अभिव्यक्ति और पशुओं का स्वाभाविक निरूपण।[१] मनुष्य अपनी आध्यात्मिक शक्ति अथवा चेतना को प्रतिबिम्बित करने की योग्यता से ही देवता को 'मूर्ति-रूप' प्रदान करता है।[२] सिन्धु सभ्यता में नर और पशु– दोनों का ही समान रूप से निरूपण किया गया है। परवर्ती भारतीय धर्म और लिपि के समान कला की परम्परा का भी मूल उद्‌गम सिन्धु सभ्यता को ही मानना चाहिए।[३] सिन्धु सभ्यता के लोग ईंटों के स्थान पर लकड़ी का प्रयोग करने लगे, जिससे वास्तु कला का विकास बहुत तेजी से हुआ। उत्तर वैदिक काल से यह परिस्थिति क्रमश: परिवर्तित हुई और पुन: अशोक के काल से कला का पुनर्जन्म हुआ, जिसके प्रमुख तीन कारण माने जा सकते हैं– कला के पोषक सामाजिक वर्ग का उदय, कारीगरी का विकास एवं धार्मिक प्रेरणा का अभाव।[४]

ई.पू. छठीं शताब्दी से नगर-जीवन, श्रेष्ठीवर्ग तथा राजदरबारों के अभ्युदय के साथ वास्तु कला एवं विविध शिल्पों का भी विकास होना स्वाभाविक था। कुछ शताब्दियों तक वास्तु के रूप में श्रेष्ठियों का हर्म्य और राजप्रासाद का ही निर्माण होता रहा। इनके अन्यत्र और कहीं भी वास्तु कला का प्रयोग नहीं होता था। निर्माण-सामग्री के रूप में केवल काष्ठ का प्रयोग होने से ये वास्तु अतीव भंगुर थे।[५] चन्द्रगुप्त मौर्य का पाटलिपुत्र का प्रासाद इसके एक उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में स्मरणीय है।[६] हाथी दाँत, काष्ठ आदि के शिल्पों ने इस युग में पर्याप्त प्रगति की। शिल्पियों का संगठनात्मक स्वरूप, शिक्षा एवं परम्परा के सहारे कला में निपुणता का विकास सम्भव हो सका। बौद्ध धर्म के समर्थक श्रेष्ठियों और शासकों की वजह से बौद्ध विहारों की समृद्धि बढ़ी तथा कालान्तर में वे स्वयं कला के पोषक बन गए और कला धर्म-प्रचार का माध्यम। कला और धर्म का यह समन्वय एक विशाल आध्यात्मिक क्रान्ति का द्योतक था।[७]

बौद्ध धर्म में अगर वास्तु कला की बात की जाय, तो उसका प्राचीनतम विषय विहार एवं स्तूप थे। विहारों में वास्तु कला का काफी विकास हुआ। विनयपिटक में पाँच प्रकार के शयनाशनों का वर्णन किया गया है– विहार, अर्धयोग, प्रासाद, हर्म्य और गुहा।[८] इनमें अन्तिम प्रकार के आवास– 'गुहा' का वास्तु कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है। बौद्ध संघ में उत्तरोत्तर भिक्षुओं की संख्या-वृद्धि से आवासिकता का प्रश्न खड़ा हो गया। इसके हल में; भिक्षु प्रारम्भ में प्रकृति-निर्मित गुहा में एकान्तचर्या करने लगे। लेकिन ये प्रकृति-निर्मित आवास भिक्षुओं के लिए पर्याप्त नहीं हुए। कालान्तर में राजा और श्रेष्ठी विहार बनवाकर संघ में दान देने लगे। इसी क्रम में; गुहा आवास का भी नाम आता है। अशोक ने गुहा-निर्माण को गति प्रदान की। उसने गया के समीप बराबरा की पहाड़ियों में गुहा खुदवाकर संघ को दान किया। प्रारम्भ में गुहा-निर्माण और उसकी वास्तु कला पूर्व स्थापित झोपड़ियों और कुटियों के तर्ज पर किया गया। कालान्तर में प्रस्तर कला का विकास निरन्तर होता रहा।

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् उनके शरीर के अवशेष को लेकर विवाद शुरू हो

* पोस्ट– डॉक्टोरल फेलो– भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (ICSSR), नई दिल्ली)।

गया। असीत् नामक ब्राह्मण ने इस विवाद के निवारण स्वरूप शरीर के अवशेषों को आठ भागों में विभाजित कर दिया। इस प्रकार, इन अवशेषों पर पृथक्-पृथक् आठ स्तूपों का निर्माण हुआ।[९] मृत शरीर या उसके कुछ अंश पर स्मृति-चिह्नों का निर्माण अत्यन्त प्राचीन विधा है। भारतीय प्रागैतिहासिक तथा वैदिक साहित्य में ऐसे अनेक वर्णन प्राप्त होते हैं।[१०] मृतक के शरीर को गाड़कर उस स्थान को चिह्नित करने के लिए मिट्टी का, लकड़ी का अथवा प्रस्तर का प्रयोग अनेक जगहों पर पाया गया है। सम्भवत: राजाओं या चक्रवर्तियों के लिए स्मारक प्रधान स्तूपों का निर्माण किया जाता था। भगवान् बुद्ध को भी धर्मराज, धार्मिक चक्रवर्ती मान लेने पर उनके लिए भी वैसे ही स्तूपों की रचना एवं कल्पना स्वाभाविक थी। स्तूपों को अण्डाकार बनाने के पीछे की कल्पना मृतिका-संचय रही हो।[११] मृतक के ऊपर गाड़े छत्र या बाड़े का विकास कालान्तर में हर्मिका के रूप में हुआ।[१२] स्तूप भगवान् बुद्ध के प्रतीक के रूप में था, अतएव उसकी पूजा-अर्चना की जाने लगी। पूजा के प्रचलित होने से कालान्तर में चैत्यगृहों का निर्माण किया जाने लगा। स्तूपों के आकार में वृद्धि, उनके चिरस्थायित्व के लिए प्रस्तर का प्रयोग तथा उनके अलंकरण के लिए कलात्मक चित्रकारी, वास्तुकला के विकास का अद्वितीय उदाहरण है।

इस विकास-क्रम को हम निम्नलिखित काल-खण्डों में विभक्त कर देख सकते हैं–

(१) मौर्य काल- वास्तु कला के दृष्टिकोण से मौर्य काल स्वर्णिम युग रहा। मौर्य काल के जो प्रस्तर शिल्प थे, वे काष्ठ शिल्प के ही रूपान्तरित शिल्प थे। मौर्यों से पहले की किसी प्रस्तर कला के निश्चित अवशेष भी प्राप्त नहीं होते।[१३] इन तथ्यों के आधार पर यह कहा गया है कि अशोककालीन प्रस्तरकला को मौर्य साम्राज्य के पश्चिमी सम्पर्क का परिणाम मानना चाहिए।[१४] मिस्र, असीरिया और यूनान की कलाओं के सम्मिश्रण से उत्पन्न शाखामनीषी ईरानी कला विभिन्न सभ्यताओं के असमंजस मेल को प्रतिबिम्बित करती है।[१५] अशोक स्तम्भों के शिल्प में भी इन्हीं सभ्यताओं के मेल की झलक मिलती है, जिसे यवनशिल्पियों द्वारा निर्मित बताया गया है। गुहा-निर्माण की कला भी असीरिया एवं ईरान से ली गयी है। यह भी कहा जाता है कि अशोक ने जो धर्मलिपि प्रकाशित करने की परम्परा की शुरूआत की, वह भी ईरानी सम्राटों के अभिलेखों से प्रेरित है। लेखन-कला एवं लिपि भी पश्चिमी एशिया से सीखी गयी। यहाँ तक मौर्य प्रशासन भी पश्चिम का ऋणी बताया जाता है।[१६]

जो भी हो, मौर्य साम्राज्य एवं कला पर पश्चिमी प्रभाव रहा हो, तब भी मौर्य संस्कृति की मौलिकता और भारतीयता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कितनी भी शिल्प-कला पश्चिम से ली हुई कही जा सकती है, लेकिन यह निर्विवाद है कि अशोककालीन कला की प्रेरणा बौद्ध धर्म के विकास से ही प्राप्त थी। बौद्ध साहित्यों के अनुसार, अशोक ने ८४,००० स्तूप तथा विहारों का निर्माण करवाकर बौद्ध संघ को दान किया था। चीनी यात्रियों ने भारत में कई स्थानों पर निर्मित स्तूप और विहारों को देखा था। दुर्भाग्यवश इनमें से कोई भी वर्तमान में अपने मूल स्वरूप में उपलब्ध नहीं है। अशोक द्वारा स्थापित स्तम्भ कला एवं वास्तु का अप्रतितम उदाहरण है। इन स्तम्भों पर विशेष प्रकार की चिकनाई एवं चमक दिखाई पड़ती है। स्तम्भ के अग्रभाग को मुख्यत: तीन भागों में बाँट सकते हैं– (१) मूल अधोमुख कमल के आकार का है, (२) मध्य में वर्तुल वाटिका पर धर्मचक्र, हंस-श्रेणी, अश्व, वृषभ आदि चित्रित हैं, (३) शिरोभाग पर सिंह अथवा गज अथवा वृषभ आदि की मूर्ति निर्मित है।[१७] उदाहरणस्वरूप; सारनाथ का स्तम्भ ले सकते हैं, जिसके शिरोभाग की मध्यपट्टिका पर चार धर्मचक्र और उनके बीच में गज, वृषभ, अश्व एवं

सिंह अंकित हैं तथा सबसे ऊपर चार सिंहों की मूर्ति स्थापित है, जिनका मुख चारों दिशाओं में अलग-अलग है। यह इस बात का द्योतक है कि बौद्ध-धर्म चारों दिशाओं में फैल रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसकी स्थापना धर्मचक्र-प्रवर्तन के रूप में की गयी थी।[१८] अशोक के स्तम्भों में पशुओं का चित्रांकन अत्यन्त रमणीय है। कदाचित ही कला के किसी युग में इससे सुन्दर निरूपण मिले।

शुंग काल– मौर्य सम्राट् बृहद्रथ की हत्या उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने करके, शुंग वंश की स्थापना की। यह बौद्ध धर्म का विरोधी था। इसने ब्राह्मणों का नेतृत्व किया।[१९] धनदेव के अयोध्या-अभिलेख में पुष्यमित्र को दो बार अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करने वाला बताया गया है।[२०] दूसरी ओर; दिव्यावदान एवं तारानाथ में पुष्यमित्र को बौद्ध-विरोधी बताया गया है।[२१] पुष्यमित्र स्तूपों तथा विहारों का विनाश करते हुए तथा भिक्षुओं का वध करते हुए सेना के साथ शाकल तक गया।[२२] यहाँ उसने घोषणा की कि जो भी बौद्ध श्रमणों का मस्तक काटकर लायेगा, उसे पुरस्कार स्वरूप १०० दिनार दिया जायेगा। पुष्यमित्र को यक्ष कृमिश से पराजित बताया गया है, जो सम्भवत: यवनों की तरफ संकेत करता है।[२३]

शुंग वंश के बौद्ध-प्रतिकूल होने के पश्चात् भी बौद्ध धर्म पूर्णत: उच्छिन्न नहीं हुआ। उदाहरणस्वरूप; हम भरहुत तथा साँची के स्तूपों के विकास को देख सकते हैं। प्रारम्भिक स्तूप अर्द्धगोलाकार (अण्ड) होते थे। अण्ड के अग्रभाग में हर्मिका और छत्र तथा मूलभाग में एक दक्षिणापथ होता था। चारों ओर रक्षा के लिए वेदिका बना दी जाती थी, जिसमें द्वार या तोरण होते थे। कालान्तर में स्तूपों का आकार बढ़ता और ऊँचा होता गया। वेदिका एवं तोरणों को उत्कृष्ट तरीके से अलंकृत किया जाने लगा।[२४] इन अलंकरणों का मुख्य विषय जातक या बुद्ध की जीवनी से लिए गए। भरहुत नागौदा में है, किन्तु वहाँ का स्तूप सर्वथा उन्मीलित हो चुका है। भरहुत स्तूप को कला एवं अलंकरण के प्रदर्शन की दृष्टि से, हम इसे प्रारम्भ का मान सकते हैं। इसके प्रमुख दो कारण हैं[२५]– पहला प्रमुख कारण है कि भरहुत में थोड़ी सी ही सीमा में घटनाओं को अव्यवस्थित ढंग से प्रदर्शित किया गया है। छोटे से चौकोर स्थान में इतने कार्यों का प्रदर्शन कला की दृष्टि में अव्यवस्थित प्रतीत होता है। दूसरा प्रमुख कारण यह है कि उसके उदाहरणों में जीवन-शक्ति का अभाव दृष्टिगोचर होता है। कोई प्रतिमा संचालित न होकर अंग-प्रत्यंग गतिविहीन प्रकट होती हैं। यक्ष-यक्षिणी के अंगों में अनुपात का भी अभाव है। अनुपात की अनुपस्थिति में कलाकार की अक्षमता का परिज्ञान हो जाता है। इन सभी कारणों से भरहुत वेदिका शुंगकालीन कला का प्रारम्भिक स्वरूप उपस्थित करती है।

भरहुत एवं साँची के स्तूपों में प्रकट इस मध्यकालीन कला का उद्गम अशोककालीन मागधी-कला में ही मानना चाहिए, जिसका कि अधिकांश विलुप्त हो चुका है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि साँची और भरहुत कौशाम्बी से विदिशा के मार्ग में पड़ते हैं। इसी मार्ग ने मध्यभारतीय कला की परम्परा दक्षिणापथ के लिए पथ-प्रदर्शक का काम किया।[२६] इसके विकास स्वरूप हम अमरावती एवं अजन्ता को देख सकते हैं। अमरावती में साँची की शान्ति का स्थान एक प्रकार की जीवन-स्फूर्ति अथवा भावाकुलता ले लेती है। अजन्ता की चित्रकला भी इसी मूर्तिविधान की परम्परा का रूपान्तरित परिणाम एवं उत्कर्ष है।[२७] यहाँ की शिल्प कला में आध्यात्मिक शान्ति एवं शैल्पिक दक्षता, परमार्थ की सूचना तथा जीवन की प्रेरणा– दोनों का चरम समन्वय है।[२८] उत्तरापथ के स्तूप ऊँचे होकर बहुभूमिक शिखर से प्रतीत होने लगे। उकेरी हुई मूर्तियों का स्थान अधिकाधिक

कोरी हुई मूर्तियों ने ले लिया।

सातवाहन युग- मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद दक्षिण भारत में कुछ समय तक सातवाहनों का शासन रहा। सातवाहनों को पुराणों में अन्ध्रभृत्य तथा अन्ध्रजातीय कहा गया है तथा उनके अनुसार, सुशर्मा नाम के अन्तिम कण्व शासक को मारकर सिमुक ने सातवाहन वंश की स्थापना की।[२९] सातवाहनों के स्थान एवं तिथि को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। फिर भी; यह माना जाता है कि सातवाहनों का शासनकाल प्रथम शताब्दी ई.पू. से लेकर ई. द्वितीय शताब्दी तक रहा। शक शासकों से इनका संघर्ष होता रहता था। सातवाहन नरेश ब्राह्मण थे और ब्राह्मण धर्म का ही पालन करते थे, किन्तु उन्होंने बौद्ध धर्म के प्रति उदारता एवं दानशीलता का परिचय दिया। इसी के फलस्वरूप; बौद्ध धर्म एवं कला दक्षिण भारत में खूब फली-फूली। भाजा, पितलखोर, कोन्डोने, जुन्नर, बेडसा, नासिक एवं कार्ली में अनेक चैत्य एवं विहार के अवशेष प्राप्त होते हैं।[३०] पश्चिमी घाट की गुफाओं में भद्रयनीय, धर्मोत्तरीय और महासांघिक सम्प्रदायों का प्रचार विदित होता है। दक्षिण पूर्व में चैत्यक, पूर्वशैल, अपरशैल आदि उत्तरकालीन महासांघिकों के आवास थे।[३१]

पत्थरों को काटकर गुहा-निर्माण की कला का प्रथम परिचय अशोककालीन मगध से प्राप्त होता है। सातवाहनों का मगध के साथ व्यापारिक एवं सैनिक सम्बन्ध था; जिसके फलस्वरूप शिल्प एवं स्थापत्य कला का आदान-प्रदान होना स्वाभाविक है। कला के इस आदान-प्रदान को हम पश्चिमी घाट में शिल्प कला के विकास के रूप में देख सकते हैं। भाजा, पितलघोर, कोन्डोन, अजन्ता (गुफा १०) एवं जुन्नर की गुफाएँ प्राचीनतर हैं तथा बेडसा, नासिक और कार्ली की गुफाएँ इनकी अपेक्षा बाद की हैं।[३२] भाजा से कार्ली तक हम एक बड़े शिल्प कला के विकास को देख सकते हैं। इस गुहा वास्तु में और सामान्य वास्तु कला में अन्तर है। समतल भूमि पर निर्माण नीचे से ऊपर की ओर होता है, जबकि गुहा निर्माण में प्रस्तर को ऊपर से नीचे की ओर उत्कीर्ण किया जाता था। इसकी निर्माण-विधि स्थापत्य के निकट कम है, उत्कीर्ण-शिल्प के अधिक।[३३] प्रारम्भ में; गुहा निर्माण के लिए काष्ठ कुटियों एवं गृहों की संरचना का अनुकरण किया गया, जिसने एक विशिष्ट आकार को जन्म दिया।

सातवाहनों के बाद पल्लवों के शासन काल में बौद्धों की यह समृद्धि क्षीण हो गयी। ७वीं शताब्दी में चीनी यात्री श्वान्च्वांग की भारत-यात्रा के दौरान जब वह आन्ध्रापथ पहुँचा, तो यहाँ के विहार और चैत्य वीरान पड़े थे। अमरावती का महाचैत्य अब पूर्णतः नष्ट हो चुका है। मूल स्तूप घण्टाकार था, जिसके अग्रभाग में चौकोर हर्मिका तथा उसमें दो छत्र थे। मूलभाग के चारों ओर प्रदक्षिणापथ था। स्तूप के चारों ओर वेदिका बनी हुई थी। न केवल वेदिका और प्रदक्षिणापथ, अपितु स्तूप का अण्डभाग भी उत्कीर्ण-शिल्प से अलंकृत है।[३४] महासांघिकों के प्रभाव से चैत्यपूजा का यहाँ विशेष विस्तार हुआ तथा अनेक साक्ष्यों से यह पता चलता है कि बौद्ध धर्म का महायान में महत्त्वपूर्ण रूपान्तर इसी प्रदेश और युग में सर्वप्रथम सम्पन्न हुआ।

यवन-शासक— ई.पू. दूसरी और पहली शताब्दियों में अनेक यवन शासकों ने वाह्लीक से आगे बढ़कर गान्धार और उत्तरापथ में शासन किया।[३५] यवन शासकों में कई शासकों ने बौद्ध धर्म के प्रति रुचि प्रदर्शित की। इनमें मिनान्दर या मिलिन्द सबसे प्रसिद्ध हैं। मिलिन्द ने अपनी राजधानी शाकल को बनाया और यहीं पर प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु नागसेन से मिलिन्द का संवाद हुआ, जिसका विवरण हमें 'मिलिन्दपञ्हों से प्राप्त होता है। मिलिन्द ने बौद्ध धर्म के विस्तार के लिए

अनेक विहार व चैत्यों का निर्माण करवाया। प्लूटार्क के अनुसार, मिनान्दर के निधन के बाद उसके शरीर के अवशेषों के लिए उसके साम्राज्य के नगरों में वैसी ही होड़ हुई, जैसी स्वयं बुद्ध भगवान् के निधन के उपरान्त हुई थी।[३६] अनेक यवन शासकों द्वारा बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए किए गए दान का अभिलेखों में वर्णन प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, इन्द्राग्निदत्त नाम के एक यवन शासक ने नासिक में गुहा का उत्खनन करवाया था। स्वात के एक अभिलेख में मोरिदर्ख थेउदोर के द्वारा भगवान् बुद्ध के देहावशेष की प्रतिष्ठा उल्लिखित है।[३७] यह स्मरणीय तथ्य है कि यवनों की बौद्ध धर्म में रुचि अशोक के समय से ही थी। अशोक ने यवनों के बीच में भी धर्म का प्रचार किया था। अपने साम्राज्य में बसे हुए यवनों के लिए अशोक ने यवन भाषा और लिपि में अपनी 'धर्म-प्रशस्ति' का प्रकाशन तक किया, ताकि बौद्ध धर्म आसानी से यवनों के बीच लोकप्रिय हो सके। मोग्गलीपुत्र तिस्स ने भी धर्मरक्षित नाम के यवन को धर्म के प्रचार कार्य हेतु चुना।

गान्धार कला– गान्धार यवनों का प्रमुख केन्द्र रहा। गान्धार प्रदेश भारत की पश्चिमोत्तर सीमा के अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र के लिए प्रयुक्त नाम है। ६०० ई.पू. से हखमनी, यूनानी, शक, पह्लव, कुषाण आदि राजवंशों का यहाँ क्रमश: राज्य रहा।[३८] अत: यहाँ एक मिश्रित प्रभावों वाली सभ्यता का जन्म दिखाई देता है और इसके अन्तर्गत यहाँ की कला को 'गांधार कला' नाम दिया जाता है।[३९] यवन शिल्प और बौद्ध आदर्श के समन्वय से इस विशिष्ट कला का उद्गम हुआ। गांधार कला के काल-निर्णय को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। कुछ विद्वान् गांधार-कला की उत्पत्ति ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर पाँच-छ: सौ वर्षों तक मानते हैं।[४०] गांधार कला के प्रमुख संरक्षकों में यवनों के साथ-साथ शक और कुषाण थे। इस कला का स्वरूप एवं शैलीगत परिभाषा अन्य भारतीय क्षेत्रों में फैली कला से बहुत कुछ अलग दिखलाई पड़ती है। पहले यह मान्यता प्रचलित थी कि बुद्ध-प्रतिमा को जन्म देने का श्रेय गांधार कला को ही है। किन्तु इस पर सन्देह प्रकट किया गया है और यह कहा गया है कि मथुरा में बुद्ध की प्रतिमा का आविर्भाव स्वतन्त्र रीति से और सम्भवत: गान्धार प्रतिमा के पूर्व हुआ।[४१]

बौद्ध धर्म के प्रमुख समर्थक राजाओं में कनिष्क का नाम प्रमुख है। कनिष्क के समय कुषाण साम्राज्य मध्य एशिया से 'पूर्वी भारत' तक विस्तृत हो गया था। गांधार कला का यह स्वर्णकाल था। राजकीय सहायता ने इस काल में बौद्ध मूर्तियों का निर्माण, स्तूप तथा विहारों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। स्वयं कनिष्क ने अनेक चैत्यों और विहारों का निर्माण करवाया। पुरुषपुर में उसका बनवाया महाचैत्य अत्यन्त प्रसिद्ध था।[४२] पेशावर में शाह जी की ढेरी में उत्खनन से 'कनिष्क विहार' की सूचना प्राप्त होती है। कनिष्क के समय तक अब विहारों में निर्मित होने वाले स्तूपों का आकार बड़ा होने लगा था। विशेषकर गांधार शैली में बने स्तूप मध्यभारतीय स्तूपों से बड़े बनने लगे थे। उसके चौकोर व मूल भाग का अनेक भूमियों में निर्माण होता था। ऊँचाई बढ़ने के कारण, चढ़ने के लिए सीढ़ियों की एक से अधिक श्रेणी बनायी जाती थी। सम्पूर्ण स्तूप गांधार शैली से अलंकृत होता था। समस्त स्तूप एक बुर्ज-सा प्रतीत होता था।

गुप्त काल– गुप्त साम्राज्य के समय को भी बौद्ध धर्म के प्रसार एवं कला के लिए स्वर्ण काल कहा जा सकता है। गुप्त साम्राज्य ने मध्य एशिया के अलावा उत्तरापथ और मध्यदेश तक बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार किया। इसका उल्लेख फाश्येन ने अपनी भारत यात्रा-वृत्तान्त में किया है। इसके पुरातात्त्विक साक्ष्य भी उपलब्ध हैं। बामियान में प्रस्तर पर खुदे एक मील तक विहार एवं चैत्य के प्रमाण उपलब्ध हैं।[४३] फाश्येन के अनुसार, भारतवर्ष के अधिकांशत: राजा बौद्ध

धर्म के अनुयायी थे, परन्तु गुप्त नरेश वैष्णव थे। फिर भी; गुप्त नरेश बहुत ही सहिष्णु थे। इन्होंने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए ढेर सारे काम किए। फाश्येन ने मध्यदेश के शासन और समाज की बहुत प्रशंसा की है। उस समय के विहारों का वर्णन करते हुए फाश्येन ने लिखा है कि भगवान् बुद्ध परिनिर्वाण के समय से ही विभिन्न राजा और श्रेष्ठी जन समतल भूमि पर विहारों का निर्माण करवाकर संघ को दान देने लगे। दान के रूप में क्षेत्र, गृह, खाद्य-सामग्री, उद्यान एवं आराम दिए जाते थे। सम्राटों में ग्राम दान देने की परम्परा की शुरूआत हो गयी। इसके अन्तर्गत दान दिये हुए ग्रामों के अन्दर के पशु, मनुष्य एवं योग्य भूमि, सम्पूर्ण संघ के अधीन हो जाता था। राजाओं द्वारा दान दिए गए वस्तुओं का उल्लेख धातुमयी पट्टिका पर करवाया जाता था।[४४]

गुप्त काल में मथुरा का कुषाणकालीन महत्त्व घटा नहीं था। यहाँ से प्राप्त अवशेषों को देखने से पता चलता है कि ५वीं और ७वीं शताब्दियों के मध्य में कला का जो स्वर्णयुग विदित है, उसमें मथुरा की बौद्ध प्रतिमाएँ अपना अलग ही स्थान रखती हैं। मथुरा से प्राप्त अभिलेखों में गुप्त काल की परिष्कृत कला की बहुत प्रशंसा की गयी है। सामान्यत: गुप्तकालीन बुद्ध प्रतिमा में शीर्ष के प्रभाचक्र में एक-केन्द्रिक वृत्तों का अलंकरण उत्कीर्ण है, बाल घुमावदार है, भौहों का आलेखन सुन्दर है, आँखें कली के आकार में हैं, नख-शिख बारीक, मुखाकृति शान्त और प्रसन्न, परिधान पतले प्रदर्शित होते हैं। गुप्त काल में बुद्ध प्रतिमाओं के दो मुख्य केन्द्र थे– सारनाथ और मथुरा। इन दोनों स्थानों से प्राप्त बुद्ध मूर्तियों में परिधान को लेकर विशेष अन्तर है। कुछ मूर्तियों में परिधान केवल संकेत के रूप में उत्कीर्ण हैं, कुछ में महीन रेखाओं से वस्त्र की सलवटें प्रदर्शित की जाती हैं।[४५] गुप्तकालीन ऐतिहासिक सामग्रियों के अध्ययन से पता चलता है कि सारनाथ, कसिया तथा श्रावस्ती में बौद्ध विहारों का निर्माण हुआ था। गुप्तकालीन भवनों के निर्माण में सुन्दर अलंकृत स्तम्भ काम लाए गए। गुप्त काल में विहार प्राय: समतल भूमि पर ईंट-प्रस्तर से जोड़कर तैयार होने लगे थे।[४६] चट्टानों में गुहा खोदने का कार्य लगभग समाप्त हो गया। इसका कारण था बौद्धमत के केन्द्र का स्थानान्तर होना। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि पश्चिमी भारत की सहयाद्रि पर्वतमाला को खोदने का कलाकारों को प्रोत्साहन न मिल पाया और पर्वत शृंखला के विहारों की उपादेयता न रही। राजाश्रय मिलने से नए स्थानों की खोज हुई। जिन स्थानों से बुद्ध का सीधा सम्बन्ध रहा, वहाँ ही भिक्षुसंघ खड़े हुए तथा विहारों का निर्माण शुरू हुआ। गुप्तकाल में बहुत कम गुफाओं का निर्माण हुआ। गुप्त काल (५वीं सदी) से गुहा का आधार एवं स्थान परिवर्तित हो गया। इस काल में महायान मत का बहुत अधिक विस्तार हुआ।[४७] बौद्ध विद्वानों के दृष्टिकोण में भी काफी बदलाव आया। बौद्ध विहार अब केवल धर्म-प्रचार के केन्द्र न रहे, अपितु शिक्षा केन्द्र के रूप में परिवर्तित हो गए। धीरे-धीरे पश्चिमी भारत से हटकर पूर्वी भारत में बौद्धों का कार्य बढ़ने लगा। कालान्तर में चैत्य-निर्माण का कार्य भी बंद हो गया, क्योंकि अब बुद्ध प्रतिमा को विहार के ही एक प्रमुख कमरे में स्थापित किया जाने लगा।[४८] यानी 'चैत्य' तथा 'विहार' का सम्मिश्रण हो गया। इस तथ्य की पुष्टि के लिए मथुरा से प्राप्त ई.पू. १२९ ई. की बौद्ध प्रतिमा-लेख में वर्णन किया गया है कि हुविष्क ने एक विहार का निर्माण किया और उसी में शाक्यमुनि बुद्ध की प्रतिमा स्थापित की।[४९]

अलंकरण की दृष्टि से साँची तोरण कला सर्वोत्तम मानी गयी है। यहाँ अनेक स्तूपों के अवशेष प्राप्त होते हैं। स्तूप (संख्या-१) का प्रारम्भ कदाचित् अशोककालीन रहा हो, किन्तु उसे बाद में अलंकृत एवं प्रस्तर-मण्डित किया गया हो। स्तूप (संख्या-२) का शिल्प-अलंकरण भरहुत के ही

समान है, कदाचित् यह भी समकालीन रहा हो।[५०] इन स्तूपों की वेदिका पर कोई भी शिल्प कला का प्रदर्शन नहीं है, किन्तु इनके तोरणों पर उत्कृष्ट अलंकरण किया गया है। इन तोरणों का निर्माण अपेक्षतया परवर्ती है। साँची तोरण के कलाकार अत्यन्त दक्ष एवं कुशल कारीगर थे। साँची तोरण की कला में जीवन-शक्ति तथा रक्त-संचार दृष्टिगोचर होता है। षड्दत्त जातक, बेसत्तर जातक एवं भस्त (धातु) के लिए युद्ध का प्रदर्शन कलात्मक प्रवाह का ज्वलन्त उदाहरण है।[५१] कला के मानदण्ड को ध्यान में रखकर आदर्श तथा वस्तुस्थिति का परिज्ञान करना कला के विशेष गुण माने जाते हैं। साँची तोरण पर लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई को प्रस्तर पर सफल रूप से दर्शाया गया है, इसलिए साँची कला को शुंग काल की सर्वोत्कृष्ट कला समझते हैं।

इस प्रकार, हम देख सकते हैं कि गुप्त युग में विहार-निर्माण की दशा पूर्णत: बदल गयी। पहाड़ों में गुहा निर्माण प्रक्रिया का प्राय: अन्त हो गया। समतल मैदान में ईंट-पत्थर जोड़कर कई मंजिल के विहार तैयार होने लगे। प्राचीन काल में भारत में गुहा एवं विहार निर्माण के क्रमिक विकास का इतिहास जानने के लिए उनके वास्तु एवं कला पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। कला एवं स्थापत्य– दोनों में गहरा सम्बन्ध है। बौद्ध धर्म के धार्मिक संकेतों को कला के माध्यम से हस्तशिल्पियों ने बहुत ही निपुणता के साथ गुहा एवं विहारों के दीवार पर चित्रित किया है। इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है कि बौद्ध-भिक्षुओं के निवास तथा पूजास्थान के निमित्त गुहाएँ खोदी गईं। प्रारम्भ में भिक्षु ग्राम-नगर में घूम-घूमकर भिक्षाटन किया करते थे। कालान्तर में उनके निवास की स्थायी व्यवस्था की आवश्यकता मालूम पड़ी। परिणामस्वरूप; राजाश्रय में बौद्ध कलाकारों की हस्तकुशलता के कारण असाधारण-सा दिखने वाला गुहा निर्माण कार्य सम्भव हो सका। प्रत्यक्ष साक्ष्य के रूप में ये गुहाएँ आज भी वर्तमान हैं। कालान्तर में इन विहारों का विकास होता गया। विहार से महाविहार और फिर विश्वविद्यालय के रूप में विश्वविख्यात हो गए। इस समय के बौद्ध विहार मुख्यत: दो कार्य सम्पन्न करते थे। पहला कार्य, वहाँ का प्रधान भिक्षु बुद्धमत सम्बन्धी उपदेश दिया करता था। उपासकों को धार्मिक विषयों पर उपदेश तथा अध्ययन कराकर भिक्षु अपने कर्तव्य का पालन करते रहे। दूसरा मुख्य कार्य भारतीय शिक्षा से सम्बन्धित था। यानी विहार 'शास्त्रीय परिषद' के रूप में कार्य करने लगे। शिक्षा देना, शास्त्रार्थ का प्रबन्ध करना, ऊँचे शास्त्रों का अध्ययन करना तथा साहित्य-सृजन आदि कार्य विहार में सम्पन्न होते रहे।

सन्दर्भ-सूची

१. नर्तकी की ताम्रमूर्ति– मुद्रांकित पशुपति, मुद्रांकित वृषभ : ह्वीलर, पूर्व त्रिफलक, १७, २३
२. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १६३
३. रोलण्ड– आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ इण्डिया, पृ. ४८
४. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १६३
५. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १६३
६. मैक्रिन्डल– एन्शेन्ट इण्डिया एज डिस्क्राइब्ज बाइ मेगास्थनीज एण्ड एरियन, पृ. ६५-६८
७. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १६४
८. विनय पिटक– नालन्दा, संस्करण, पृ.सं. २३९
९. महापरिनिब्बानसुतन्त के अनुसार कुसीनारा के मल्लों, मागध अजातशत्रु वैशाली के लिच्छवि, कपिलवत्थु के सक्य, अल्लकप्प के बुलि, रामगाम के कोलिय, वेठदीपक ब्राह्मण तथा पावा के मल्लों में विभाजन हुआ।
१०. ऋक् संहिता– ७.८९.१, मैकडॉनल, वैदिक माइथॉलजी, पृ. १६५

११. स्तूप का अक्षरार्थ-निचय– पालि टेक्स्ट सोसायटी का पालि कोश
१२. महापरिनिब्बानसुतन्त– ''चक्कवत्तिस्स सरीरं झापेत्ति, चातुम्महापथे रञ्ञे चक्कवत्तिस्स थूपं करोन्ति।'' ४
१३. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १६५
१४. रोलण्ड– आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ इण्डिया, पृ. ४४-४५
१५. फ्रैन्कफोर्ट– दि आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ दि एन्शेण्ट ओरियण्ट, पृ. २१५-३३
१६. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १६६
१७. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १६६
१८. रोलण्ड– आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ इण्डिया, पृ. ४५-४६
१९. घोष– एन.एन. डिड पुष्यमित्र शुंग पर्सीक्यूट दि बुद्धिस्ट, १९४३
२०. एपिग्राफिया इण्डिया– जिल्द-२०१
२१. दिव्यादान– पृ. २८२, तारानाथ, पृ. ८१
२२. वही
२३. बागची– इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, जिल्द-२२
२४. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १६७
२५. डॉ. वासुदेव उपाध्याय– प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पृ. ३५
२६. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १६९
२७. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १६९
२८. मार्शल एण्ड फुशे– दि मॉनुमेण्ट्स ऑव राँची, जिल्द-३, १९४०
२९. पार्जिटर– पुराण टेक्ट्स ऑव दि डाइनेस्टिज ऑव दि कालि एज
३०. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १६९
३१. फर्गुसन एण्ड वर्जस– दि केव टेम्पल्स ऑव इण्डिया, १८८०
३२. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १७०
३३. वही
३४. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १७१
३५. वही– पृ० १७३
३६. कैम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया– जिल्द-१, पृ. ५५१
३७. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १७३
३८. डॉ. पृथ्वीकुमार अग्रवाल– प्राचीन भारतीय कला एवं वास्तु, पृ. १७
३९. वही– पृ. १७ ४०. वही– पृ. १७
४१. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १७४
४२. फाश्येन (अनु. जाइल्स)– पृ. १३, श्वाच्वांग (अनु. वील) पृ. १५१
४३. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १७७
४४. लेग, फाश्येन– पृ. ४३
४५. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १७८
४६. डॉ. वासुदेव उपाध्याय– प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पृ. ११५
४७. वही– पृ. ११६ ४८. वही, पृ. ११६ १४ ४९. वही– पृ. ११६
५०. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय– बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ.सं. १६८
५१. डॉ. वासुदेव उपाध्याय– प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पृ. ३६

●

जम्मू-कश्मीर

स्थायी शान्ति-स्थापना की प्रमुख चुनौतियाँ

डॉ. राजकुमार राम*

सारांश- ५ अगस्त, २०१९ को अनुच्छेद-३७० की निवृत्ति के बाद जम्मू-कश्मीर में घटित विभिन्न घटनाओं, जैसे– अल्पसंख्यक समुदाय, अप्रवासी मजदूरों और स्थानीय पुलिस अधिकारियों की कश्मीर में हुई हत्याओं ने अन्य भारतीय लोगों का ध्यान व्यापक रूप से अपनी ओर आकर्षित किया है। छोटे-छोटे आतंकी समूहों द्वारा लक्ष्यित एवं सॉफ्ट टार्गेट्स को निशाना बनाकर स्थानीय नागरिकों, अप्रवासी मजूदरों और निर्वाचित जन प्रतिनिधियों को धमकाया-डराया जाता है। इसके साथ ही; २०२० में हुए स्थानीय निकाय चुनाव के बाद भी एक राजनीतिक शून्यता ही दिखाई देती रही है। सुरक्षा के मोर्चे पर टार्गेटेड हत्याओं एवं व्यावसायिक प्रतिष्ठानों पर किए गये हमले घाटी में आतंकी नेटवर्क का प्रमाण हैं। लेकिन फिर भी; पिछले कुछ वर्षों की तुलना में कश्मीर घाटी की स्थिति बेहतर हुई है। जम्मू-कश्मीर जैसे बड़े भौगोलिक क्षेत्र या संभाग में शान्ति की बात हो, तो वहाँ पर कई प्रकार के कारकों व परिस्थितियों को देखा जा सकता है। किसी विशेष क्षेत्र में विभिन्न विषम परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं को भी चुनौतियों के रूप में देखा जा सकता है। जम्मू-कश्मीर के सन्दर्भ में शान्ति-स्थापना की चुनौतियाँ वहाँ के स्थानीय जनजीवन को बहुत अधिक प्रभावित करता है, जिसे न्यूज चैनलों, पत्र-पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों के माध्यम से देखा जा सकता है। वहाँ पर होने वाली आतंकवादी घटनाएँ, सीजफायर उल्लंघन की घटनाएँ, लक्ष्यित हत्याएँ, उग्र आन्दोलन, कट्टरपंथी, अलगाववादी एवं राजनीतिक समस्याएँ मुख्य रूप से विद्यमान हैं।

मुख्य शब्द- शान्ति, अल्पसंख्यक समुदाय, अप्रवासी मजदूर, आतंकवाद, सीजफायर उल्लंघन, लक्ष्यित हत्याएँ, उग्रवाद, अलगाववाद।

कश्यप ऋषि की तपोभूमि और धरती का स्वर्ग कही जाने वाली जम्मू-कश्मीर की भूमि पर स्थायी शान्ति-स्थापना की विभिन्न चुनौतियाँ विद्यमान हैं, जिनमें आतंकवाद, कट्टर अलगाववाद, लक्ष्यित हत्याओं की समस्या कश्मीरी अशान्ति को प्रेरित करते रहे हैं। जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद की शुरूआत को सामान्यत: १९८० के उत्तरार्द्ध में पाकिस्तानी रणनीति के रूप में देखा जाता रहा है। ''आतंकवाद कत्ल एवं तबाही का व्यवस्थित प्रयोग है तथा अपनी माँगों को मनवाने के लिए व्यक्तियों, समूहों तथा समुदायों को नष्ट करने की धमकी देता है।''[१] आतंकवाद का जो स्वरूप सामने आता है, उसमें समान रूप से हिंसा के साथ आतंक को बढ़ावा देने की प्रकृति समाहित होती है। जम्मू-कश्मीर में आतंकवाद को पाकिस्तानी रणनीति की देन माना जाता है, जिसमें छद्म युद्ध के साथ-साथ आतंकी घटनाओं द्वारा हजारों जख्म देने की रणनीति अपनायी जाती रही है।[२]

अप्रैल, २००२ में केन्द्रीय गृह राज्य मंत्री सी.एच. विद्यासागर राव ने राज्यसभा में एक प्रश्न के उत्तर में बताया कि भारत में लश्कर-ए-तैयबा, जैश-ए-मोहम्मद, हरकत-उल-

* पोस्टडॉक्टोरल फैलो (ICSSR, नई दिल्ली)– एमसीपीआर, सामाजिक विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (उ.प्र.)

मुजाहिदीन तथा सिमी समेत ३१ प्रमुख उग्रवादी संगठन सक्रिय हैं, जिनमें से कुछ ने पाकिस्तान अथवा POK और अफगानिस्तान में अपने अड्डे बना रखे हैं।[३] जम्मू-कश्मीर में घटित आतंकी घटनाओं के द्वारा न केवल भारतीय सैन्य बल, बल्कि निर्दोष स्थानीय आम नागरिक भी शहीद होते रहे हैं, जिससे स्थानीय शान्ति और जनजीवन बहुत अधिक प्रभावित होता रहा है।

२००१ में भारतीय संसद पर हुए आतंकी हमले के बाद भारत व पाकिस्तान के मध्य सम्बन्ध खराब हो गये थे, जिसके अन्तर्गत भारत द्वारा अपने उच्चायुक्त को वापस बुला लिया गया था व दोनों देशों के मध्य चलने वाली समझौता एक्सप्रेस ट्रेन एवं दिल्ली-लाहौर बस सेवाओं को बन्द कर दिया गया था, जिसमें एक तरह से युद्ध की आहट देखी जा सकती थी। विभिन्न जटिल तनाओं के बीच भारतीय सेना को युद्ध के लिए तैयार होने और ऑपरेशन 'पराक्रम' हेतु तैयार रहने का आदेश दे दिया गया।[४]

२०१५ में आतंकवाद का विकसित रूप 'हाइब्रिड आतंकवाद' के रूप में देखने को मिला, जिसमें कश्मीरी युवाओं का आतंकी घटनाओं में शामिल होना चिंता का विषय है। सोशल मीडिया पर ११ कश्मीरी आतंकी नौजवानों का, जो ए.के. ४७ राइफल के साथ दिखे, आतंकी घटनाओं में शामिल होकर चिंता का विषय बने थे। इन युवाओं द्वारा अन्य कश्मीरी युवाओं को भी आतंकवाद की ओर आकर्षित किया गया था।[५] वर्ष २०१६ में आतंकी संगठनों पर भारतीय सुरक्षा बलों द्वारा कठोरता से कार्रवाई की गई, जिसमें सेना के १८ जवान शहीद हुए थे। २९ सितम्बर, २०१६ को बालाकोट सर्जिकल स्ट्राइक की आधिकारिक पुष्टि की गयी, जिसमें भारतीय सैन्य बलों द्वारा POK के आतंकी शिविरों पर कड़ी कार्रवाई की गयी थी।

भारत सरकार की आधिकारिक रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष २०२१ में वर्ष २०२० की तुलना में आतंकी घटनाओं में कमी आयी है। एक रिपोर्ट के अनुसार देखें, तो २०१७ से पहले आतंकवादी घटनाओं की संख्या प्रति वर्ष २५६ तक थी, जिसमें १९९० से २०१७ तक ६९००० आतंकी घटनाएँ जम्मू-कश्मीर में घटीं, जिसमें लगभग १४००० नागरिकों की जान गयी तथा ५००० जवान शहीद हुए।[६] कश्मीर में उग्रवाद धार्मिक कट्टरता और धार्मिक असहिष्णुता का नतीजा रहा है। अलगाववादियों ने उसे एक राष्ट्रवादी आन्दोलन और स्वतंत्र संघर्ष के रूप में प्रस्तुत करते हुए प्रतिष्ठा प्रदान करने की कोशिश की। लगभग ३ लाख कश्मीरी पण्डितों को भगाते हुए घाटी में दहशत फैलाया गया, जिसके कारण कश्मीरी पण्डितों को लगभग दो दशकों तक शरणार्थी शिविरों में रहना पड़ा। बहुत से कश्मीरी पण्डितों को मार डाला गया, उनकी महिलाओं का अपहरण किया गया, उनके मन्दिरों को नष्ट किया गया और मस्जिदों के लाउडस्पीकरों द्वारा लगातार धमकियाँ दी जाती रहीं।[७]

उग्रवादी समस्या से जम्मू-कश्मीर के स्थानीय जनजीवन अस्त-व्यस्त होते रहे हैं, जिससे समय-समय पर शान्ति की चुनौतियाँ उत्पन्न होती रही हैं। कश्मीर घाटी में अलगाववादी संगठनों एवं कश्मीरी नेताओं के आह्वान द्वारा 'कश्मीर बंद' और पत्थरबाजी की घटनाओं को देखा जाता रहा है। सीजफायर-उल्लंघन अथवा युद्ध-विराम उल्लंघन भी कश्मीरी शान्ति की चुनौतियों में मुख्य भूमिका निभाती रही है। सीजफायर-उल्लंघन की घटनाएँ भारत के उत्तरी राज्य जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तान से लगने वाली सीमाओं पर सामान्यत: देखने को मिलती रहती रही है, जिसका मुख्य कारण भारत-पाक के मध्य लगातार बने रहने वाला तनाव है, जो सीमा-विवाद से सम्बन्धित है। इससे जम्मू-कश्मीर की शान्ति एवं स्थानीय जनजीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता

रहा है। जम्मू-कश्मीर में लक्ष्यित हत्याएँ आतंकियों का एक नया हथियार है, जिसने न केवल जम्मू-कश्मीर की शान्ति को भंग किया है, बल्कि देश की शान्ति पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। चाहे वह भारतीय संसद पर हुआ आतंकी हमला हो या अक्षरधाम पर आतंकी हमला। मुम्बई के ताज होटल पर आतंकी हमला, पठानकोट आतंकवादी हमला जैसी कई आतंकवादी घटनाओं की एक लम्बी शृंखला है, जिससे स्थानीय जीवन एवं शान्ति विभिन्न समयों पर प्रभावित होती रहती है। जम्मू-कश्मीर में पिछले कुछ वर्षों के दौरान लक्ष्यित हत्याओं का क्रम तेजी से बढ़ा है, जिसमें आतंकवादियों के अनेक लक्ष्य देखने को मिलते हैं। आतंकवादियों द्वारा मौद्रिक लाभों एवं राजनीतिक उद्देश्यों के लिए वसूली एवं अपहरण का भी मार्ग अपनाया गया। जम्मू-कश्मीर में जब भी चुनावों का समय आता है, तब राजनीतिक लक्ष्यित हत्याओं की संख्या बढ़ जाती है, जिसका लक्ष्य स्थानीय लोगों के मन में भय व अशान्ति उत्पन्न करना है। गैर कश्मीरी लोगों को, विशेषकर बाहरी लोगों (श्रमिकों) को, मुख्य रूप से निशाना बनाया जाता रहा है, जिसमें न केवल बाहरी लोग, बल्कि कश्मीरी लोग भी शिकार होते हैं। जून, २०१८ में 'द राइजिंग कश्मीर' के प्रधान सम्पादक सुजात बुखारी एवं सेना के जवान औरंगजेब की लक्ष्यित हत्या इसके उदाहरण हैं। प्रतिष्ठित पत्रकारों, सेना के जवानों, प्रसिद्ध व्यवसायियों, अध्यापकों को लक्ष्यित करके उनको धमकियाँ देना व हत्या कर देना आतंकियों द्वारा दहशत फैलाने की रणनीति है, जिससे शान्ति-व्यवस्था बनाए रखना कठिन हो जाता है।

२९ जनवरी, २०२२ को अनन्तनाग के पुलिसकर्मी की हत्या के बाद अगस्त, २०२२ तक २७ लोगों की हत्याएँ आतंकवादियों द्वारा कर दी गयी, जिनमें महिलाएँ, बच्चे, निहत्थे पुलिस वाले (SPO) और बाहरी राज्यों के श्रमिक एवं कश्मीर में कार्यरत कर्मचारी शामिल थे। कश्मीर (जो मुस्लिम बहुल क्षेत्र है) की समस्याएँ और चुनौतियाँ धार्मिक स्तर पर अधिक प्रभावित होती रही हैं। धर्म और राजनीति के गलत प्रयोग से समाज में अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। विभिन्न अन्तर्विरोधों से व्यक्तियों में असन्तोष और निराशा की भावनाओं के कारण अनेक सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ता रहा है। कश्मीरी युवाओं, कृषकों, छात्रों में अशान्ति, स्त्रियों के विरुद्ध हिंसा ने विभिन्न दंगों, विद्रोहों और आन्दोलनों को जन्म दिया है, जो समाज में आन्दोलनों के साथ-साथ विरोध-प्रदर्शन, हड़ताल के साथ चक्काजाम (बंद), आगजनी आदि घटनाओं द्वारा पूरे समाज की शान्ति पर प्रभाव डालता है।

भारत सरकार द्वारा भारतीय राज्यों में शान्ति एवं सुरक्षा-व्यवस्था को बनाए रखने हेतु समय-समय पर विभिन्न रणनीतिक योजनाओं के साथ कानून का निर्माण किया जाता रहा है, जिनमें कुछ महत्त्वपूर्ण कानून निम्न हैं–

पीडीए (१९५०-१९६९) (Preventive Detenstion Act) को भारत-विभाजन से बड़े पैमाने पर हुए विस्थापन व हिंसा और उससे उत्पन्न चुनौतियों से निपटने के लिए एक अस्थायी उपाय के रूप में १९५० में भारतीय संसद द्वारा पारित किया गया और १९६९ में इसे समाप्त कर दिया गया।

अफस्पा (AFSPA) को वर्ष १९५८ के दौरान नागालैण्ड में अलगाववादी आन्दोलनों को ध्यान में रखकर अशान्त क्षेत्रों में सेना को पुलिस की सहायता के साथ कार्य करने के लिए विशेष शक्तियाँ और अधिकार दिए गये, जो १९९० में जम्मू-कश्मीर में भी लागू कर दिया गया। इसके बाद Maintance or Internal Security Act (MISA) कानून जम्मू-कश्मीर पर

लागू किया गया। NSA १९८० में, जो रासुका अथवा राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के रूप में जाना गया, जिसमें 'ना कोई वकील, ना कोई अपील और ना कोई दलील' कानून को क्रियान्वित किया गया। जम्मू-कश्मीर सहित पूरे भारत में शान्ति बनाए रखने के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

टाडा (१९८५-१९९५), पोटा (Proventation of Terrorism Act २००१-२००४), NIA (National Investigation Agency Act (२००८) आदि कानून शान्ति व्यवस्था को बनाए रखने हेतु लागू किए गये। इसके अलावा; कश्मीर में शान्ति-स्थापना हेतु विभिन्न गैर सरकारी संगठनों एवं नागरिक समाज (Civil Society) ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। 'गाँधी ग्लोबल फेमिली' समूचे जम्मू-कश्मीर में संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ मिलकर शान्ति-स्थापना का कार्य कर रही है। 'बार्डर लेस फाउण्डेशन' द्वारा आतंक प्रभावित बच्चों की शिक्षा एवं आवास से सम्बन्धित कार्य किया जाता है। 'मुक्ति सोसायटी' संस्था, जो जम्मू सम्भाग के डोडा, किश्तवाड़ के साथ जम्मू के अन्य जिलों में महिलाओं के अधिकारों एवं स्वरोजगार के साथ शान्ति को बढ़ाने का प्रयास करती है। 'जम्मू ग्रामीण विकास संस्था' युवाओं को खेल एवं स्वरोजगार को बढ़ावा देने हेतु निरन्तर कार्य कर रही है, जिससे शान्ति को भी बढ़ावा मिल रहा है।

सन्दर्भ-सूची

१. डॉ. रामानन्द गैरोला (२०१४)– अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, पृ. सं. २५५
२. उर्मिलेश (२०१६) कश्मीर : विरासत और सियासत, पृ. सं. १०४
३. बी.एल. फड़िया (२०२०)– अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृ. सं. ६५३
४. जनरल जे.जे. सिंह (२०१३)– 'एक सेनाध्यक्ष की आत्मकथा', पृ. सं. १८१
५. R. Vijay Shankar & R.K. Radhakrishnan (2019)– 'The Dirty War in Kashmir', Page No. 41
६. https://www.hindustantimes.com/india-news/the autonomy of kashmir-militanagin numbers/story-uncrz PTGhN22uf.
७. एस.के. सिन्हा (२०१३)– 'मिशन कश्मीर', पृ. सं.२३

सन्दर्भ ग्रन्थ

- Sumit Ganguly (1999), The Crisis in Kashmir: Portents of War, Hopes of Peace, Cambridge University Press, ISBN 978-0-521-65566-8
- Zutshi, Chitralekha (2018), Languages of Belonging: Islam, Regional Identity, and the Making of Kashmir, C. Hurst & Co., Publishers, ISBN 978-1-85065-700-2
- Guha, Ramachandra (28 August 2004), "Opening a Window in Kashmir", Economic and Political Weekly, 39, (35): 3905&3913, JSTOR 4415473
- Guha, Ramachandra (2008), India after Gandhi: The History of the world's Largest Democracy, Pan Macmillan, ISBN 0330396110
- Gupta JyotiBhusan Das (2012), Jammu and Kashmir, Springer, ISBN 978-94-11-9231-6
- Haqqani, Husain (2010), Pakistan : Between Mosque and Military, Camegie Endowment, ISBn 978-0-87003-285-1
- Ishaq Khan, Mohammad (1996), "Kashmiri Muslims : Social and Identity

consciousness" (PDF), Comparative Studies of South Asia, Africa and the Middle East, XVI (2): 25-38
- Jha, Prem Shankar (2003), The Origins of a Dispute: Kashmir 1947, Oxford University Press, ISBN 978-0-19-566486-7
- Korbel, Josef (1953)< "The Kashmir dispute after six years", International Organization, Cambridge University Press, 7(4):498-510, doi:10.1017/s0020818300007256,JSTOR 2704850, (Subscription refuired (help)
- Noorani, A.G. (2014) [first published in 2013 by Tulika Books], The Kashmir Dispute, 1947-2012, Oxford University Press, ISBN 978-0-19-940018-8
- Panigrahi, D.N. (2009), Jammu and Kashmir, the Cold War and the West Routledge, ISBN 978-1-136-51751-8
- Puri, Balraj (November 2010), "The Question of Accession", Epilogue, 4 (11): 4-6
- Puri, Luv (2013), Across the Line of Control:Inside Azad Kashmir, Columbia University Press, ISBN 978-0-231-80084-6
- Raghavan, Srinath (2010), War and Pace in Modern India, Palgrave Mcmillan, ISBN 978-137-00737-7
- Rai, Mridu (2004), Hindu Rulers, Muslim Subjects: Islam, Rights, and the History of Kashmir. C. Hurst & Co. ISBN 1850656614.
- Schaffer, Howard B. (2009), The Limits of Influence: America's Role in Kashmir Brookings Institution Press, ISBN 978-0-8157-0370-9
- Schofield, Victoria (2003), [First published in 2000] Kashmir in Conflict, London and New York: I.B. Taurus & Co., ISBN 1860648983
- Shankar, Mahesh (2016), "Nehru's Legacy in Kashmir : Why a plebiscite never happened", India Review, 15(1): 1-21, doi:10.1080/14736489.2016.1129926, (Subscription refuired (help)
- Snedden, Christopher (2013) (first published as The Untold Story of the People of Azad Kashmir, 2012], Kashmir; The Unwritten History, HarperCollins India, ISBN 9350298988
- Subbiah, Sumathi (2004), "Security Council Mediation and the Kashmir Dispute: Reflections on Its Failures and Possibilities for Renewal", Boston College International and Comparative Law Reviw, 27 (1): 173-185
- Swami, Praveen (2006), India, Pakistan and the Secret Jihad: The Covert War in Kashmir, 1947-2004, Routledge, ISBN 978-1-134-13752-7
- Varshney, Ashutosh (1992). "Three Compromised Nationalisms: Why Kashmir has been a Problem" (PDF). In Raju G.C. thomas. Perspectives on Kashmir: The roots of conflict in South Asia. Westview Press. pp. 191-234. ISBN 978-0-8133-8342-9.

●

स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित
शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. कृपा शंकर यादव*

सारांश– अध्ययनकर्त्ता द्वारा स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत 'सर्वेक्षण विधि' का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में जनसंख्या के रूप में प्रयागराज मण्डल के शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् बी.एड. प्रशिक्षुओं को जनसंख्या माना गया है। अध्ययन में यादृच्छिक न्यादर्शन विधि द्वारा बी.एड. के कुल ५०० प्रशिक्षुओं का चयन किया है, जिसमें २५० बी.एड. प्रशिक्षुओं का चयन स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों से तथा २५० बी.एड. प्रशिक्षुओं का चयन अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों से किया है। अभिप्रेरणा मापनी का निर्माण एवं प्रमाणीकरण डॉ. के.एस. मिश्र एवं डॉ. प्रतीक उपाध्याय द्वारा किया गया है। आँकड़ों के सांख्यिकी विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात सांख्यिकी का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया गया कि अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में पुरुष, महिला, शहरी एवं ग्रामीण प्रशिक्षुओं में अभिप्रेरणा स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के पुरुष, महिला, शहरी एवं ग्रामीण प्रशिक्षुओं की अपेक्षा उच्च है।

मुख्य शब्द- स्ववित्तपोषित, अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, प्रशिक्षु, अभिप्रेरणा, तुलना

प्रस्तावना- शिक्षा-प्रक्रिया में अभिप्रेरणा के प्रत्यय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। अभिप्रेरणा का उचित प्रयोग करके अध्यापक सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को अधिक अच्छे ढंग से सम्पादित कर सकता है। अध्यापक आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार के अभिप्रेरकों का उपयोग करके बालकों की शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। शिक्षा-प्रक्रिया में अभिप्रेरणा की उपयोगिता स्वस्पष्ट ही है। कक्षा-शिक्षण के अतिरिक्त अन्य शैक्षिक परिस्थितियों में छात्रों के व्यवहारों को नियंत्रित करने के कार्य में भी अभिप्रेरणा महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकती है। चरित्र-निर्माण में भी अभिप्रेरणा सहायक सिद्ध होती है। शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे प्रशिक्षुओं की शिक्षण अभिप्रेरणा जितनी अधिक होगी, शिक्षा-प्रक्रिया के सफल होने की सम्भावना भी उतनी ही अधिक होगी।

अभिप्रेरणा में व्यक्ति का व्यवहार लक्ष्य-निर्देशित होता है अर्थात् अभिप्रेरित व्यवहार का कोई न कोई स्पष्ट लक्ष्य अथवा उद्देश्य अवश्य होता है तथा प्राणी उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए क्रियाशील तथा प्रयासरत रहता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अभिप्रेरणा अपेक्षित लक्ष्य अनुक्रियाओं से युक्त होती हैं तथा लक्ष्य प्राप्ति तक प्राणी अपने प्रयास को जारी रखता है। अभिप्रेरणा प्राणी में ऊर्जा परिवर्तन लाती है। व्यक्ति का अभिप्रेरित व्यवहार उसके सामान्य व्यवहार की तुलना में अधिक प्रबल होता है अर्थात् अभिप्रेरित अवस्था में प्राणी अधिक उत्तेजित, अधिक क्रियाशील तथा अधिक ऊर्जित होता है। अभिप्रेरित व्यवहार की प्रकृति चयनात्मक होती

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर– शिक्षा संकाय, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज, उ.प्र.

है अर्थात् अभिप्रेरित अवस्था में प्राणी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कुछ चयनित प्रतिक्रियाएँ ही करता है। अभिप्रेरित व्यवहार में निरन्तरता होती है अर्थात् अभिप्रेरित व्यवहार एक बार उत्पन्न होने के बाद तब तक निरन्तर चलता रहता है, जब तक प्राणी अपने वांछित उद्देश्य की प्राप्ति नहीं कर लेता है।

अभिप्रेरणा में भावात्मक उत्तेजना पायी जाती है, जिसके कारण प्राणी में एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक तनाव उत्पन्न हो जाता है। प्राणी इस तनाव को दूर करने के लिए सतत् प्रयासरत रहता है। अभिप्रेरणा का तनाव ही प्राणी को सकारात्मक दिशा में प्रयास करने के लिए अग्रसारित करता है।

वर्तमान में जहाँ एक तरफ शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय अपना योगदान दे रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की संख्या में अप्रत्याशित रूप से बढ़ोत्तरी हुई है। इससे योग्य अध्यापकों की नियुक्ति प्रशिक्षुओं के शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता में गिरावट आने की सम्भावना बनी रहती है। जहाँ आज शैक्षिक तकनीकी के क्षेत्र में बड़े परिवर्तन आए हैं, वहीं अनुदानित संस्थानों में शैक्षिक तकनीकी की उपलब्धता होने के बावजूद शिक्षकों को इसकी जानकारी नहीं होती। स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के शिक्षकों में योग्यता अधिक न होने के कारण उनमें भी इसकी अनभिज्ञता रहती है, जिसका प्रभाव सीधे तौर पर प्रशिक्षुओं पर पड़ता है।

प्रशिक्षुओं द्वारा उच्च स्तरीय शिक्षक प्रशिक्षण न प्राप्त करना उनकी अभिप्रेरणा को प्रभावित करता है, साथ ही; अभिप्रेरणा में कमी शिक्षकों की क्षमता, योग्यता, सामर्थ्य, प्रभावशीलता, सृजनात्मकता, कल्पना, नियंत्रण, प्रबंधन, स्वमूल्यांकन एवं स्वसंयमन की क्षमताओं के सम्वर्धन में कमी आना स्वाभाविक है। और यदि इन चरों की कमी होगी, तो उसका प्रभाव सीधे तौर पर आगामी शिक्षक रूप में नियुक्त होने पर विद्यार्थियों के ऊपर पड़ेगा। आज शिक्षक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे प्रशिक्षु का लक्ष्य केवल प्रशिक्षण प्राप्त कर शिक्षक के रूप में व्यवसाय को अपनाना ही रह गया है, जिसका प्रभाव बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास पर पड़ता है।

समस्या-कथन– स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य–

१. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् पुरुष प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा की तुलना करना।
२. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् महिला प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा की तुलना करना।
३. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् शहरी प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा की तुलना करना।
४. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् ग्रामीण प्रशिक्षुओं के अभिप्रेरणा की तुलना करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ– प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

१. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् पुरुष प्रशिक्षुओं

की अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

२. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् महिला प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

३. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् शहरी प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

४. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् ग्रामीण प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध-प्रविधि– प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत 'सर्वेक्षण विधि' का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में जनसंख्या के रूप में प्रयागराज मण्डल के शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् बी.एड. प्रशिक्षुओं को जनसंख्या माना गया है। अध्ययन में यादृच्छिक न्यादर्शन विधि द्वारा बी.एड. के कुल ५०० प्रशिक्षुओं का चयन किया है, जिसमें २५० बी.एड. प्रशिक्षुओं का चयन स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों से तथा २५० बी.एड. प्रशिक्षुओं का चयन अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों से किया है। अभिप्रेरणा मापनी का निर्माण एवं प्रमाणीकरण डॉ. के.एस. मिश्र एवं डॉ. प्रतीक उपाध्याय द्वारा किया गया है। आँकड़ों के सांख्यिकी विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं टी-अनुपात सांख्यिकी का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या–

१. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् पुरुष प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा की तुलना–

स्ववित्त.शि.प्र.सं. पुरुष प्रशिक्षु (१२५)		अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान पुरुष प्रशिक्षु (१२५)		t
M	**SD**	**M**	**SD**	
१६७.४८	१४.२५	१८४.३४	११.४१	१०.३४*

स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के पुरुष प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में प्रशिक्षुओं की तुलना में t-value = १०.३४ जो .०५ = अन्तर सार्थक। परिणामत: अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में पुरुष प्रशिक्षुओं में अभिप्रेरणा स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के पुरुष प्रशिक्षुओं की अपेक्षा उच्च है, जिसका कारण अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में शिक्षक प्रशिक्षण हेतु समस्त सुविधाएँ उपलब्ध होने के साथ उच्च स्तर के शिक्षकों की नियुक्ति तथा सरकार द्वारा मिलने वाली सहायता राशि से प्रशिक्षुओं को प्रशिक्षण में मिलने वाली छात्रवृत्ति के साथ-साथ उचित वातावरण भी उनकी अभिप्रेरणा में सहायक होता है।

२. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् महिला प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा की तुलना–

स्ववित्त.शि.प्र.सं. महिला प्रशिक्षु (१२५)		अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान महिला प्रशिक्षु (१२५)		t
M	**SD**	**M**	**SD**	
१७१.३६	१६.१०	१८३.७७	११.५९	१२.४१*

स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान की महिला प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में प्रशिक्षुओं की तुलना में t-value = १२.४१ जो .०५ = अन्तर सार्थक। परिणामत: अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान की महिला प्रशिक्षुओं में अभिप्रेरणा

स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के प्रशिक्षुओं की अपेक्षा उच्च है। स्ववित्त.शि.प्र.सं. की महिला प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा निम्न पाये जाने का कारण हो सकता है– स्ववित्त.शि.प्र.सं. में प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी के साथ वातावरण पर सुविधाजनक सामग्री उपलब्ध न होना, उचित शिक्षण विधियों का प्रयोग न किया जाना, शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षुओं को सक्रिय एवं प्रेरित न करने के साथ शिक्षकों द्वारा नवीनता एवं सृजनात्मकता का कम प्रयोग करना।

३. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् शहरी प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा की तुलना–

स्ववित्त.शि.प्र.सं. शहरी प्रशिक्षु (१२५)		अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान शहरी प्रशिक्षु (१२५)		t
M	**SD**	**M**	**SD**	
१६८.४०	१४.३०	१८२.४२	११.९८	८.३९*

स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के शहरी प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में प्रशिक्षुओं की तुलना में t-value = ८.३९ जो .०५ = अन्तर सार्थक। परिणामत: अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के शहरी प्रशिक्षुओं में अभिप्रेरणा स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के प्रशिक्षुओं की अपेक्षा उच्च है। अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के शहरी प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा उच्च पाये जाने का कारण वहाँ का शैक्षिक वातावरण उच्च होने के साथ-साथ सुविधाओं की उपलब्धता, उच्च स्तरीय शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षित किया जाना, नवीनता एवं क्रियात्मकता पर अधिक जोर दिया जाना, शिक्षकों द्वारा नवीन शिक्षण–विधियों का प्रयोग, वहाँ के शिक्षकों को समय-समय पर प्रशिक्षण प्रदान किया जाना आदि।

४. स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षणरत् ग्रामीण प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा की तुलना-

स्ववित्त.शि.प्र.सं. ग्रामीण प्रशिक्षु (१२५)		अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान ग्रामीण प्रशिक्षु (१२५)		t
M	**SD**	**M**	**SD**	
१७०.४५	१६.२३	१८३.००	११.८०	७.०१*

स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के ग्रामीण प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में प्रशिक्षुओं की तुलना में t-value = ७.०१ जो .०५ = अन्तर सार्थक। परिणामत: अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के ग्रामीण प्रशिक्षुओं में अभिप्रेरणा स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के प्रशिक्षुओं की अपेक्षा उच्च है। अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के ग्रामीण प्रशिक्षुओं की अभिप्रेरणा उच्च पाये जाने का कारण वहाँ का शैक्षिक वातावरण उच्च होने के साथ-साथ सुविधाओं की उपलब्धता, उच्च स्तरीय शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षित किया जाना, नवीनता एवं क्रियात्मकता पर अधिक जोर दिया जाना, शिक्षकों द्वारा नवीन शिक्षण–विधियों का प्रयोग, वहाँ के शिक्षकों को समय-समय पर प्रशिक्षण प्रदान किया जाना आदि।

निष्कर्ष- प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए–

- अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में पुरुष प्रशिक्षुओं में अभिप्रेरणा स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के पुरुष प्रशिक्षुओं की अपेक्षा उच्च है।
- अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान की महिला प्रशिक्षुओं में अभिप्रेरणा स्ववित्तपोषित

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के प्रशिक्षुओं की अपेक्षा उच्च है।

- अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के शहरी प्रशिक्षुओं में अभिप्रेरणा स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के प्रशिक्षुओं की अपेक्षा उच्च है।
- अनुदानित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के ग्रामीण प्रशिक्षुओं में अभिप्रेरणा स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान के प्रशिक्षुओं की अपेक्षा उच्च है।

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में स्ववित्तपोषित शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में जहाँ पैसा उगाई की प्रक्रिया को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाना, वहीं प्रशिक्षुओं के प्रशिक्षण हेतु संसाधनों की कमी, उच्च स्तरीय एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षकों की कमी के साथ प्रशिक्षुओं के प्रशिक्षण में लगातार उपस्थित न होना, साथ ही; केवल डिग्री हासिल करना– इन प्रशिक्षुओं का लक्ष्य इनके अभिप्रेरणा में गिरावट का कारण बनता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

- यासिन अली एवं अन्य (२०१६)-टीचर मोटिवेशन एण्ड स्कूल परफार्मेन्स, द मेडिएटिंग इफेक्ट ऑफ जॉब सैटिस्फैक्शन : सर्वे फ्राम सेकेण्डरी स्कूल्स इन मोगादिशु, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एण्ड सोशल साइंस, वॉ. ३, नं. १, पृ. २४-३८
- राहुल उठवाल, (२०१७)– एक शिक्षक की प्रेरणा : उत्प्रेरक के रूप में चुनौतियाँ एवं समाधान, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ हिन्दी रिसर्च, वॉल्यूम-३, इश्शू-५, पृ. ०६-०८
- इलीफेलेट (२०१६)– ए कम्प्रेटिव स्टडी ऑफ टीचर्स मोटिवेशन ऑन वर्क परफार्मेन्स इन सेलेक्टेड पब्लिक एण्ड प्राइवेट सेकेण्डरी स्कूल्स इन किलमंजारो रीजन, तंजानिया, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन एण्ड रिसर्च, वॉ. ४, नं. ६, पृ. ५८३-६००
- काला, पी. चन्द्रा एवं पी. शिरलिन, (२०१७)– ए स्टडी ऑन एचिवमेण्ट मोटिवेशन एण्ड सोशियो-इकोनॉमिक स्टेट्स ऑफ कॉलेज स्टूडेण्ट्स इन तिरुनेवल्ली डिस्ट्रिक, इण्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च ग्रन्थालय, वॉल्यूम-५, इश्शू-३, पृ. ५७-६४
- लीलेश गुप्ता (२०१६)– तकनीकी शिक्षा संस्थानों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की अभिप्रेरणा का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव : एक अध्ययन, इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ मैनेजमेण्ट साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, वॉल्यूम-७, इश्शू-६, पृ. ८४-८७
- ज्योति महावर एवं अलका पारीक : (२०१८)– शिक्षकों की नेतृत्वशीलता का विद्यार्थियों के अभिप्रेरित व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, इन्सपीरा-जर्नल ऑफ माडर्न मैनेजमेण्ट एण्ड इण्टरप्रीन्योरशिप, वॉल्यूम-०८, नं. ०४, पृ. ५५२-५५४
- योहन्नेस (२०१४)– मोटिवेशनल फैक्टर्स दैट इफेक्ट टीचर्स वर्क परफार्मेन्स इन सेकेण्डरी स्कूल्स ऑफ जिजिगा सिटी, सोमाली रिजिनल स्टेट, इथीयोपीया, डिपार्टमेण्ट ऑफ एजुकेशनल प्लानिंग एण्ड मैनेजमेण्ट, स्कूल ऑफ ग्रेजुएट स्टडीज, हरमाया यूनिवर्सिटी।
- रियडी सलमेट (२०१५)– इफेक्ट ऑफ वर्क मोटिवेशन, वर्क स्ट्रेस एण्ड जॉब सैटिस्फैक्शन ऑफ टीचर्स परफार्मेन्स एट सीनियर हाईस्कूल थॉटआउट द स्टेट सेन्ट्रल तापानुलि, सुमात्रा, जर्नल ऑफ ह्युमिनिटीज एण्ड सोशल साइंस, वॉ. २०, इश्शू-२, पृ. ५२-५७

●

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना एवं ग्रामीण विकास : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

सिद्धार्थ अविद्रा*, प्रो. दिवाकर सिंह राजपूत**

सारांश- भारत देश की अधिकतम जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, इसलिए कहा जा सकता है कि भारत गाँवों का देश है। भारत देश में गाँव के लोग कृषि एवं पशुपालन के साथ-साथ मजदूरी का कार्य भी करते हैं। परन्तु कृषि में अधिकतम रुचि होने के कारण ही भारत एक कृषि प्रधान देश की श्रेणी में आता है। गाँव की प्राकृतिक एवं ताजी हवा यहाँ के वातावरण को स्वस्थ एवं प्रदूषणरहित बनाती है। देश के सर्वांगीण विकास के लिए यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम यहाँ के गाँवों का विकास किया जाए। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास हेतु कई योजनाओं को सरकार द्वारा प्रारम्भ किया गया है। सरकार द्वारा कई रोजगार कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक व्यवस्था को सुधारने से यहाँ की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में सुधार सम्भव है। हमारे देश के युवाओं को रोजगार दिलाने के लिए 'प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना' को प्रारम्भ किया गया है, जिससे कि युवा अपने अन्दर छिपे कौशल को विकसित कर अपने लिए रोजगार के अवसर पैदा कर सकते हैं तथा आर्थिक एवं सामाजिक विकास की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

सूचक शब्द– ग्रामीण विकास, कौशल विकास, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना, रोजगार, कोविड-१९।

प्रस्तावना– राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के अनुसार, भारत देश गाँवों में बसने वाला देश है और ग्रामीण विकास से हमारे देश का परस्पर विकास हो सकता है। सन् १९५१ से हमारे देश में आर्थिक नियोजन का समय प्रारम्भ हुआ। कई पंचवर्षीय योजनाओं में भी ग्रामीण विकास से सम्बन्धित वित्तीय कार्यक्रम अपनाये गये हैं। इन समस्त कार्यक्रमों का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार को बढ़ावा देना है एवं गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले परिवारों की आधारभूत जरूरतों को पूरा करना है। इसके लिए सरकार द्वारा विभिन्न प्रयास किये जा रहे हैं, जिसके अन्तर्गत लघु उद्योग, लघु कृषक, दस्तकार, भूमिहीन कृषक, शिक्षित बेरोजगारों के लिए रोजगार एवं योजनाओं को प्रस्तुत किया गया है।[१] ऐसी ही एक योजना 'प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना' है, जिसका उद्देश्य समस्त भारत देश के युवाओं के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करना है। हमारे देश के युवाओं में कई तरह के कौशल छिपे हुये हैं। इन्हीं कौशल को बाहर निकालने एवं कौशल को और बेहतर बनाने के लिए माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के द्वारा दिनांक १५ जुलाई, २०१५ को 'प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना' को प्रारम्भ किया गया, जिसका उद्देश्य बेरोजगार युवाओं को ट्रैनिंग के माध्यम से किसी कार्यक्षेत्र में निपुण कराना है, जिससे पूरे भारत देश में कहीं भी उन्हें रोजगार प्राप्त हो सके। वर्तमान में देश के युवाओं को सशक्त बनाने और भारत को दुनिया की कौशल राजधानी के रूप में बनाने के लिए 'स्किल इण्डिया मिशन' की यात्रा को निरंतर जारी रखने के उद्देश्य से कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय (MSDE) ने अपनी प्रमुख

* शोध छात्र– समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश
** प्रोफेसर– समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश

योजना– प्रधानमंत्री कौशल विकास और उद्यमिता योजना का तीसरा चरण १५ जनवरी, २०२१ को शुरू किया। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना ३.० पूरे देश में उद्योग की जरूरतों को पूरा करने, बाजार की माँगों को पूरा करने, सेवाओं में कौशल प्रदान करने और नए जमाने की नौकरी की भूमिकाओं में कौशल विकास को प्रोत्साहित करने में सहयोग करेगा और बढ़ावा देगा। कोविड-१९ के आगमन के साथ प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना १.० एवं २.० में मिली सीख को ध्यान में रखते हुए, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना ३.० को राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों और जिलों से अधिक जिम्मेदारियों और समर्थन के साथ अधिक विकेन्द्रीकृत संरचना में लागू किया गया है। राज्य कौशल विकास मिशन (एस.एस.डी.एम.) के मार्गदर्शन में जिला कौशल समितियाँ (डी.एस.सी.) जिला स्तर पर कौशल अन्तर को दूर करने और माँग का आकलन करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएँगी। नयी योजना आत्मनिर्भर भारत की महत्त्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने का कार्य करेगी।[२] वर्तमान समय में विकास की गति को बढ़ाने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों का विकास बहुत आवश्यक है। महात्मा गाँधी ने कहा था– अन्त्योदय सर्वोदय अर्थात् पंक्ति के अन्तिम व्यक्ति का उदय कर दिया जाये, जिससे अग्रिम एवं मध्य का उदय स्वयं ही हो जायेगा। इसीलिए देश के विकास में ग्रामीण क्षेत्र का विकास अतिमहत्त्व रखता है।[३]

साहित्य-समीक्षा

● महेन्द्र शास्त्री (२०१७) द्वारा, लघु एवं कुटीर उद्योग के माध्यम से अधिकतर व्यक्तियों की बेरोजगारी को समाप्त किया जा सकता है। इस हेतु कम राशि एवं स्थान भी कम चाहिए होता है। इन उद्योगों को स्थापित करके बहुत से लोगों को रोजगार प्राप्त कराया जा सकता है, क्योंकि आर्थिक विकास की गति को और तेज करने हेतु बेरोजगारी की दर को कम एवं समाप्त करना आवश्यक है। निरन्तर बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या विश्वव्यापी समस्या के रूप में हमारे समक्ष खड़ी हो चुकी है, जिसके कारण आर्थिक एवं सामाजिक रूप से व्यक्ति टूटता जा रहा है। अगर बेरोजगारी को कम करने हेतु उचित कदम नहीं उठाए गए, तो अर्थव्यवस्था पर भारी नुकसान हो सकता है एवं देश के युवा अन्य आपराधिक कार्यों में संलग्न हो सकते हैं। बेरोजगारी को समाप्त करने हेतु नयी नीतियों को लागू करके उन पर गम्भीरता से कार्य किया जाना आवश्यक है।[४]

● जनक सिंह मीणा (२०१२) के द्वारा, भारत देश की अधिकतर आबादी गाँव में निवास करती है, इस कारण भारत देश को गाँव का देश भी कहा जाता है। किसी भी देश का पूर्ण विकास तभी सम्भव है, जब उसके गाँव का विकास हो जाए। ग्रामीण विकास का मुख्य उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विकास है। ग्रामीण क्षेत्र में पर्याप्त संसाधन ना होने के कारण इनका पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। परन्तु सरकार का ध्यान गाँव की ओर विशेष रूप से है, इसी कारण ग्रामीण विकास हेतु योजनाएँ निरन्तर लागू होती जा रही हैं।[५]

● आनंद सिंह प्रकाश (२००७) के द्वारा, ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी बड़े पैमाने पर बेरोजगारी और कम रोजगार की व्यापकता से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई है। आर्थिक ढाँचे का सृजन तथा लगातार रोजगार एवं विकास के लिए निर्माण व कौशल योजना का उद्देश्य काफी महत्त्वपूर्ण है। कौशल को विकसित करने हेतु किसी विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता-कार्यक्रम के माध्यम से बेरोजगार युवाओं को प्रशिक्षण प्रदान किया जा सकता है, जिससे वे अपने लिए उचित रोजगार प्राप्त कर सकें।[६]

● गुफरान खान (२०१३) के द्वारा, सिर्फ शिक्षा के माध्यम से युवाओं के भविष्य को सँवारना काफी मुश्किल है। अत: यह आवश्यक है कि उनका सांस्कृतिक विकास किया जाए, जिससे वह आज के वातावरण के साथ तालमेल बना सकें।[७]

● रितिका (२०१६)– लेखक ने अपने शोध-लेख में कुशल आधारित शिक्षा के महत्त्व पर चर्चा की। कभी-कभी यह देखा जाता है कि उच्च योग्यता वाले लोग बेरोजगार रह जाते हैं। वैश्वीकरण की वर्तमान परिस्थितियों में रोजगार पाने के लिए शिक्षा और कौशल– दोनों की आवश्यकता है।[८]

● गणेश (२०१७) ने स्मार्ट इण्डिया के लिए यह कहा है कि एक कुशल राष्ट्र के रूप में प्रतिस्पर्धी परिधि हासिल करने के लिए भारत को एक उद्योग-तैयार और साथ ही नौकरी के लिए तैयार कार्यबल की आवश्यकता है।[९]

अध्ययन के उद्देश्य–

१. ग्रामीण विकास में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की उपलब्धियों को ज्ञात करना।
२. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना से ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ते रोजगार के अवसरों के बारे में जानना।
३. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के माध्यम से ग्रामीण विकास के युवाओं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार को ज्ञात करना।

अध्ययन-क्षेत्र– प्रस्तुत अध्ययन में मध्यप्रदेश के सागर जिले के सागर तहसील का चयन किया गया है। सागर जिला मध्यप्रदेश के उत्तर मध्य क्षेत्र में स्थित है। ब्रिटिश काल के दौरान इसे सागर के रूप में लिखा गया था। यह २३ डिग्री १० और २४ डिग्री २७ उत्तरी अक्षांश के बीच और ७८ डिग्री और ७९ डिग्री २१ पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। यह जिला देश के बिलकुल मध्य हृदय स्थल में स्थित है, जिसके अन्तर्गत वर्तमान में १२ तहसील– सागर, बीना, खुरई, मालथोन, बण्डा, शाहगढ़, राहतगढ़, जैसीनगर, रेहली, देवरी, केसली, गढ़ाकोटा एवं १९०२ गाँव शामिल हैं। २०११ की जनसंख्या के अनुसार, सागर जिले की जनसंख्या २३,७८,४५८ है, जिसके ग्रामीण क्षेत्र की जनसंख्या १६,६९,६६२ एवं शहरी क्षेत्र की जनसंख्या ७,०८,७९६ है। शहरी क्षेत्र की तुलना में ग्रामीण क्षेत्र की जनसंख्या अधिक है। सागर जिले की लोकप्रिय भाषा बुंदेलखण्डी एवं हिन्दी है। जिले में पर्यटन के लिए मुख्य रूप से गढ़पहरा मन्दिर, रानगिर, नौरादेही, एरन, राहतगढ़, जलप्रपात प्रसिद्ध हैं।[१०]

अध्ययन-पद्धति– प्रस्तुत शोध-पत्र में ग्रामीण विकास में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की भूमिका को जानने का प्रयास किया गया है। अध्ययन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए मध्यप्रदेश के सागर तहसील में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के अन्तर्गत संचालित प्रशिक्षण केन्द्रों में से एक्सेलस लर्निंग सॉल्यूशंस प्रा. लिमिटेड का चयन किया गया है, जिससे प्रशिक्षण प्राप्तकर्ताओं में से ४० व्यक्तियों का चयन निदर्शन की लाटरी पद्धति के माध्यम से किया गया है, जिसमें २६ पुरुष एवं १४ महिलाएँ शामिल हैं। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु उपकरण के रूप में साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग एवं द्वितीयक तथ्यों के संकलन हेतु पुस्तक, समाचार-पत्र, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की ऑफिसियल वेबसाईट, इण्टरनेट का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में प्राधमिक विधि द्वारा ४० लोगों का साक्षात्कार लिया गया है, जिसमें प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के अन्तर्गत संचालित प्रशिक्षण केन्द्र से प्रशिक्षण प्राप्त

उत्तरदाताओं का साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राथमिक तथ्यों का संकलन किया गया है एवं सारणीयन द्वारा प्राथमिक तथ्यों का वर्गीकरण किया गया है।

तालिका क्रमांक ०१ - आयु

क्र.	आयु	संख्या	प्रतिशत
१.	२०-२१	१४	३५%
२.	२२-२३	८	२०%
३.	२४-२५	१२	३०%
४.	२६-२७	६	१५%
	कुल	४०	१००%

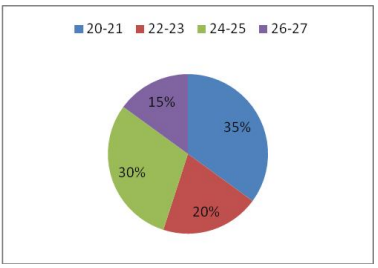

प्रस्तुत अध्ययन में ट्रेनिंग सेण्टर में २० से २१ आयु वर्ग के १४, २२ से २३ आयु वर्ग के ८, २४ से २५ आयु वर्ग के १२ एवं २६ से २७ आयु वर्ग के ६ व्यक्ति शामिल हैं।

तालिका क्रमांक ०२ - लिंग

क्र.	आयु	संख्या	प्रतिशत
१.	पुरुष	२६	६५%
२.	महिलाएँ	१४	३५%
	कुल	४०	१००%

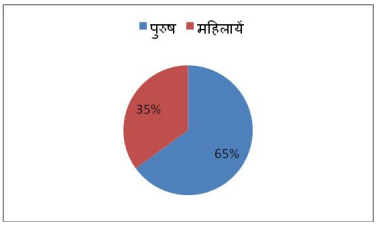

प्रस्तुत अध्ययन में २६ पुरुष एवं १४ महिलाएँ शामिल हैं।

तालिका क्रमांक ०३ - शिक्षा

क्र.	शिक्षा	संख्या	प्रतिशत
१.	८वीं	६	१५%
२.	१०वीं	१२	३०%
३.	१२ वीं	१४	३५%
४.	स्नातक	८	२०%
	कुल	४०	१००%

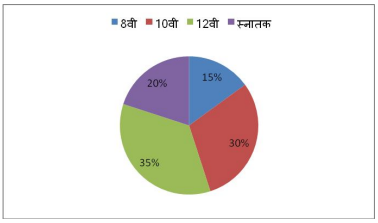

प्रस्तुत शोध-पत्र में लिए गए आँकड़ों के अनुसार ६ व्यक्ति आठवीं तक शिक्षित हैं। १२ व्यक्ति दसवीं तक शिक्षित हैं। १४ व्यक्ति बारहवीं तक शिक्षित हैं एवं ८ व्यक्ति स्नातक तक शिक्षा ग्रहण कर चुके हैं।

तालिका क्रमांक ०४ - प्रशिक्षण

क्र.	प्रशिक्षण का क्षेत्र	संख्या	प्रतिशत
१.	लोजिस्टिक्स (वेयर हाउस पैकर)	१६	४०%
२.	इलेक्ट्रॉनिक एवं हार्डवेयर	६	१५%
३.	होम एप्लायंस	८	२०%
४.	लोजिस्टिक्स (कोरियर सर्विस)	१०	२५%
	कुल	४०	१००%

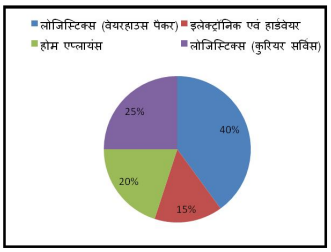

प्रस्तुत शोध-पत्र में प्राप्त आँकड़ों के अनुसार, लॉजिस्टिक (वेयर हाउस पैकर) के क्षेत्र में कुल १६ व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं, जिसमें १४ महिलाएँ एवं २ पुरुष सम्मिलित हैं। इसके अलावा; इलेक्ट्रॉनिक एवं हार्डवेयर के क्षेत्र में कुल ६ व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं, होम अप्लायंस के क्षेत्र में कुल ८ व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं एवं लॉजिस्टिक (कोरियर) के क्षेत्र में कुल १० व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

तालिका क्रमांक ०५ - सामाजिक एवं आर्थिक परिदृश्य में सुधार

क्रं	प्रशिक्षण का क्षेत्र	हाँ	नहीं	हाँ बहुत ज्यादा	हाँ थोड़ा	कुल
1.	लोजिस्टिक्स (वेयर हाउस पैकर)	8	0	5	3	16
2.	इलेक्ट्रॉनिक एवं हार्डवेयर	4	0	1	1	6
3.	होम एप्लायंस	6	0	0	2	8
4.	लोजिस्टिक्स (कुरियर सर्विस)	7	0	1	2	10

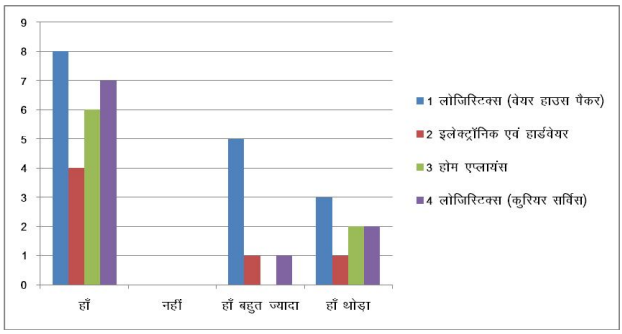

तालिका क्रमांक ०५ के अनुसार, प्रस्तुत शोध-पत्र में सामाजिक एवं आर्थिक परिदृश्य को देखा गया है एवं यह पाया गया है कि योजना के लाभ से रोजगार की प्राप्ति हुई है, जिससे उत्तरदाताओं के व्यक्तित्व में सकारात्मक परिवर्तन आये हैं।

तालिका क्रमांक ०६ - प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना की उपलब्धि

	India	Madhya Pradesh	Sagar
Enrolled Candidate	1,42,65,651	9,26,831	39,176
Trained Candidate	1,37,24,195	8,93,628	38,226
Assessed Candidate	1,24,50,125	8,20,788	35,737
Certified Candidate	1,16,21,180	7,02641	31,040
Reported Placed	24,50,940	2,19,227	12,455

वर्तमान में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना का तीसरा चरण (३.०) चल रहा है, जिसमें इस योजना की ऑफिशियल वेबसाईट के अनुसार, दिनांक १९/०२/२०२३ तक के आँकड़े तालिका क्रमांक ०६ में दर्शाये गए हैं।[११]

परिणाम एवं निष्कर्ष– तालिका क्रमांक ०१ के अनुसार २०-२१ आयु वर्ग के १४, २२-२३ आयु वर्ग के ८,२४-२५ आयु वर्ग के १२, एवं २६-२७ आयु वर्ग के ६ व्यक्ति शामिल हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि हमारे देश का युवा रोजगार-प्राप्ति के लिए तत्पर है। तालिका क्रमांक ०२ के अनुसार, उत्तरदाताओं में २६ पुरुष एवं १४ महिलाएँ सम्मिलित हैं। तालिका क्रमांक ०३ के अनुसार, उत्तरदाताओं में आठवीं तक शिक्षा ग्रहण करने वाले ६, दसवीं तक शिक्षा ग्रहण करने वाले १२, बारहवीं तक शिक्षा ग्रहण करने वाले १४ एवं स्नातक तक शिक्षा ग्रहण करने वाले ८ व्यक्ति शामिल हैं। तालिका क्रमांक ०४ के अनुसार, लॉजिस्टिक

वेयर हाउस पैकर के क्षेत्र में १६, इलेक्ट्रॉनिक एवं हार्डवेयर के क्षेत्र में ६, होम एप्लायंस में ८ एवं लॉजिस्टिक कोरियर सर्विस में कुल १० व्यक्ति प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। तालिका क्रमांक ०५ प्रशिक्षण प्राप्तकर्ताओं की जीवनशैली में भूतकाल की अपेक्षा वर्तमान में हुए परिवर्तन एवं सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन को प्रदर्शित करती है। समस्त तालिकाओं के मूल्यांकन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि इस योजना का लाभ युवा पीढ़ी को प्राप्त हो रहा है।

ग्रामीण विकास हेतु सरकार द्वारा बहुत सी योजनाएँ बनायी गयी हैं, जिससे कि यहाँ के व्यक्तियों को आर्थिक रूप से मजबूत किया जा सके। वर्तमान की युवा पीढ़ी को रोजगार के अवसरों में बढ़ावा देने में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना अपनी भूमिका निभा रही है। कौशल विकास और उद्यमिता के लिए राष्ट्रीय नीति ने अनुमान लगाया है कि २०२० में भारत में जनसंख्या की औसत आयु २९ वर्ष होगी। अगले २० वर्षों में, भारत में श्रम-शक्ति में ३२ प्रतिशत की वृद्धि होगी, जिसे आवश्यक कौशल के साथ अपने कार्यबल की पेशकश करने की आवश्यकता है, ताकि उन्हें हमारे देश के आर्थिक विकास में योगदान करने में मदद मिल सके।[१२]

योजना की ऑफिशियल वेबसाईट से लिए आँकड़ों को देखने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि यह योजना कितनी कारगर साबित हो रही है। प्रस्तुत शोध-पत्र में संकलित आँकड़ों के मूल्यांकन एवं अवलोकन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्र के युवाओं की मानसिकता रोजगार हेतु कितनी विकसित है। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना को सफल बनाने एवं देश की अर्थव्यवस्था में अपना सहयोग प्रदान करने के लिए ग्रामीण क्षेत्र का युवा तत्पर है। अध्ययन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए यह ज्ञात होता है कि प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के अन्तर्गत संचालित प्रशिक्षण केन्द्रों से प्रशिक्षण प्राप्त करके ग्रामीण युवा भी रोजगार प्राप्त कर रहे हैं, जिससे इनमें सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन हुए हैं, जो कि समाज में इनकी परिस्थिति में सुधार लाते हैं। अध्ययन के पश्चात् यह भी ज्ञात होता है कि इस योजना के माध्यम से बेरोजगारी की दर को कम किया जा सकता है। यह देश के लिए एक बड़ी उपलब्धि है। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के अन्तर्गत संचालित केन्द्रों में महिलाएँ भी अपनी भूमिका निभा रही हैं, जो कि सशक्त नारी की परिभाषा को पूर्ण करती है। इस योजना की उपलब्धियों के बारे में बात रखी जाए, तो यह कहा जा सकता है कि इस योजना से बेरोजगारी की दर में कमी आयी है।

कोविड-१९ महामारी ने हमारे देश की आर्थिक नींव को कमजोर किया है और भूखमरी तथा गरीबी जैसी समस्या को हमारे सामने लाकर खड़ा कर दिया है। ऐसे में; गरीब परिवारों के हालात ज्यादा बदतर देखने को मिले हैं। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के अन्तर्गत सुचारु रूप से संचालित केन्द्रों पर भी कोविड-१९ महामारी के दौरान लगाए गए लॉकडाउन का प्रभाव पड़ा है, जिससे वहाँ पर प्रशिक्षण प्राप्तकर्ताओं को रोजगार-प्राप्ति में कठिनाई और इंतजार का सामना करना पड़ा है। योजना के अन्तर्गत जिन व्यक्तिओं ने प्रशिक्षण-प्राप्ति के पश्च्यात् रोजगार की प्राप्ति की, उन्हें भी लॉकडाउन के अन्तर्गत अपने कार्यों को बंद रखना पड़ा, जिससे कि वे आर्थिक रूप से कमजोर होते गए। परन्तु कुछ समय पश्चात् ऑनलाइन डिलिवरी शुरू की गयी, जिससे लॉजिस्टिक एवं कोरियर के क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति में धीरे-धीरे सुधार आने शुरू हुए।

प्रस्तुत अध्ययन भारत में बेरोजगारी की गम्भीर समस्या को दूर करने के लिए कुछ

बिन्दुओं का सुझाव और सिफारिश भी करता है और कौशल भारत के युवाओं के शारीरिक और मानसिक विकास में सुधार की एक पहल भी करता है, जिससे कि भारत में बेरोजगारी की समस्या को कम किया जा सके।

सन्दर्भ-सूची

१. https://rjhssonline.com/HTMLPaper.aspx?Journal=Research%20Journal%20of%20Humanities%2 0and%20Social%20Sciences;PID=2013-4-1-2214/11/2022,10:00pm

२. https://www.pmkvyofficial.org/about-pmkvy 15/11/2022,10:30pm

३. https://egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/63272/2/Unit-12.pdf 15/11/2022,11:10pm

४. महेन्द्र शास्त्री (२०१७)– हमारे भारतीय गाँव, जयपुर मेसर्स यूनिवर्सिटी बुक हाउस (प्रा.) लि., पृ. १३९-१४३

५. जनक सिंह मीणा (२०१२)– भारत में ग्रामीण विकास प्रशासन, जयपुर आर. बी. एस. ए. पब्लिशर्स, पृ. ७८-९०

६. आनंद प्रकाश सिंह (२००७)– सुनिश्चित रोजगार संवर्धन एवं ग्रामीण विकास, अमन प्रकाशन, कटरा, सागर, पृ. २१-२३

७. गुफरान खान (२०१३)– सागर जिले में ग्रामीण विकास अभिकरण के अन्तर्गत संचालित ग्रामीण विकास योजनाओं का अध्ययन, प्रांजल प्रकाशन, सागर

८. रितिका (२०१६)– स्किल बेस्ड लर्निंग नेसेसिटी फॉर एंप्लॉयबिलिटी इम्पीरियल जर्नल ऑफ इण्टरडिसिप्लिनरी रिसर्च (आईजेआईआर), वॉल्यूम-२, अंक-४, आईएसएसएन २४५४-१३६२

९. ए. गणेश और एच.एस. नागप्पा गौड़ा (२०१७)– स्मार्ट इण्डिया के लिए कौशल बनाम रोजगार की खाई को पाटना परियोजना प्रबंधन राष्ट्रीय सम्मेलन, १५-१७ सितंबर, २०१७, चेन्नई

१०. https://sagar.nic.in/en/tehsil/ 21/11/2022,08:30pm

११. https://www.pmkvyofficial.org/pmkvy2/Dashboard.php 23/11/2022,09:10pm

१२. https://www.drnishikantjha.com/papersCollection/A%20STUDY%20ON%20PRADHAN%20MANTRI%20KAUSHAL%20YOJANA%20.pdf22/11/2022,11:30pm

●

वर्तमान समय में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं का
उत्तराखण्ड़ की लोक संस्कृति के प्रति सम्मान एवं समर्पण
एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

आशीष*, डॉ. अलका सुरी**

सार संक्षेप– यह लघु शोध उत्तराखण्ड राज्य के देहरादून जिले में किया गया है। शोध में उत्तराखण्ड राज्य के गढ़वाल मण्डल (पौड़ी गढ़वाल, देहरादून, चमोली, उत्तरकाशी, टिहरी, रूद्रप्रयाग, हरिद्वार) के छात्र-छात्राएँ देहरादून जिले के चार प्रमुख महाविद्यालयों में अध्ययनरत हैं, जिन पर यह सर्वेक्षण किया गया है। शोध में छात्र-छात्राओं का उत्तराखण्ड की संस्कृति (गढ़वाल मण्डल) के प्रति उनका सम्मान एवं समर्पण तथा उत्तराखण्ड में पलायन को रोकने के लिए तथा रोजगार निर्मित करने के लिए उत्तराखण्ड की संस्कृति के प्रचार-प्रसार तथा उत्तराखण्ड के सांस्कृतिक तत्त्व, जैसे– चित्रकला, लोकचित्र, शिल्पकला, लोकगीत, संगीतकला, मेले, पर्व, प्रमुख यात्राओं, परिधान एवं प्रमुख आभूषणों के प्रति उनकी विचारधाराओं तथा दैनिक जीवन में उनकी प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया गया है। शोध-अध्ययन में प्राथमिक सर्वेक्षण के आधार पर प्राप्त सूचनाएँ एवं आँकड़ें एकत्रित कर, उनका प्रयोग करते हुए उत्तराखण्ड की संस्कृति एवं सभ्यता का उत्तराखण्ड के नवयुवकों पर पड़ने वाले सकारात्मक परिवर्तनों का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द– उत्तराखण्ड, संस्कृति, सभ्यता, सांस्कृतिक तत्त्व, रोजगार।

प्रस्तावना : उत्तराखण्ड का इतिहास– ऋग्वेद में उत्तराखण्ड का प्रथम उल्लेख प्राप्त होता है। पुरातात्विक साक्ष्य की कमी के कारण आद्य इतिहास के प्रमुख स्रोत धार्मिक ग्रन्थ रहे हैं। इसी कारण, इस काल को पौराणिक काल भी कहा जाता है। इस युग के लोगों के लौह-ताम्र धातुओं, कृषि, पशुपालन तथा ग्रामीण-नगरीय सभ्यता से विदित होने के साक्ष्य मिले हैं। उत्तराखण्ड राज्य का उल्लेख उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों, रामायण तथा महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों में इस क्षेत्र को 'पूर्वभूमि, ऋषिभूमि तथा पवित्र क्षेत्र' कहा गया है। स्कन्द पुराण में भी पाँच हिमालयी खण्डों (नेपाल, मानसखण्ड, केदारखण्ड, जालधंर एवं कश्मीर) का उल्लेख है, जिनमें से दो खण्ड़ों– 'मानसखण्ड और केदारखण्ड'– का सम्बन्ध उत्तराखण्ड राज्य से है। इन्हीं मानसखण्ड और केदारखण्ड के संयुक्त क्षेत्र को उत्तराखण्ड, ब्रह्मसुर एवं खसदेश नामों से जाना जाता है। वर्तमान में उत्तराखण्ड राज्य को दो मण्डलों में विभाजित किया गया है– **(क) गढ़वाल क्षेत्र–** गढ़वाल क्षेत्र को बद्रिकाश्रम क्षेत्र, तपोभूमि, स्वर्गभूमि (महाभारत व पुराणों में) एवं केदारखण्ड आदि नामों से जाना जाता है। लेकिन १५१५ ई. के आस-पास इस क्षेत्र के ५२ गढ़ों (पहाड़ी किलों) को पवार शासक अजयपाल द्वारा विजित कर लेने के कारण 'गढ़वाल' नाम प्रयुक्त हुआ। ब्रह्मा के मानस पुत्रों– दक्ष, मरीचि, पुलस्त्य, पुलह और अत्रि का निवास-स्थान गढ़वाल ही था। देवप्रयाग गढ़वाल में भगवान राम का एक मन्दिर है और ऐसी मान्यता है कि भगवान राम ने अन्तिम समय में यहाँ

* प्रवक्ता– अर्थशास्त्र, राजकीय इण्टर कॉलेज, बिसहालड पाबू, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड
** एसोसिएट प्रोफेसर– अर्थशास्त्र, डी.बी.एस.पी.जी. कॉलेज, देहरादून

पर तपस्या की थी। टिहरी गढ़वाल जिले में लक्ष्मण जी ने जिस स्थान पर तपस्या की थी, उसे 'तपोवन' कहा जाता है। महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' की रचना मालिनी नदी के तट पर स्थित इसी कण्वाश्रम में ही की थी। वर्तमान में इस स्थान को 'चौकाघाट' कहा जाता है। **(ख) कुमाऊँ क्षेत्र-** पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार चम्पावत के पास स्थित कच्छप की पीठ की आकृति वाले कांतेश्वर पर्वत (वर्तमान नाम कानदेव) पर विष्णु भगवान का कूर्मा या कच्छपावतार हुआ था। कालान्तर में इस पर्वत को 'मानसखण्ड' में कुर्मांचल (संस्कृत शब्द) कहा जाने लगा। कुर्मांचल शब्द 'प्राकृत' में कुमूँ और हिन्दी में कुमाऊँ' हो गया। कुमाऊँ का सबसे अधिक उल्लेख स्कन्दपुराण के मानसखण्ड में मिलता है।

उत्तराखण्ड की वर्तमान संस्कृति– संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त और व्यापक गुणों के समग्र स्वरूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने-समझने या कार्य करने के स्वरूप में अन्तर्निहित होती है। अंग्रेजी में संस्कृति को 'कल्चर' कहा जाता है, जो लैटिन भाषा के 'कल्ट' या 'कल्टस' से लिया गया है, जिसका अर्थ है– जोतना, विकसित करना व परिष्कृत करना या पूजा करना। संस्कृति का शब्दार्थ है– 'उत्तम या सुधरी हुई स्थिति'। प्रत्येक जीवन-पद्धति, रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, नवीन अनुसंधान और आविष्कार, जिससे मनुष्य पशुओं और जंगलियों के दर्जे से ऊँचा उठता है तथा सभ्य बनता है, सभ्यता-संस्कृति का अंग है। सभ्यता से मनुष्य के भौतिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है, जबकि संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है। संस्कृति के अन्तर्गत कला, संगीत, साहित्य, वास्तुविज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म और विज्ञान, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, पर्व आदि आते हैं।

संस्कृति व सभ्यता- सभ्यता का अर्थ है– 'जीने के बेहतर तरीके और कभी-कभी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने समक्ष प्रकृति को भी झुका देना।' 'संस्कृति' आन्तरिक अनुभूति से सम्बद्ध है, जिसमें मन और हृदय की पवित्रता निहित है। इसमें कला, विज्ञान, संगीत, नृत्य और मानव-जीवन की उच्चतर उपलब्धियाँ सम्मिलित हैं, जिन्हें सांस्कृतिक गतिविधियाँ कहा जाता है। संस्कृति साध्य है, तो सभ्यता साधन। संस्कृति सभ्यता की उपयोगिता के मूल्यांकन के लिए प्रतिमान उपस्थित करती है।

मानव-जीवन में संस्कृति का महत्त्व– संस्कृति जीवन के निकट से जुड़ी है। यह वह गुण है, जो व्यक्ति को मनुष्य बनाता है। संस्कृति परम्पराओं से, विश्वासों से, जीवन की शैली से, आध्यात्मिक पक्ष से, भौतिक पक्ष से निरन्तर जुड़ी है। यह हमें जीवन का अर्थ, जीवन जीने का तरीका सिखाती है। संस्कृति का एक मौलिक तत्त्व है– धार्मिक विश्वास और उसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति। सत्य, शिव और सुन्दर– ये तीन शाश्वत मूल्य हैं, जो संस्कृति से निकट से जुड़े हैं। यह संस्कृति ही है, जो 'दर्शन' और 'धर्म' के माध्यम से सत्य को बताती है। संस्कृति सामाजिक अन्त:क्रियाओं एवं सामाजिक व्यवहारों के उत्प्रेरक प्रतिमानों का समुच्चय है। इस समुच्चय में ज्ञान, विज्ञान, कला, आस्था, नैतिक मूल्य एवं प्रथाएँ समाविष्ट होती हैं। संस्कृति ही मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के स्वरूप का निर्माण, निर्देशन, नियमन और नियन्त्रण करती है।

उत्तराखण्ड के सांस्कृतिक तत्त्व– मानव-समूह के ऐतिहासिक विकास-क्रम में जीवन-यापन की जो विशिष्ट शैली विकसित होती है, वही उस समूह की संस्कृति कहलाती है। प्रत्येक संस्कृति के अपने विशिष्ट सांस्कृतिक तत्त्व (कला, धर्म, विश्वास, आचार-विचार, त्योहार,

पर्व, उत्सव आदि होते हैं।

चित्रकला– उत्तराखण्ड राज्य के विभिन्न जिलों में सबसे प्राचीनतम नमूने शैल चित्र के रूप में लाखू, ग्वारख्या, किमनी गाँव, ल्वेथा, हुडली, फल सीमा आदि गुफाओं में देखने को मिलते हैं। चमोली जिले में, ग्वारख्या गुफा में अनेक पशुओं के चित्र तथा किमनी गाँव में शैल चित्र, हथियार एवं पशुओं के चित्र मिले हैं।

लोकचित्र– उत्तराखण्ड राज्य में चित्रकला की गढ़वाल शैली के अलावा राज्य में विभिन्न मांगलिक अवसरों पर ऐंपण, ज्यूंति मातृका, प्रकीर्ण, पौ, डिकारे, पट्ट आदि लोकचित्र बनाने की परम्परा है। ऐंपण से तात्पर्य लीपने या सजावट करने से है। वह किसी मांगलिक या धार्मिक अवसर पर देहरी या आँगन में विस्तार (चावल के आटे का घोल) तथा लाल या सफेद मिट्टी से सुन्दर चित्रों के रूप में बनाई जाती है। इनमें मुख्यत: सूर्य, चंद्र, स्वास्तिक, शंख, घण्टा, विविध पुष्प, बेल, सर्प आदि की आकृतियाँ बनाई जाती हैं। नात या टुपुक चित्र– विस्तार व गेरू की सहायता से रसोई घरों की दीवारों पर देवी-देवताओं के चित्र बनाए जाते हैं। ज्यूंति मातृका चित्र– इसमें विभिन्न रंगों के चित्र बनाये जाते हैं। यह चित्र प्राय: जन्माष्टमी, दशहरा, नवरात्र, दीपावली आदि मांगलिक अवसरों पर बनाए जाते हैं। लक्ष्मी पौ चित्र– दीपावली के शुभअवसर पर घर के मुख्य द्वार से तिजोरी या पूजागृह तक लक्ष्मी के पद या पाँव के चिह्न बनाये जाते हैं, जिन्हें 'पौ' कहा जाता है।

शिल्पकला– उत्तराखण्ड राज्य में शिल्पकला की एक समृद्ध परम्परा रही है। काष्ठ शिल्प– उत्तराखण्ड में काष्ठ शिल्प काफी प्रसिद्ध है। लकड़ी से पाली, ठेकी, कुमया, भदेल, मासी आदि तैयार की जाती है। राजि जनजाति के लोग मुख्यत: यह कार्य करते हैं। रिंगाल चमोली, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ आदि जिलों में प्रमुख हस्तशिल्प उद्योग है। रिंगाल में मुख्यत: डालें, कंडी, चटाई, सूप, टोकरी, मोस्टा प्रमुख है। इसका प्रयोग घरेलू एवं कृषि-कार्यो के लिए किया जाता है। यह काम मुख्यत: रूडियों का पुस्तैनी कार्य है। रेशा एवं कालीन शिल्प– राज्य के अनेक क्षेत्रों में भाँग के पौधों से प्राप्त रेशों से कुथले, कम्बल, दरी, रस्सियाँ आदि तैयार की जाती हैं। मृत्तिका शिल्प– राज्य में मिट्टी से अनेक प्रकार के बर्तन, दीप, सुराही, गमले, चिलम, गुल्लक, डीकारे आदि बनाये जाते हैं। डीकारे– मिट्टी से निर्मित देवी-देवताओं की रंग-बिरंगी मूर्तियाँ। धातु शिल्प– राज्य में धातु शिल्प कला काफी समृद्ध है। यहाँ सोने, चाँदी एवं ताँबे से कई तरह के आभूषण बनाए जाते हैं। उत्तराखण्ड राज्य के अल्मोड़ा जिले में टम्टा समुदाय के लोगों द्वारा एल्यूमिनियम, ताँबे, पीतल आदि धातुओं से घरेलू एवं पूजागृह के लिए अनेक प्रकार के बर्तन बनाए जाते हैं। मूर्ति शिल्प– उत्तराखण्ड राज्य में अनेक पाषाण, धातु, मृण और दारु (लकड़ी) की मूर्तियाँ उपलब्ध हैं।

संगीत कला (लोकगीत)– उत्तराखण्ड राज्य में शैली, भाषा, वर्ण्य-विषय और गायन-समय आदि के आधार पर राज्य के लोकगीतों को कई भागों में बाँटा जाता है। प्रेम या प्रणय गीत– चौफला, झुमैलो, छोपली, छपेली, बाजूबंद, लामण, झूणा आदि दाम्पत्य-जीवन के प्रेम सम्बन्धी गीत हैं। इन्हीं में कृष्ण-सम्बन्धी रूक्मिणी-हरण, कुष्ण-कोकिला, व्रद्रावली-हरण आदि पौराणिक लोकगाथाएँ (जागर) हैं तथा राजुला-भालूशाही, जीतहू-बगड़वाल, सरूकुमैण लोकगाथाएँ (पवांडे) हैं। ऋतुगीत– इसमें होली, बंसती, चैती, चौमास। बारहमासा, खुदेड़, फुलदेही, झुमैलो, श्रावण गीत आते हैं। नृत्यगीत– माघगीत, तांदी, चाचार, चौफला, छोपती,

थड़या, झोंड़ा, बैरगीत। मांगल या संस्कार गीत– जन्म छड़ी, नामकरण, चूड़ाकर्म, उपनयन (अनेकन), विवाह आदि संस्कारों में गाये जाने वाले गीत। धार्मिक गीत– कृष्ण व पाण्डव सम्बन्धी पौराणिक लोकगाथाएँ (जागर), स्थानीय जागर, संध्यागीत, प्रभातगीत, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना आदि।

संगीत कला (वाद्य यंत्र)– उत्तराखण्ड राज्य की समृद्ध लोकसंगीत-परम्परा में वाद्य-यंत्रों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है, जो निम्नवत है– धातु या धन वाद्य- जैसे घण्टा, बिणाई, थाली (काँसे की), मंजीरा, घुँघुरू, झाँझ, करताल, चिमटा आदि चर्म वाद्य– जैसे ढोल, नगाड़ा, तबला, डफली, हुड़की, डोर, दमाऊँ आदि। तार या ताँत वाद्ययंत्र– जैसे सारंगी, वीणा आदि। सुषिर या फूँक वाद्य– जैसे तूरही, रणसिंहा, शंख, मशकबीन, बाँसुरी, मोंछंग आदि। अन्य– हारमोनियम, गिटार, आरगन आदि। नाद्यकला (फिल्म एवं अन्य)– उत्तराखण्ड राज्य में गढ़वाली-कुमाऊँनी बोली में सिनेमा का इतिहास १९८१ की फिल्म जग्वान (गढ़वाली फिल्म) से शुरू होता है। जग्वान (गढ़वाल)– उत्तराखण्ड राज्य की प्रथम फिल्म, निर्माता पारेश्वर गौड़ द्वारा निर्मित है। इसके नायक पारेखर गौड़ व रमेश मैन्दोलिया और नायिक कुसुम बिष्ट हैं। मेघा हुआ (कुमाऊँनी)- यह कुमाऊंनी बोली की प्रथम फिल्म थी। रामलीला– उत्तराखण्ड में प्राय: सभी क्षेत्रों में रामलीला का आयोजन होता है। कुछ क्षेत्रों में इसका आयोजन दशहरे के अवसर पर होता है।

प्रमुख मेले-पर्व– नन्दा देवी मेला– हिमालय की पुत्री नन्दा देवी की पूजा-अर्चना के लिए प्रत्येक वर्ष भाद्र शुक्ल पक्ष की पंचमी से अल्मोड़ा, नैनीताल, बागेश्वर आदि जिलों में नन्दा देवी मेले शुरू हो जाते हैं। बैकुण्ठ चतुर्दशी मेला– यह मेला पौड़ी जिले के कमलेश्वर मन्दिर (श्रीनगर) पर बैकुण्ठ चतुर्दशी को प्रतिवर्ष मनाया जाता है। दंगल मेला– चह मेला पौड़ी के सतपुली के पास दलगल के शिव मन्दिर में प्रतिवर्ष महाशिवरात्रि को लगता है। टपकेश्वर मेला– देहरादून की देवीधारा नदी के किनारे एक गुफा में स्थित इस शिव मन्दिर की मान्यता दूर-दूर तक है। शिवरात्रि पर यहाँ एक विशाल मेला लगता है। प्रमुख त्योहार– दीपावली, फुलसग्रदं (फुलदेई), होली, हरेला, घी-संक्रान्ति, दशहरा, मकरसंक्रान्ति, रक्षाबन्धन, पंचमी, नुणाई आदि।

प्रमुख यात्राएँ– नन्दा राजजात यात्रा– उत्तराखण्ड की यह यात्रा गढ़वाल एवं कुमाऊँ की सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। यह विश्व की अनोखी पदयात्रा है, जिसमें चमोली की लासुवाँ गाँव के पास स्थित नौटी के नन्दा देवी मन्दिर से होमकुण्ड तक की २८० किमी की यात्रा १९-२० दिन में पूरी की जाती है। इस यात्रा में कुमाऊँ, गढ़वाल तथा देश के अन्य भागों के अलावा विदेश के लोग भी भाग लेते हैं।

प्रमुख पारम्परिक परिधान– गढ़वाली पुरुषों के परिधान– धोती, चूड़ीदार पायजामा, कुर्ता, मिरजई, सफेद टोपी, पगड़ी। गढ़वाली स्त्रियों के परिधान– आँगडी, गाती, धोती। गढ़वाली बच्चों के परिधान– झगुली, घाघरा, कोट, चूड़ीदार पायजामा, सन्तराध। कुमाऊँ पुरुषों के परिधान– धोती, पैजामा, सूराव, कुर्ता, कमीज, टोपी, साफा। कुमाऊँ स्त्रियों के परिधान– घाघरा या लहँगा, आँगडा, खानू (चोली), धोती।

प्रमुख आभूषण– उत्तराखण्ड राज्य में स्त्रियों द्वारा धारण किए जाने वाले पारम्परिक आभूषण निम्नलिखित हैं– सीसफूल, सुहाग बिंदी, मुर्खली, तुग्यंल, कुण्डल, फूली, नथ,

बुलांक, तिलहरी, चरयों, हँसुला, धागुला, पैजवी, बिछुवा, गुलबंद आदि।

वर्तमान में उत्तराखण्ड राज्य का स्वरूप– देहरादून जिला उत्तराखण्ड राज्य में स्थित है। ९ नवम्बर, २००० को उत्तर प्रदेश राज्य को विभाजित कर जब उत्तराखण्ड राज्य का गठन किया गया था, उस समय देहरादून को उत्तराखण्ड की अन्तरिम राजधानी बनाया गया। यहाँ की कुल जनसंख्या १,६९६,६९४, कुल तहसील ०७, कुल ब्लॉक ०६ तथा कुल गाँव ७६७ हैं।

शोध के उद्देश्य– १. वर्तमान समय में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं का उत्तराखण्ड़ राज्य की लोक-संस्कृति के प्रति सम्मान, जागरूकता एवं रुझानों का अध्ययन करना। २. उत्तराखण्ड राज्य के विभिन्न जिलों की स्थानीय लोक-संस्कृति में विविधता एवं समानता, रहन-सहन, खान-पान, वेष-भूषा, परम्पराएँ, पर्व तथा अन्य सम्बन्धित सांस्कृतिक कलाओं का अध्ययन कर विश्लेषण करना।

शोध-अध्ययन की प्रविधि– शोध का प्रकार एवं समंकों की प्रकृति– प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने वर्णनात्मक एवं गुणात्मक शोध का प्रयोग किया है तथा यह शोध प्रश्नावली एवं साक्षात्कार के माध्यम से किया गया है। शोध-अध्ययन में प्राथमिक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक समंकों को प्राप्त करने के लिए प्रश्नावली को निर्मित कर तथा साक्षात्कार के माध्यम से १७८ निदर्शन एकत्रित किए गए हैं।

शोध-अध्ययन का क्षेत्र– शोध-सर्वेक्षण से सम्बन्धित सभी महाविद्यालय उत्तराखण्ड राज्य के देहरादून जिले में स्थित हैं, जो इस प्रकार हैं– 'एम.के.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डी.ए.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डी.बी.एस. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर महाविद्यालय, एस.जी.आर.आर. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देहरादून।

शोध की सीमाएँ– यह शोध-सर्वेक्षण उत्तराखण्ड राज्य के गढ़वाल मण्डल के सात जिलों के छात्र-छात्राओं पर किया गया है, जो कि वर्तमान समय में देहरादून जिले के महाविद्यालयों में अध्ययनरत हैं।

आँकड़ों का विश्लेषण– शोध-अध्ययन में शोधार्थी ने सात दिन के क्षेत्रीय सर्वेक्षण से प्राथमिक समंकों के आधार पर उत्तराखण्ड राज्य के देहरादून जिले में विभिन्न महाविद्यालयों 'एम.के.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डी.ए.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डी.बी.एस. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर महाविद्यालय, एस.जी.आर.आर. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देहरादून में जाकर अध्ययनरत छात्र-छात्राओं का उत्तराखण्ड की संस्कृति के प्रति रुझान का अध्ययन किया तथा सर्वेक्षण के आधार पर देहरादून जिले में राजकीय महाविद्यालयों में अध्ययनरत विभिन्न जिलों से आए छात्र-छात्राओं की स्थानीय संस्कृति, जैसे– रहन-सहन, खान-पान, वेष-भूषा आदि के आधार पर १७८ निदर्शन शोधार्थी ने एकत्रित किए। अत: १७८ निदर्शन के आधार पर शोधार्थी ने समस्त आँकड़ों का संकलन एवं विश्लेषण सारणीयन के आधार पर किया है।

तालिका- ०१

जनसांख्यिकीय आँकडों के आधार पर वर्गीकरण

वर्ग	वर्गीकरण	कुल संख्या	कुल प्रतिशत
लिंग	छात्र	६८	३८
	छात्राएं	११०	६२
परिवार की स्थिति	एकल परिवार	९८	५५
	संयुक्त परिवार	८०	४५
व्यवसाय	प्राइवेट नौकरी	८०	४५
	सरकारी नौकरी	५०	२८
	कृषि	३०	१७
	अन्य	१८	१०
परिवार के साथ रहना	हां	१२०	६७
	नहीं	५८	३३

स्रोत- प्राथमिक सर्वेक्षण

सर्वेक्षण में उपर्युक्त तालिका-०१ से स्पष्ट होता है कि शोध-अध्ययन में अध्ययनरत छात्रों की संख्या ३८ प्रतिशत तथा छात्राओं की संख्या ६२ प्रतिशत है। अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के ५५ प्रतिशत परिवार संयुक्त रूप से रहते हैं तथा ४५ प्रतिशत परिवार एकल रूप में रहते हैं। प्राइवेट नौकरी वाले परिवारों की संख्या ४५ प्रतिशत, सरकारी नौकरी वाले परिवारों की संख्या २८ प्रतिशत, कृषि करने वाले परिवारों की संख्या १७ प्रतिशत है, जबकि अन्य व्यवसायों पर आश्रित परिवारों की संख्या १० प्रतिशत है। तालिका से स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में ६७ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ अपने परिवार के साथ शहर में रहकर अध्ययन करते हैं, जबकि ३३ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ शहर में परिवार के साथ न रहकर किराए या अपने सम्बन्धित जनों के साथ रहकर अध्ययन करते हैं।

तालिका- ०२

अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के शिक्षण-स्तरों (कक्षाएँ एवं विषयवार), शिक्षण महाविद्यालय एवं जिलेवार के आधार पर वर्गीकरण

वर्ग	वर्गीकरण	कुल संख्या	कुल प्रतिशत
कलावर्ग	बी०ए.	७०	३९
	एम.ए.	५०	२९
वाणिज्यवर्ग	बी.कॉम.	३५	२०
विज्ञानवर्ग	बी.एस.सी.	१५	०८
	एम.एस.सी.	०८	०४
कॉलेज	डी.ए.वी महाविद्यालय, देहरादून	४८	२७
	डी.बी.एस. महाविद्यालय, देहरादून	५८	३३
	एम.के.पी. महाविद्यालय, देहरादून	३२	१८

	एस.जी.आर.आर.महाविद्यालय, देहरादून	२२	१२
	रायपुर पी.जी. महाविद्यालय, देहरादून	१८	१०
जिले	पौड़ी गढ़वाल	५५	३१
	देहरादून	४५	२५
	चमोली	३०	१७
	उत्तरकाशी	२५	१४
	टिहरी	०८	०४
	रूद्रप्रयाग	०९	०५
	हरिद्वार	०६	०३

स्रोत- प्राथमिक

सर्वेक्षण सर्वेक्षण में उपर्युक्त तालिका-०२ से स्पष्ट होता है कि कलावर्ग बी.ए. में ३९ प्रतिशत, एम.ए. में २९ प्रतिशत, वाणिज्यवर्ग बी.कॉम. में २० प्रतिशत तथा विज्ञानवर्ग बी.एस.सी में ०८ प्रतिशत तथा एम.एस.सी. में ०४ प्रतिशत छात्र-छात्राओं का सर्वेक्षण किया गया है। उपर्युक्त सर्वेक्षण में डी.ए.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय के ४८ छात्र-छात्राओं (२७ प्रतिशत), डी.बी.एस. स्नातकोत्तर महाविद्यालय में ५८ छात्र-छात्राओं (३३ प्रतिशत), एम.के.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय में ३२ छात्र-छात्राओं (१८ प्रतिशत), एस.जी.आर.आर. स्नातकोत्तर महाविद्यालय में २२ छात्र-छात्राओं (१२ प्रतिशत) तथा रायपुर महाविद्यालय, देहरादून में १८ छात्र-छात्राओं (१० प्रतिशत) पर सर्वेक्षण किया गया है। देहरादून में पौड़ी गढ़वाल जिले से ३१ प्रतिशत, देहरादून जिले से २५ प्रतिशत, चमोली जिले से १७ प्रतिशत, उत्तरकाशी जिले से १४ प्रतिशत, टिहरी जिले से ०४ प्रतिशत तथा रूद्रप्रयाग जिले से ०५ प्रतिशत तथा हरिद्वार से ०३ प्रतिशत छात्र-छात्राओं को सर्वेक्षण में शामिल किया गया है।

तालिका- ०३

उत्तराखण्ड की संस्कृति के आधार पर वर्गीकरण

वर्ग	वर्गीकरण	कुल संख्या	कुल प्रतिशत
लोकचित्र बनाना	हाँ	१००	५६
	नहीं	२८	१६
	कभी-कभी	५०	२८
शिल्पकला से विदित युवा पीढ़ी	हाँ	९०	५१
	नहीं	८८	४९

स्रोत- प्राथमिक सर्वेक्षण

सर्वेक्षण में उपर्युक्त तालिका-०३ से स्पष्ट होता है कि ५६ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ राष्ट्रीय व स्थानीय पर्व आने पर लोकचित्र, जैसे- ऐंपण, लक्ष्मी पौ चित्र, देवी-देवताओं के चित्र बनाते हैं, जबकि १६ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ इनसे विदित नहीं हैं। २८ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ लोकचित्र बनाते तो हैं, लेकिन प्रत्येक पर्व पर कभी-कभी ही बनाते हैं। ५१ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ शिल्पकला, जैसे– काष्ठकला, मूर्तिकला, धातुकला, रेशा एवं कालीन शिल्पकला से विदित हैं, जबकि ४९ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ शिल्पकला के विषय से विदित नहीं हैं।

तालिका-३.१

दैनिक जीवन में भाषा-प्रयोग के आधार पर वर्गीकरण

वर्ग	वर्गीकरण	कुल संख्या	कुल प्रतिशत
दैनिक जीवन की भाषा	स्थानीय बोली	७०	३९
	हिन्दी/अंग्रेजी	४३	२४
	उपर्युक्त दोनों	६५	३७

स्रोत- प्राथमिक सर्वेक्षण

सर्वेक्षण में उपर्युक्त तालिका-३.१ से स्पष्ट होता है कि अध्ययनरत ३९ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ दैनिक जीवन में परिवार और दोस्तों के साथ स्थानीय बोलियों, जैसे– गढ़वाली, कुमाऊँनी, जौनसारी में बात करना पसन्द करते हैं तथा २४ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ हिन्दी और अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में बात करना पसन्द करते हैं। ३७ प्रतिशत ऐसे छात्र-छात्राएँ हैं, जो स्थानीय तथा पश्चिमी– दोनों भाषाओं में बात करना पसन्द करते हैं।

तालिका ३.२

दैनिक दिनचर्या के खान-पान एवं वेश-भूषा/परिधान के आधार पर वर्गीकरण

वर्ग	वर्गीकरण	कुल संख्या	कुल प्रतिशत
दैनिक खान-पान	स्थानीय खान-पान	८८	४९
	पश्चिमी खान-पान	३५	२०
	उपर्युक्त दोनों	५५	३१
परिधान	स्थानीय परिधान	९०	५०
	पश्चिमी परिधान	२८	१६
	उपर्युक्त दोनों	६०	३४
संस्कृति स्वीकार्यता	उत्तराखण्ड की संस्कृति	१०८	६१
	पश्चिमी संस्कृति	२५	१४
	उपर्युक्त दोनों	४५	२५

स्रोत- प्राथमिक सर्वेक्षण

सर्वेक्षण में उपर्युक्त तालिका-३.२ से स्पष्ट होता है कि अध्ययनरत ४९ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ दैनिक जीवन में स्थानीय खान-पान, जैसे– फाणु, मंडुएँ की रोटी, झुगंरू को पसन्द करते हैं, २० प्रतिशत छात्र-छात्राएँ पश्चिमी खान-पान, जैसे– चाउमीन, बर्गर, पीज्जा को पसन्द करते हैं, जबकि ३१ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ उपर्युक्त दोनों प्रकार के खान-पान को पसन्द करते हैं। ५० प्रतिशत छात्र-छात्राएँ स्थानीय परिधान, जैसे– कुर्ते-सलवार, टोपी, गमछा, धोती पहनना पसन्द करते हैं, १६ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ पश्चिमी परिधान, जैसे– जींस, लहँगा, शर्ट पहनना पसन्द करते हैं तथा ३४ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ स्थानीय एवं पश्चिमी– दोनों परिधानों को समयानुकूल पहनना पसन्द करते हैं। उत्तराखण्ड की संस्कृति, जैसे– खान-पान, रहन-सहन, वेष-भूषा को आज भी ६१ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ दैनिक दिनचर्या में पसन्द करते हैं, जबकि १४ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ पश्चिमी संस्कृति को पसन्द करते हैं तथा २५ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ उपर्युक्त दोनों प्रकार की संस्कृति को दैनिक जीवन में पसन्द करते हैं।

तालिका- ३.३

स्थानीय वाद्य-यंत्रों एवं लोकनृत्य, स्थानीय संगीत एवं स्थानीय फिल्मों से विदित होने के आधार पर वर्गीकरण

वर्ग	वर्गीकरण	कुल संख्या	कुल प्रतिशत
स्थानीय वाद्य यंत्र व लोकनृत्य	विदित	१५०	८४
	अविदित	२८	१६
स्थानीय संगीत के शौकीन	हाँ	१२०	६७
	नहीं	३०	१७
	कभी-कभी	२८	१६
स्थानीय फिल्में देखना	हाँ	८८	४९
	नहीं	५०	२९
	कभी-कभी	४०	२२

स्रोत- प्राथमिक सर्वेक्षण

उपर्युक्त तालिका-३.३ से स्पष्ट होता है कि अध्ययनरत ८४ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ स्थानीय वाद्य-यंत्रों जैसे– ढोल, दमाउ, मशकबीन, ड़ौंर, थाली, तबला, हरमोनियम तथा स्थानीय लोकनृत्यों, जैसे– आत्मानृत्य, रणभूत नृत्य, थडिया आदि से भली-भाँति विदित हैं, जबकि १६ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ स्थानीय वाद्य-यंत्रों तथा लोकनृत्यों से विदित नहीं हैं। ६७ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ स्थानीय संगीत, जैसे– गढ़वाली, कुमाऊँनी, जौनसारी संगीत को सुनने में रुचि रखते हैं, १७ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ हिन्दी-अंग्रेजी भाषाओं में संगीत सुनते हैं तथा १६ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ कभी स्थानीय तथा कभी हिन्दी संगीत सुनना पसंद करते हैं। अध्ययनरत ४९ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ स्थानीय फिल्में, जैसे– गढ़वाली, कुमाऊँनी, चक्रचाल, घरजवैं, रैबार, दगड्या तथा अनेक फिल्मों को देखना पसन्द करते हैं, २९ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ हिन्दी-अग्रेजी फिल्मों को देखने में रुचि रखते हैं तथा २२ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ कभी-कभी ही फिल्मों को देखना पसन्द करते हैं और जब भी फिल्मों को देखते हैं, दोनों प्रकार की फिल्मों को देखना पसन्द करते हैं।

तालिका- ०४ : स्थानीय मान्यताएँ और परम्पराएँ, जैसे– स्थानीय धार्मिक पूजा, स्थानीय मेले एवं स्थानीय पर्वो के आधार पर वर्गीकरण

वर्ग	वर्गीकरण	कुल संख्या	कुल प्रतिशत
पूजा के लिए गाँव जाना	हाँ	१५०	८४
	नहीं	२८	१६
स्थानीय पर्व मनाना	हाँ	९०	५०
	नहीं	३०	१७
	कभी-कभी	५८	३३
गाँव जाने के आधार पर	हाँ	८०	४५
	नहीं	६०	३४
	कभी-कभी	३८	२१

स्रोत- प्राथमिक सर्वेक्षण

सर्वेक्षण में उपर्युक्त तालिका-०४ से स्पष्ट होता है कि अध्ययनरत ८४ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ अपने परिवार सहित स्थानीय धार्मिक पूजा, जैसे– नरसिंह देवता, भैरव देवता, देवी माँ की पूजा के लिए प्रत्येक वर्ष गाँव आवागमन करते हैं, जबकि १६ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ धार्मिक पूजा के लिए गाँव नहीं जाते हैं। ५० प्रतिशत छात्र-छात्राएँ स्थानीय पर्व, जैसे– फुलदेई, घी-संक्रान्ति, हरेला पर्व बड़े हर्ष-उल्लास के साथ मनाते हैं, १७ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ इन पर्वों को नहीं मनाते हैं, जबकि ३३ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ स्थानीय पर्वों के विषय में अधिक अवगत न होने के कारण कभी-कभी ही इन पर्वों को मनाते हैं। ४५ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ प्रतिवर्ष, विशेषकर स्थानीय मेलों को मनाने के लिए गाँव में आवागमन करते हैं, जबकि ३४ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ गाँव नहीं जाते हैं। २१ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ ऐसे हैं, जो गाँव जाते तो हैं, किन्तु कभी-कभी ही स्थानीय मेलों को मनाने के लिए गाँव जा पाते हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव–

अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के शिक्षण-स्तरों से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर निष्कर्ष– शोध-अध्ययन में समस्त प्राथमिक आँकड़े देहरादून जिले के डी.ए.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डी.बी.एस. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, एम.के.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, एस.जी.आर.आर. स्नातकोत्तर महाविद्यालय तथा रायपुर महाविद्यालय में अध्ययनरत उत्तराखण्ड राज्य के गढ़वाल मण्डल के विभिन्न जिलों– पौड़ी गढ़वाल, देहरादून, चमोली, उत्तरकाशी, टिहरी, रूद्रप्रयाग और हरिद्वार के मूल निवासी स्नातक एवं स्नातकोत्तर शिक्षण-स्तर के छात्र-छात्राओं से स्थानीय लोक-संस्कृति के आधार पर प्राप्त किए गए हैं।

अध्ययनरत छात्र-छात्राओं के परिवार के रहन-सहन, खान-पान के आधार पर निष्कर्ष– सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त हुए कि अध्ययनरत ६७ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ वह हैं, जो वर्तमान में अपने परिवार के साथ रहकर अध्ययन करते हैं तथा ३३ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ किराए पर या अपने सम्बधितजनों तथा रिश्तेदारों के साथ देहरादून में रहकर अध्ययन करते हैं। अध्ययनरत ७० प्रतिशत छात्र-छात्राएँ अपने दैनिक जीवन में उत्तराखण्ड की बोलियाँ, जैसे–गढ़वाली, कुमाऊँनी, जौनसारी का प्रयोग अपने परिवार और दोस्तों के साथ रहकर नित्य बोलना पसन्द करते हैं तथा ४९ प्रतिशत छात्र-छात्राएँ स्थानीय खान-पान, जैसे– चैसू, फाणु, गहत की दाल, कंडाली की सब्जी, मडुए की रोटी, अर्से को खाना पसन्द करते हैं। कुछ छात्र-छात्राएँ हैं, जो अपने परिवार के अनुसार पश्चिमी खान-पान, रहन-सहन को पसन्द करते हैं। छात्र-छात्राएँ स्थानीय परिधानों को पहनना पसन्द करते हैं। कई छात्र-छात्राएँ स्थानीय परिधानों को केवल शादी-समारोह तथा विशेष अवसरों पर पहनते हैं।

स्थानीय संस्कृति व रीति-रिवाजों के आधार पर निष्कर्ष- स्थानीय पर्व, जैसे– फुलदेई, घी-संक्रान्ति, हरेला, जागड़ा, नुणाई, पंचमी, मकर संक्रान्ति आदि त्योहारों को परिवार के साथ मिलकर मनाना ५० प्रतिशत छात्र-छात्राएँ पसन्द करते हैं तथा कभी-कभी इन पर्वों को मनाने के लिए गाँव भी जाते हैं। गाँव में होने वाली अनेक धार्मिक पूजा, जैसे– नरसिंह देवता, देवी माँ की पूजा, महासू देवता, भैरव देवता की पूजा- अर्चना के लिए ८४ प्रतिशत युवा पीढ़ी गाँव में जाती है तथा वाद्य-यन्त्रों, जैसे– ढोल, दमाऊँ, मशकबीन डोर, थाली, पुरातन धरोहर, जैसे– शिल्पकला, काष्ठकला, मूर्तिकला एवं धातुकला से भी परिचित होती है। वर्तमान में अध्ययनरत युवा पीढ़ी स्थानीय संगीत, जैसे– गढ़वाली, कुमाऊँनी, जौनसारी एवं स्थानीय

बोलियों में निर्देशित फिल्मों को देखने में रुचि रखते हैं। कुछ छात्र-छात्राएँ ऐसे हैं, जो फिल्मों को देखने में रुचि नहीं रखते हैं। जब भी फिल्मों को देखते हैं, स्थानीय बोलियों एवं पश्चिमी– दोनों भाषाओं में निर्देशित फिल्मों को देखना पसन्द करते हैं।

सुझाव- उपर्युक्त सर्वेक्षण के आधार पर उत्तराखण्ड की संस्कृति के प्रोत्साहन हेतु महत्त्वपूर्ण सुझाव निम्नवत हैं–

१. विद्यालय-स्तर पर उत्तराखण्ड की संस्कृति से सम्बन्धित कार्यक्रमों के आयोजन पर सुझाव– विद्यालयी पाठ्यक्रम में स्थानीय खान-पान, स्थानीय परिधान व आभूषण, स्थानीय प्राचीन कलाओं, जैसे– शिल्पकला, धातुकला, मूर्तिकला तथा नृत्य कलाओं, स्थानीय संगीत को सम्मिलित करना, ताकि नवयुवा पीढ़ी भी सांस्कृतिक धरोहर के विषय में अवगत हो सके। सरकारी तथा प्राइवेट विद्यालयी स्तर पर कुछ शिक्षण-विषयों को स्थानीय बोलियों में छात्र-छात्राओं के लिए निर्मित करना तथा विद्यालय में स्थानीय बोलियों को महत्त्व देना चाहिए। विद्यालय में छात्र-छात्राओं के लिए अनेक कार्यक्रम एवं प्रतियोगिताओं का आयोजन करना, जैसे– स्थानीय गायन प्रतियोगिता, परिधान, खान-पान प्रतियोगिताएँ कराना स्थानीय नृत्य, जैसे– रासू, थड़ियाँ, छौलियाँ प्रतियोगिताओं का आयोजन कर विजेताओं को जिला, राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान दिलवाना चाहिए, ताकि अन्य छात्र-छात्राओं को भी प्रोत्साहन मिल सके और उत्तराखण्ड की संस्कृति का प्रचार-प्रसार हो सके।

२. क्षेत्रीय एवं राज्य स्तर पर उत्तराखण्ड की संस्कृति के प्रोत्साहन के लिए सुझाव– संस्कृति के विस्तार के लिए राज्य सरकार द्वारा प्रतियोगिता-कार्यक्रमों का ऐसा मंच तैयार करना, जिनके माध्यम से उत्तराखण्ड की संस्कृति का विस्तार राष्ट्रीय स्तर तक हो सके। जैसे– स्थानीय प्राचीन धरोहर की प्रदर्शनियाँ, संगीत, गायन प्रतियोगिताएँ करना। साथ-ही-साथ स्थानीय कलाएँ, जैसे– धातुकला, शिल्पकला, मूर्तिकला, काष्ठकला एवं स्थानीय परिधानों के निर्माण, स्थानीय आभूषण बनाने में युवाओं को रोजगार भी उपलब्ध कराना, ताकि पलायन जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न न हों। स्थानीय पर्व, जैसे– फुलदेई, घी-संक्रान्ति, हरेला, स्थानीय मेले-नौठा कौथिग, उत्तरायणी, पंचमी का कौथिग, स्थानीय परिधान को नियमित पहनना तथा धार्मिक पूजाओं, जैसे– नरंसिह देवता, देवी माँ की पूजा का आयोजन करते रहना चाहिए। परिवार में स्थानीय खान-पान, जैसे– चैसू, बांडी, काफली, अर्से, फाणु नियमित रूप से बनाते रहना चाहिए व स्थानीय बोलियों में ही वार्तालाप करनी चाहिए। शहर में रहने वाले परिवारों को समय-समय पर जैसे– धार्मिक पूजा, शादी समारोह में गाँव जाना चाहिए, ताकि आज की युवा पीढ़ी भी गाँव में जाकर स्थानीय मेलों, पूजा, अनेक कलाओं, वाद्य-यंत्रों आदि से परिचित हो सके तथा नयी पीढ़ी शहर और गाँव– दोनों से जुड़ सके।

सन्दर्भ-सूची

- https://dehradun.nic.in
- www.uttarakhandculture.in
- https://en.wikipedia.org/wiki/uttarakhand
- uttarakhand ek samanya adhyyan (keshri nandan tripathi)

●

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का खाद्य-प्रबंधन में योगदान

भूपेन्द्र कुमार साहू*, डॉ. अंजु कुमारी, डॉ. रविश कुमार सोनी*****

प्रस्तावना एवं पृष्ठभूमि– सार्वजनिक वितरण प्रणाली, आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों को नियंत्रित व उचित दर पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिए चली आ रही व्यवस्था है। इसके माध्यम से जरूरतमन्द लोगों को नियंत्रित व उचित मूल्य पर खाद्यान्न-सामग्री उपलब्ध कराया जाता है, ताकि उनको कुपोषण, भूखमरी व बढ़ती हुई मँहगाई से सुरक्षा प्रदान किया जा सके। खाद्य सुरक्षा के लिए पीडीएस जहाँ एक प्रमुख विकल्प है, वहीं खाद्य-प्रबंधन में भी इसका अहम योगदान है, क्योंकि 'अन्न को उगाना जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही महत्त्वपूर्ण उसकी सुरक्षा एवं उपयोगिता है।' यदि हम इसकी पृष्ठभमि की ओर गौर करें, तो पीडीएस की शुरूआत द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से मानी जाती है। औपचारिक रूप से इसकी शुरूआत १९६० ई. से हुई थी। इस योजना की आवश्यकता व महत्त्व को देखते हुए इसे आगे भी जारी रखा गया। वर्ष १९९७ से यह लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तौर पर संचालित होने लगा तथा २०१३ में 'खाद्य सुरक्षा कानून' लागू होने के परिणामस्वरूप आम जनता को खाद्य सुरक्षा का कानूनी अधिकार मिल गया। उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सतत् विकास के १७ लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं, जिसमें दूसरा लक्ष्य शून्य भूखमरी है। शून्य भूखमरी के अन्तर्गत देश में खाद्य सुरक्षा व कुपोषण खत्म करना प्रमुख घटक है, जिसकी प्राप्ति के लिए पीडीएस का संचालन आवश्यक है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली : सार्वजनिक वितरण प्रणाली का प्रचलित नाम पीडीएस अर्थात् 'पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम' है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली से तात्पर्य शासन की एक व्यवस्था से है, जिसके अन्तर्गत पंजीकृत हितग्राहियों को सस्ते दर पर चावल, गेहूँ, शक्कर, नमक, चना, केरोसिन आदि सामग्री वितरित की जाती है। हितग्राहियों का पंजीकरण स्थानीय प्रशासन के माध्यम से किया जाता है। पंजीकृत हितग्राहियों को 'खाद्य अधिकार पुस्तिका' दिया जाता है, जिसे आम बोलचाल की भाषा में 'राशनकार्ड' कहा जाता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत हितग्राहियों को सामग्री का वितरण समीपस्थ उचित मूल्य की दुकान के माध्यम से किया जाता है, जिसका संचालन अधिकृत संस्था, स्वसहायता समूह, ग्राम पंचायत या सहकारी समिति द्वारा किया जाता है। सम्बन्धित उचित मूल्य की दुकान को नजदीकी 'खाद्य भण्डार गृह निगम' से राशन सामग्री प्राप्त होती है, जो कि शासन द्वारा नियुक्त सम्बन्धित क्षेत्र के खाद्य निरीक्षक अथवा खाद्य अधिकारी के पर्यवेक्षण, समन्वय एवं नियंत्रण में संचालित होता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली समवर्ती सूची का विषय है, जिसके अन्तर्गत 'खाद्य सुरक्षा कानून' के तहत भारत सरकार द्वारा राज्यों को आवण्टन जारी कर दिया जाता है, फिर; राज्य सरकार आवश्यकतानुसार राज्य के हितग्राहियों को शामिल कर सामग्री-वितरण कार्य को सम्पन्न करवाता है। उल्लेखनीय है कि छत्तीसगढ़ शासन द्वारा वर्ष २०१९ से गरीबी रेखा से ऊपर एपीएल परिवारों को भी सार्वभौमिक पीडीएस योजना के तहत राशनकार्ड जारी कर राशन प्रदान किया जा रहा है।

* शोधार्थी– वाणिज्य संकाय, कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिलाई नगर, छत्तीसगढ़
** सहायक प्राध्यापक– वाणिज्य संकाय, साईं महाविद्यालय, भिलाई नगर, छत्तीसगढ़
*** सहायक प्राध्यापक– वाणिज्य संकाय, कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिलाई नगर, छत्तीसगढ़

खाद्य-प्रबंधन से तात्पर्य : खाद्य-प्रबंधन से तात्पर्य खाद्यान्न के उत्पादन से लेकर वितरण तक की उचित व्यवस्था से है, ताकि उनके उत्पादकों को उचित दाम मिल सके तथा उत्पादित अनाज की सुरक्षा और समुचित उपयोग हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसानों से उनकी उपज का न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीदी किया जाता है तथा भण्डारण की उचित व्यवस्था की जाती है। इसे पीडीएस के तहत गरीबों व जरूरतमन्दों को प्रदान किया जाता है, जिसमें सार्वजनिक वितरण प्रणाली की विशेष भूमिका होती है।

भारतीय खाद्य निगम के बारे में : भारतीय खाद्य निगम अर्थात् एफसीआई भारत सरकार की एक कार्पोरेट संस्था है, जिसकी स्थापना १९६५ ई. में की गयी थी। किसानों की उपज का समर्थन मूल्य में खरीदी व उसका बफर स्टॉक बनाये रखना तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत अनाजों का वितरण करना– इसकी स्थापना का मुख्य उद्येश्य है। भारत में खाद्यान्नों की खरीद से लेकर निपटान तक अथवा प्रबंधन में इस निगम का अहम योगदान है। गौरतलब है कि वर्तमान में भारत में कुल १८.५६ करोड़ राशनकार्ड हैं, जिनके ७५.६५ करोड़ लाभार्थी हैं। इन्हें भारत सरकार की ओर से अनाज-आपूर्ति का दायित्व भारतीय खाद्य निगम का होता है।

सतत् विकास लक्ष्य के बारे में : संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वैश्विक व्यवस्था को सुदृढ़ करने तथा विकास की गति को प्रतिस्पर्धात्मक करने के लिए १७ लक्ष्य निर्धारित किए गये हैं, जिसमें दूसरा लक्ष्य शून्य भूखमरी है। इस लक्ष्य का उद्देश्य खाद्य सुरक्षा एवं कुपोषण दूर करके भूखमरी को खत्म करना है। एसडीजी डेशबोर्ड-२०२२ के अनुसार, विश्व पटल पर १६३ देशों के मूल्यांकन में भारत ६०.३ स्कोर के साथ १२१वें स्थान पर है। यद्यपि गत वर्षों की तुलना में स्कोर में सुधार हुआ है, किन्तु सुधार की धीमी गति के कारण स्कोर पर्याप्त संतोषजनक नहीं है। गौरतलब है कि भारत मे नियोजन /एसडीजी निर्धारण का कार्य 'नीति आयोग' द्वारा किया जाता है। अत: नीति आयोग द्वारा इन १७ लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए योजना तैयार किया जाता है। सतत् विकास लक्ष्य के समग्र सूचकांक वर्ष २०२० में भारत के २८ राज्यों के मूल्यांकन में छत्तीसगढ़ ६१ अंक स्कोर के साथ १९वें स्थान पर है, जबकि शून्य भूखमरी में छत्तीसगढ़ ३७ अंक के साथ २५वें स्थान पर है। अत: इस दृष्टतया देश में छत्तीसगढ़ की स्थिति संतोषजनक नहीं है।

शोध-संरचना या अभिकल्प : संरचना-निर्धारण कर किसी भी शोध के क्रियान्वयन में सहायता मिलती है। अत: प्रस्तुत शोध-संरचना वर्णनात्मक शोध पर आधारित है। प्रस्तुत शोध द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है, जिसे विभागीय बेबसाइट, वार्षिक प्रतिवेदन, आर्थिक समीक्षा, शासन की मासिक पत्रिका एवं समाचार पत्रों आदि से संकलित किया गया है।

अध्ययन की परिकल्पना : खाद्य सुरक्षा अथवा पीडीएस के सम्बन्ध में अब तक के किए गए अधिकांश शोध-पत्र में खाद्य सुरक्षा, वितरण-व्यवस्था, हितग्राहियों की समस्या आदि पर ध्यान आकृष्ट किया गया है, किन्तु शोधकर्ताओं द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली से खाद्य-प्रबंधन में हो रहे योगदान पर प्रकाश नहीं डाला गया है, जबकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली की खाद्य-प्रबंधन में अहम भूमिका है।

अध्ययन का उद्देश्य :

१. खाद्य-प्रबंधन में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के योगदान का अध्ययन करना।
२. छत्तीसगढ़ में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

खाद्य-प्रबंधन में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का योगदान : सरकार द्वारा किसानों की उपज को न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीदकर उसे सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत संचालित विभिन्न योजनाओं के माध्यम से गरीबों तथा जरूरतमन्दों तक पहुँचाया जाता है, जिसके फलस्वरूप अनाज का समुचित उपयोग संभव हो पाता है। इस प्रकार, खाद्य-प्रबंधन के अन्तर्गत सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विशेष योगदान होता है, जिसे विगत पाँच वर्षो के धान/चावल की खरीदी व पीडीएस में वितरण के निम्न आँकड़ों से समझने में आसानी होगी–

तालिका ०१: धान/चावल की खरीदी व पीडीएस के तहत वितरण

RICE				(Quantity in Lakh MT)
KMS	Purchasing	Distribution	Balance	Dist Percent
2016-17	381.06	327.88	53.18	86%
2017-18	381.85	350.4	31.45	92%
2018-19	443.99	344.35	99.64	78%
2019-20	519.87	349.74	170.13	67%
2020-21	601.85	563.24	38.61	94%

स्रोत : भारत सरकार, उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय, मासिक प्रतिवेदन, मार्च 2022, नई दिल्ली, पृष्ठ 09. तथा विभागीय बेबसाईट, भारतीय खाद्य निगम में उपलब्ध विगत दस वर्षो के उपार्जन का आँकड़ा।

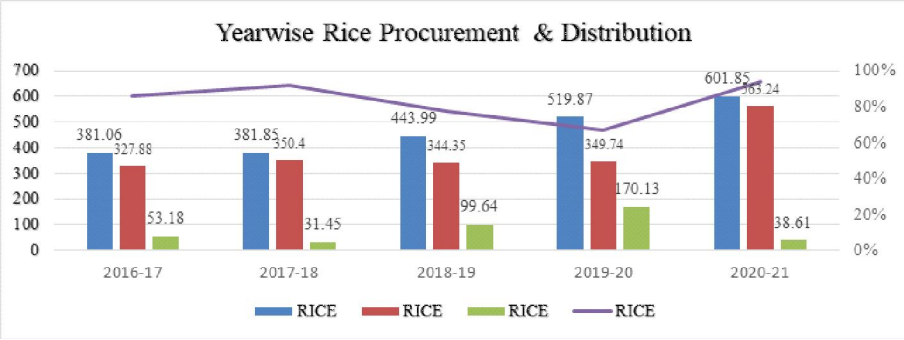

उपर्युक्त तालिका व ग्राफ के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि खरीफ वर्ष २०१६-१७ में ३८१.०६ लाख टन चावल की खरीदी किया गया, जिसमें से ३२७.८८ लाख टन चावल का पीडीएस के तहत उठाव हुआ तथा ५३.५८ लाख टन चावल शासन के पास शेष रहा, अर्थात् ८६ फिसदी चावल पीडीएस में वितरण हुआ। खरीफ वर्ष २०१७-१८ में ३८१.८५ लाख टन चावल की खरीदी किया गया, जिसमें से ३५०.४० लाख टन चावल का पीडीएस के तहत उठाव हुआ तथा ३१.४५ लाख टन चावल शासन के पास शेष रहा, अर्थात् ९२ फिसदी चावल का पीडीएस में वितरण हुआ। खरीफ वर्ष २०१८-१९ में ४४३.९९ लाख टन चावल की खरीदी किया गया, जिसमें से ३४४.३५ लाख टन चावल का पीडीएस के तहत उठाव हुआ तथा ९९.६४ लाख टन चावल शासन के पास शेष रहा, अर्थात् ७८ फिसदी चावल का पीडीएस में वितरण हो गया। खरीफ वर्ष २०१९-२० में ५१९.८७ लाख टन चावल की खरीदी किया गया, जिसमें से ३४९.७४ लाख टन चावल का पीडीएस के तहत उठाव हुआ तथा १७०.१३ लाख टन चावल शासन के पास शेष रहा, अर्थात् ६७ फिसदी चावल का पीडीएस में वितरण हो गया। खरीफ वर्ष २०२०-२१ में ६०१.८५ लाख टन चावल की खरीदी किया गया, जिसमें से ५६३.२४ लाख टन चावल का पीडीएस के तहत उठाव हुआ तथा ३८.६१ लाख टन चावल

शासन के पास शेष रहा, अर्थात् ९४ फिसदी चावल का पीडीएस में वितरण हो गया।

तालिका ०२ : विगत पाँच वर्षो में गेहूँ खरीदी व पीडीएस में वितरण

WHEAT			(Quantity in Lakh MT)	
KMS	**Purchasing**	**Distribution**	**Balance**	**Dist Percent**
2016-17	229.62	289.98	-60.36	126%
2017-18	308.25	253.33	54.92	82%
2018-19	357.95	314.71	43.24	88%
2019-20	341.32	272.76	68.56	80%
2020-21	389.92	367.87	22.05	94%

स्रोत : भारत सरकार, उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय, मासिक प्रतिवेदन, मार्च २०२२, नई दिल्ली, पृष्ठ ०९ तथा विभागीय बेबसाईट, भारतीय खाद्य निगम में उपलब्ध विगत दस वर्षों के उपार्जन का आँकड़ा।

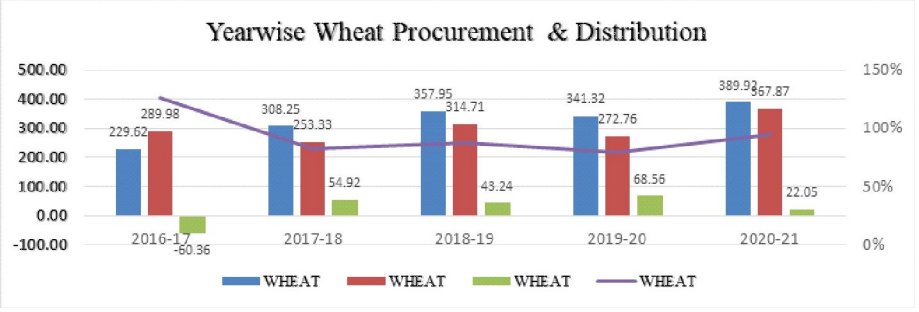

उपर्युक्त तालिका व ग्राफ के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि वर्ष २०१६-१७ में २२९.६२ लाख टन गेहूँ की खरीदी किया गया, जिसमें सभी गेहूँ का वितरण उपरान्त ६०.३६ लाख टन अतिरिक्त गेहूँ का वितरण किया गया, अर्थात् २६ फिसदी अधिक वितरण हुआ। वर्ष २०१७-१८ में ३०८.२५ लाख टन गेहूँ खरीदी में से २५३.३३ लाख टन पीडीएस के तहत वितरण किया गया, अर्थात् खरीदी गयी मात्रा के ८२ फिसदी गेहूँ का पीडीएस के तहत वितरण हुआ। इसी प्रकार, वर्ष २०१८-१९ में ३५७.९५ में से ३१४.७१ लाख टन गेहूँ का पीडीएस में वितरण हुआ, जो कि कुल खरीदी का ८८ फिसदी था। वर्ष २०१९-२० में ३४१.३२ लाख टन गेहूँ की खरीदी किया गया था, जिसमें से २७२.७६ लाख टन गेहूँ का पीडीएस में वितरण हुआ, जो कि कुल खरीदी का ८० फिसदी था। वर्ष २०२०-२१ में ३८९.९२ लाख टन की खरीदी में से ३६७.८७ लाख का वितरण अर्थात् ९४ फिसदी गेहूँ का पीडीएस में वितरण हो गया।

तालिका ०३: विगत पाँच वर्षो में मोटा अनाज की खरीदी मात्रा

COURSE GRAIN (QTY IN THOUSAND MT)	
KMS	Procurement
2016-17	72
2017-18	70
2018-19	218
2019-20	432
2020-21	478

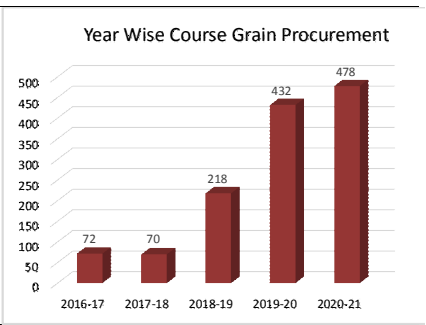

स्रोत: भारत की आर्थिक समीक्षा प्रतिवेदन वर्ष २०२०-२१, पृष्ठ २५९

उपर्युक्त तालिका एवं ग्राफ के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि भारतीय खाद्य निगम के द्वारा वर्ष २०१६-१७ में ७२ हजार टन, २०१७-१८ में ७० हजार टन, २०१८-१९ में २१८ हजार टन, २०१९-२० में ४३२ हजार टन, २०२०-२१ में ४७८ हजार टन मोटे अनाज का उपार्जन किया गया है। मोटे अनाज के उपार्जन में २०१६-१७ की अपेक्षा २०१८-१९ में ३ गुणा वृद्धि, जबकि २०१९-२० एवं २०२०-२१ में ६ से ७ गुणा वृद्धि देखने को मिलती है।

आपदा में सहायक : सार्वजनिक वितरण प्रणाली एक तरफ गरीबों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करती है, तो वहीं प्राकृतिक आपदा तथा विपरीत परिस्थितियों में भी राशन-सामग्री उपलब्ध कराया जाता है। कोरोना महामारी के दौरान प्रभावितों को खाद्य सुरक्षा के उद्देश्य से 'प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना' के तहत छह चरण में राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम के लाभार्थियों को प्रतिव्यक्ति ५ किलोग्राम अतिरिक्त खाद्यान्न नि:शुल्क उपलब्ध कराया गया है। भारत सरकार द्वारा माह अप्रैल २०२० से माह सितम्बर २०२२ तक के लिए कुल ११२१ लाख टन खाद्यान्न का आवण्टन जारी किया जा चुका है। वर्ष २०२०-२१ में क्रमश: २०७.६६ लाख टन चावल एवं १०७.५० लाख टन गेहूँ का वितरण किया गया है।

छत्तीसगढ़ सार्वजनिक वितरण प्रणाली व खाद्य-प्रबंधन : छत्तीसगढ़ राज्य भारत के मध्यप्रदेश राज्य से अलग होकर १ नवम्बर, २००० को सृजित राज्य है। यह भौगोलिक दृष्टि से एक भूआवेष्ठित राज्य है, जो चारों ओर से किसी अन्य देश की सीमाओं से नहीं लगा हुआ है, जबकि समीपवर्ती ७ राज्यों से जुड़ा हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से अक्षांशीय विस्तार १७.४६ से २४.५० एवं ८०.१५ से ८४.२५ पूर्वी देशांतर है। राज्य का क्षेत्रफल १,३५,१९१ वर्ग किमी है, जो कि भारत के क्षेत्रफल का ४.११ प्रतिशत है। २०११ की जनगणना के अनुसार, राज्य की जनसंख्या २.५५ करोड़ है, जो कि भारत की जनसंख्या का २.११ प्रतिशत है। प्रशासनिक दृष्टि से यह राज्य ३३ जिला एवं १४९ विकासखण्डों में विभाजित है।

छत्तीसगढ़ में राशनकार्ड की स्थिति : सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत राज्य के चिह्नांकित परिवारों को खाद्य अधिकार पुस्तिका/राशनकार्ड जारी कर पात्रतानुसार चावल, गेहूँ, चना, शक्कर, नमक, गुड़ तथा केरोसिन इत्यादि का वितरण किया जाता है। वर्तमान में राज्य में ०५ प्रकार के राशन कार्ड प्रचलन में हैं।

तालिका ०४ : छत्तीसगढ़ में राशनकार्ड व हितग्राही संख्या

क्र.	राशनकार्ड	रंग	राशनकार्ड		हितग्राही	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1	**प्राथमिकता**	लाल	48.15	66.55%	189.10	72.24%
2	**अन्त्योदय**	पीला	14.40	19.90%	42.21	16.13%
3	**निराश्रित**	स्लेटी	0.38	0.53%	0.38	0.15%
4	**निःशक्तजन**	काला	0.14	0.19%	0.15	0.06%
5	**सामान्य**	सफेद	9.28	12.83%	29.92	11.43%
			72.35		261.76	

स्रोत : छत्तीसगढ़ राज्य शासन, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय विभाग, आधिकारिक बेबसाईट https://khadya.cg.nic.in/janbhagidari.

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि छत्तीसगढ़ में प्राथमिक राशनकार्ड (लाल) की संख्या ४८.१५ लाख है, जिसके लाभार्थी १८९.१० लाख हैं। अन्त्योदय राशनकार्ड

(पीला) की संख्या १४.४० लाख है, जिसके लाभार्थी ४२.२१ लाख हैं। निराश्रित राशनकार्ड (स्लेटी) की संख्या ०.३८ लाख है, जिसके लाभार्थी ०.३८ लाख हैं। नि:शक्तजन राशनकार्ड (काला) की संख्या ०.१४ लाख है, जिसके लाभार्थी ०.१५ लाख हैं। सामान्य राशनकार्ड (सफेद) की संख्या ९.२८ लाख है, जिसकी लाभार्थी संख्या २९.९२ लाख है।

खाद्य-प्रबंधन में छत्तीसगढ़ पीडीएस का योगदान : धान (चावल) का प्रबंधन : छत्तीसगढ़ शासन द्वारा निर्धारित समर्थन मूल्य पर प्रतिवर्ष धान का उपार्जन/खरीदी राज्य सहकारी विपणन संघ अर्थात् मार्कफेड संस्था के माध्यम से किया जाता है। धान का क्रय नजदीकी प्राथमिक सहकारी समितियों द्वारा निर्धारित स्थल, खुले मैदान या चबूतरा में किया जाता है। धान का त्वरित उठाव हो तथा परिवहन लागत में कमी हो सके, इस दृष्टि से धान को सम्बन्धित नजदीकी पंजीकृत मिलर को मिलिंग के लिए सौंप दिया जाता है। मिलिंग उपरान्त सम्बन्धित मिलर उक्त चावल को नजदीकी भारतीय खाद्य निगम या राज्य नागरिक आपूर्ति निगम के भण्डार गृह निगम में जमा करता है जिसका उपयोग सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत खाद्यान्न वितरण में किया जाता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत चावल का वितरण : छत्तीसगढ़ में समर्थन मूल्य पर धान खरीदी किया जाता है, जिसे मिलिंग कर चावल प्राप्त होता है, जिसे पीडीएस योजना के तहत जारी राशनकार्ड में पात्रतानुसार वितरित किया जाता है। उल्लेखनीय है कि धान की मिलिंग करने से प्राप्त चावल धान का ६७% होता है। निम्न तालिका में वर्षवार चावल वितरण में आँकड़े को दर्शाया गया है–

तालिका ०५ : छत्तीसगढ़ पीडीएस के तहत चावल का वितरण

Year	Paddy Procurement	Get rice from paddy	Consumed in PDS	Balance rice	Consumption Percentage
2016-17	69.59	46.63	20.46	26.17	44%
2017-18	56.89	38.12	19.92	18.20	52%
2018-19	80.38	53.85	20.33	33.52	38%
2019-20	83.94	56.24	22.90	33.34	41%
2020-21	92.00	61.64	30.21	31.43	49%

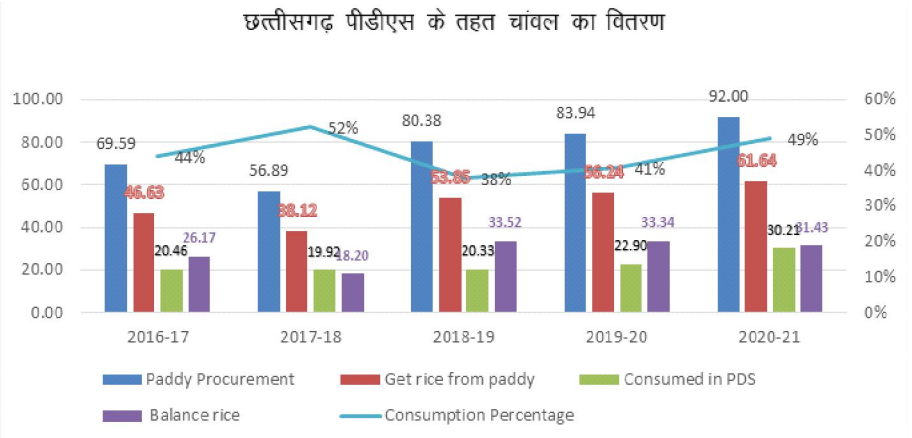

स्रोत : छत्तीसगढ़ आर्थिक सर्वेक्षण २०१९-२० एवं २०२१-२२ तथा छ.ग. सहकारी विपणन संघ के आधिकारिक वेबसाईट से प्राप्त आँकड़ा।

उपर्युक्त तालिका एवं ग्राफ के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि छत्तीसगढ़ राज्य में वर्ष २०१६-१७ में ६९.५९ लाख टन धान की खरीदी की गयी, जिससे मिलिंग उपरान्त ४४.६३ लाख टन चावल प्राप्त हुआ। इसमें से २०.४६ लाख टन चावल का पीडीएस योजना में खपत हुआ, अर्थात् ४४ प्रतिशत चावल का पीडीएस में खपत हुआ। इसी प्रकार, वर्ष २०१७-१८ में ५६.८९ लाख टन धान की खरीदी की गई, जिससे मिलिंग उपरान्त ३८.१२ लाख टन चावल प्राप्त हुआ। इसमें से १९.९२ लाख टन चावल का पीडीएस योजना में खपत हुआ, अर्थात् ५२ प्रतिशत चावल का पीडीएस में खपत हुआ। इसी प्रकार, वर्ष २०१८-१९ में ८०.३८ लाख टन धान की खरीदी की गयी, जिससे मिलिंग उपरान्त ५३.८५ लाख टन चावल प्राप्त हुआ। इसमें से २०.३३ लाख टन चावल का पीडीएस योजना में खपत हुआ, अर्थात् ३८ प्रतिशत चावल का पीडीएस में खपत हुआ। इसी प्रकार, वर्ष २०१९-२० में ८३.९४ लाख टन धान की खरीदी की गर्यी, जिससे मिलिंग उपरान्त ५६.२४ लाख टन चावल प्राप्त हुआ। इसमें से २२.९० लाख टन चावल का पीडीएस योजना में खपत हुआ, अर्थात् ४१ प्रतिशत चावल का पीडीएस में खपत हुआ। इसी प्रकार, वर्ष २०२०-२१ में ९२.०० लाख टन धान की खरीदी की गयी, जिससे मिलिंग उपरान्त ६१.६४ लाख टन चावल प्राप्त हुआ। इसमें से ३०.२१ लाख टन चावल का पीडीएस योजना में खपत हुआ, अर्थात् ४९ प्रतिशत चावल का पीडीएस में खपत हुआ।

अन्य खाद्यान्न का वितरण : छत्तीसगढ़ पीडीएस के तहत राशनकार्डधारियों को चावल के अतिरिक्त शक्कर, आयोडाइज्ड नमक, चना, गुड़ एवं केरोसिन की भी पात्रता है। आर्थिक सर्वेक्षण प्रतिवेदन में शक्कर, नमक एवं चना-वितरण का आँकड़ा दिया गया है, जो कि निम्नानुसार है–

तालिका ०६ : छत्तीसगढ़ पीडीएस में अन्य खाद्यान्न का वितरण

क.	सामग्री	2016-17		2017-18		2018-19		2019-20		2020-21		औसत	
		आबंटन	उठाव	आबंटन	उठाव	आबंटन	उठाव	आबंटन	उठाव	आबंटन	उठाव	आबंटन	उठाव
1	शक्कर	72555	68771	63213	59244	68697	65719	68310	65066	68106	67137	**68176**	**65187**
2	नमक	102645	96122	97463	92448	97321	93679	57062	54449	96351	94205	**90168**	**86181**
3	चना	60209	45978	51037	49294	58048	54052	37018	35320	40510	40054	**49364**	**44940**

स्रोत : छत्तीसगढ़ आर्थिक सर्वेक्षण २०१९-२० एवं २०२०-२१

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि छत्तीसगढ़ राज्य में अन्य खाद्यान्नों के अन्तर्गत शक्कर, नमक एवं चना का वितरण किया गया है, जिसके अन्तर्गत विगत २०१६-१७ से २०२०-२१ तक के पाँच वर्षो के आवण्टन व उठाव के औसत विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि प्रतिवर्ष औसतन ६५१८७ टन शक्कर का वितरण पीडीएस के तहत किया जाता है। इसी प्रकार, ८६१८१ टन नमक का औसत वितरण एवं ४४९४० टन चना का वितरण पीडीएस प्रणाली के तहत किया गया है।

छत्तीसगढ़ पीडीएस में खाद्यान्नों का प्रबंधन : छत्तीसगढ़ पीडीएस योजना के तहत खाद्यान्न-आपूर्ति की सम्पूर्ण जिम्मेदारी राज्य आपूर्ति निगम की है। निगम द्वारा मार्कफेड द्वारा उपार्जित धान को मिलिंग उपरान्त चावल के रूप में खरीदी किया जाता है, जिसके अन्तर्गत औसतन ४५ फिसदी चावल की खरीदी राज्य के लाभार्थियों को वितरण हेतु राज्य निगम द्वारा ही कर लिया

जाता है। अधिशेष मात्रा की खरीदी भारतीय खाद्य निगम द्वारा किया जाता है। राज्य में गेहूँ का न्यून उत्पादन होता है, अत: गेहूँ का वितरण एफसीआई से खरीद कर किया जाता है, यद्यपि वर्तमान में गेहूँ का वितरण नहीं किया जा रहा है। शक्कर की खरीदी राज्य के सहकारी शक्कर कारखानों से की जाती है, जबकि नमक एवं चना का वितरण खुली निविदा से क्रय कर हितग्राहियों में किया जाता है।

अतिशेष चावल का निपटान : किसानों से खरीदे गये धान को चावल में परिवर्तित कर पीडीएस के तहत जरूरतमन्दों को वितरित किया जाता है। उसकी शेष मात्रा को भारतीय खाद्य निगम द्वारा खरीदी किया जाता है। इस प्रकार, बहुतायत उपज का पीडीएस में वितरण/खपत हो जाता है। इसके बाद भी यदि धान शेष रह जाता है, तो अतिशेष धान/चावल से एथेनॉल निर्माण करने की परियोजना पर राज्य सरकार प्रयासरत है। किन्तु राज्य के अतिशेष धान/चावल से एथेनॉल निर्माण हेतु कोई प्रावधान नहीं होने के कारण यह परियोजना सफल नहीं हो पायी है। यदि चावल अतिशेष हो, तो अतिरिक्त मात्रा को सीधे विदेशों में निर्यात भी किया जाता है। वर्ष २०१९-२० में १८२७ करोड़ रु. का चावल निर्यात किया गया था, जबकि वर्ष २०२०-२१ एवं २०२१-२२ में क्रमश: ५४८७.१६ व ८५५९.१२ करोड़ रु. का चावल निर्यात किया गया है, अर्थात् वर्ष २०१९-२० की तुलना में क्रमश: ३.०० गुणा व ४.६८ गुणा की वृद्धि दर्ज हुई है।

छत्तीसगढ़ मिलेट मिशन : भारत की माँग एवं मंशानुसार, संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष २०२३ को पौष्टिक अनाजों का वर्ष घोषित किया गया है। इसी क्रम में; छत्तीसगढ़ में भी कोदों, कुटकी और रागी जैसे मोटे अनाजों की उपज को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सितम्बर २०२१ से मिलेट मिशन की शुरूआत की गई है। सरकार की मंशानुसार, मोटे अनाज का उपयोग कुपोषण से लड़ने के लिए किया जाएगा। भविष्य में, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत, गरीबों को मोटे अनाजों का भी वितरण किया जा सकेगा। इस योजना के सफल संचालन के लिए बस्तर में मिलेट प्रसंस्करण केन्द्र की स्थापना की गई है।

अध्ययन का निष्कर्ष : सार्वजनिक वितरण प्रणाली के संचालन के परिणामस्वरूप किसानों से न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीदे गए खाद्यान्न की सुरक्षा-व्यवस्था, प्रबंधन, वितरण तथा जरूरतमन्दों तक पहुँच सम्भव हो सका है एवं इस प्रणाली में एक नए समीकरण का निर्माण होता प्रतीत हो रहा है– उचित मूल्य बराबर उचित मूल्य (MSP Fair Price = PDS Fair Price), अर्थात् किसानों से उनकी उपज को उचित मूल्य में खरीदकर जरूरतमन्दों को उचित मूल्य में उपलब्ध कराया जा रहा है। यही खाद्य सुरक्षा का मूलमंत्र भी है, जो कि सतत् विकास के दूसरे लक्ष्य– शून्य भूखमरी– को हासिल करने के लिए आवश्यक है।

उल्लेखनीय है कि भारतीय खाद्य निगम द्वारा अति उत्पादक राज्यों से निर्धारित मात्रानुसार अनाजों की खरीदी कर अल्प उत्पादक राज्यों को उपलब्ध कराया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप पूरे देश में खाद्यान्न की आपूर्ति सम्भव हो पाती है। छत्तीसगढ़ राज्य में चावल का अतिशेष उत्पादन होता है, जबकि शेष अनाज का अल्प उत्पादन। इस प्रकार के अति उत्पादक तथा अल्प उत्पादक खाद्यान्नों का संतुलन बनाने में भारतीय खाद्य निगम सेतु का काम करता है।

भारतीय खाद्य निगम द्वारा उपार्जित अनाज– चावल/गेहूँ में से ८० से ९० फिसदी अनाज का उपयोग पीडीएस के लिए होता है, जबकि छत्तीसगढ़ राज्य में ४० से ४५ फिसदी चावल का उपयोग पीडीएस में होता है। अब मिलेट मिशन के तहत खरीदे जा रहे मोटे अनाज को भी

कुपोषण से लड़ने हेतु सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत उपयोग किया जा सकेगा।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

१. रीना मजूमदार, प्रमोद यादव एवं बिसनाथ कुमार– छत्तीसगढ़ राज्य में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का एक प्रशासनिक अध्ययन, दृष्टिकोण प्रकाशन, दिल्ली, अंक २, मार्च-अप्रैल २०२१, पृष्ठ ६३२-६३५.

२. धर्मवीर महाजन एवं कमलेश– सामाजिक अनुसंधान का प्रणाली विज्ञान, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, पृष्ठ १५२-१५९, (२०१९)

३. भारत सरकार– उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय, मासिक प्रतिवेदन, मार्च २०२२, नई दिल्ली, पृष्ठ ०९.

४. भारतीय खाद्य निगम की आधिकारिक वेबसाईट : fci.gov.in.Accessed on 11-11-2022

५. भारतीय खाद्य निगम की आधिकारिक वेबसाईट : https://fci.gov.in/procurements.php?view=297.

६. भारत सरकार– वित्त मंत्रालय, आर्थिक समीक्षा प्रतिवेदन, पृष्ठ २५९ (२०२०-२०२१)

७. छत्तीसगढ़ शासन– खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय विभाग, आधिकारिक वेबसाईट https://khadya.cg.nic.in/janbhagidari, Accessed on 23-10-2022 at 7.48 pm.

८. छत्तीसगढ़ शासन– सहकारी विपणन संघ की आधिकारिक वेबसाईट, http://markfed.cg.nic.in.

९. छत्तीसगढ़ शासन– संचालनालय आर्थिक एवं सांख्यिकीय विभाग, आर्थिक सर्वेक्षण प्रतिवेदन, पृष्ठ ५६ (२०२१-२२)

१०. छत्तीसगढ़ शासन– संचालनालय आर्थिक एवं सांख्यिकीय विभाग, आर्थिक सर्वेक्षण प्रतिवेदन, पृष्ठ ६५ (२०१९-२०)

११. छत्तीसगढ़ राज्य शासन– संचालनालय आर्थिक एवं सांख्यिकीय विभाग, आर्थिक सांख्यिकी संक्षेपिका प्रतिवेदन, पृष्ठ २२ (२०१९-२०)

१२. वही– पृष्ठ १४-२५.

१३. भारत सरकार– उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय, वार्षिक प्रतिवेदन, नई दिल्ली, पृष्ठ २२-४४ (२०२१-२२)

१४. भारत सरकार– उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय, वार्षिक प्रतिवेदन, नई दिल्ली, पृष्ठ २७-४६ (२०२०-२१)

१५. छत्तीसगढ़ राज्य शासन– जनसम्पर्क विभाग, जनमन पत्रिका, सितम्बर २०२२, पृष्ठ ७-८.

१६. भारत सरकार– वित्त विभाग की आधिकारिक बेबसाईट https://www.indiabudget.gov.in/budget2021-22/economicsurvey. Accessed on 19-10-2022.

१७. https://dashboards.sdgindex.org/profiles/india,Accessedon१४.११.२०२२

१८. भारत सरकार– नीति आयोग की आधिकारिक बेबसाईट https://sdgindiaindex.niti.gov.in, Accessed on १४.११.२०२२

●

Digital Literacy Among the Elderly
Challenges and Opportunities

Dr. Anuradha Bapuly*

Abstract: As the world is moving toward a more technology-oriented lifestyle it has become obvious that digital literacy helps in improving the standard of living. Almost all the basic services are digitally available. To avail these services, it is important that everyone is digitally literate to some degree. The elderly population has found it difficult to adapt to new technologies and find it difficult to learn. There are many preconceived notions because of which they are reluctant to use digitally available services. This reluctance means that the elderly population is mostly unaware of the government-run schemes and must rely on others to get things done at government offices and banks. This reluctance does not help them from falling prey to phishing and scams. But in the last couple of years, we have seen that the adoption of technology and digitally available services has increased manifold when compared to previous years. Also, the government along with NGOs is working toward digital literacy. In recent times, even family members have understood the importance of digital literacy for elderly family members. Digital literacy of the elderly population brings in many opportunities in terms of plugging the leakages in social security, avail medical facilities, interacting with family members, and in contributing to the society.

Keywords- Elder, Digital Literacy, Digital Illiteracy, Information and Communication Technology, Digital Skills, Digitalization, Social Engineering

Introduction : India is home to 16% of world's population. According to National Statistical Office (NSO), the population of Senior Citizens in India had touched 138 million in 2021. This number has been constantly increasing since the census of 1961 and the main factor attributed to this phenomenon is the decrease in the death rate due to better medical facilities. The elderly population is expected to keep increasing and according to the projection of NSO, the population will touch 193 million by 2031. The proportion of the elderly population was 8.6 percent in 2011, which has projected to be 10.1 percent in 2021 and likely to reach 13.1 percent in 2031.[1] As the elderly population is increasing, so is the need for greater care and assimilation in the society. According to a projection, Kerala (16.5 percent) has the highest proportion of elderly people in the Indian population. Elderly population is quite vulnerable, and they need

* Assistant Professor– Department of Sociology, Vasant Kanya Mahavidyalaya, Kamachha, Varanasi, U.P.

the support of the government, society, and the family for sustenance. The elderly population also needs the Social Security the most.

Introduction to Digital Literacy

A person is called literate if he or she can read or write. Digital literacy includes lot more than just literacy. According to Microsoft: "*Digital literacy is the ability to navigate our digital world using reading, writing, technical skills, and critical thinking. It's using technology—like a smartphone, PC, e-reader, and more—to find, evaluate, and communicate information.*" The American Library Association's digital-literacy task force offers this definition: "*Digital literacy is the ability to use information and communication technologies to find, evaluate, create, and communicate information, requiring both cognitive and technical skills.*"

Information and Communication Technology (ICT) encapsulates devices such as computers, mobile phones, tablets, ATMs, eReaders, smart TVs, Wi-Fi enabled digital cameras etc. that have the ability to communicate and transfer information among each other. These devices use network protocols to communicate with each other. The devices may use optical cables or wireless signal while sending data. The data that is transmitted can be in the form of plain text, voice, images, or videos.

Digital Literacy is relatively a new concept which became part of public parlance with the advent of Internet or World Wide Web (WWW). Initiated as defence funded project for US Department of Defence, the World Wide Web was freed of any restriction for commercial use in 1995. Since then, the internet use has grown exponentially. According to data provided by the World Bank, in 1990 only 0.05% of the world used internet (mostly for research), the number had reached 60% in 2020.[2] According to the 'ICUBE-2020' report by IAMAI and Kantar, India had 622 million internet users which is expected to cross 900 by 2025.[3] The report further says that "*Mobile phone has been the key driver for growth of internet in India. All the active internet users use mobile phones to access internet*".

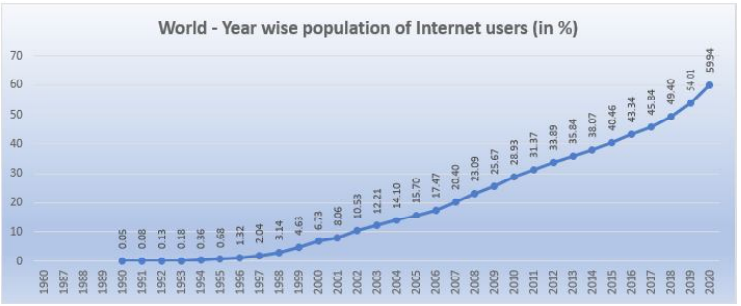

Chart 1: International Telecommunication Union (ITU) World Telecommunication/ ICT Indicators

As most of the banking and government services are going digital, it is expected that the user of these services will be digitally literate. India has recently seen a widespread use in the digital payment systems, and this also requires the user to have the basic level of digital literacy.

Gerontology in Indian context : The Gerontological Society of America defines Gerontology as the study of the various aspects of aging including mental, social and societal implications of aging. As the elderly population is increasing in terms of proportion in the population due to higher life expectancy, it has become important to look deeper into the aspects that affect the life of the elderly. Population of the elderly has been steadily increasing since 1961. The addition to the elderly population was more than 27 million between 2001 and 2011. As per the *Population Census Data and Report* of the **Technical Group on Population Projections, November 2019**, the elderly population touched 138 million in 2021, and it is expected to reach 194 million in 2031.[4] While the more developed states like Kerala and Tamil Nadu have seen the transition to higher proportion of senior citizens in the population, in the states like Uttar Pradesh and Bihar the transition has been slower due to higher mortality and fertility rates.

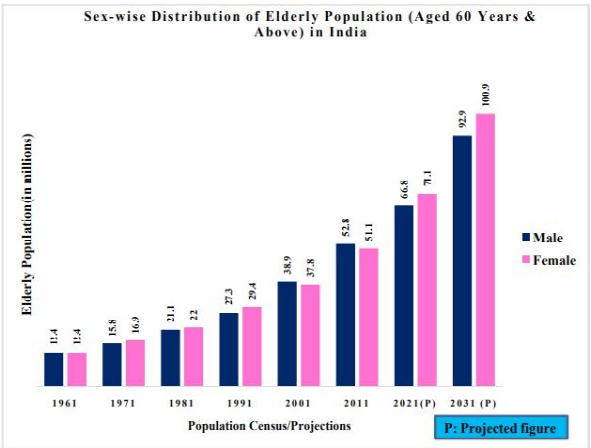

Chart 2: Elderly Population in India. Source: Elderly in India 2021, Dept. of Statistics and Programme Implementation, Government of India

Until very recently, Indian society was heavily based on joint family system and the population was majority rural. India has seen rapid pace of urbanization in the last 60 years. In 1961, 82% population lived in rural areas which has come down to 65% in 2021. According to the census of 2011, 68 percent of rural households and 71 percent of households in the urban areas did not have any elderly member (age 60 years or more). As the rural population is shifting towards cities for better education, employment and economic opportunities, elderly members of the family are being left behind. The old age dependency ratio has also increased from 10.9% in 1961 to 14.2% in 2011, and this number is expected to further rise to 20.1% in 2031. According to the NSS 75th Round: Social Consumption on Health in India conducted during 2017- 18, about 70 per cent of the aged persons

had to depend on others for their day-to-day maintenance.

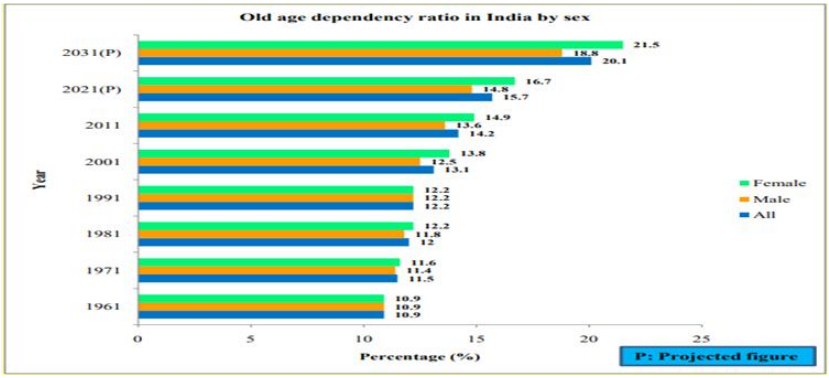

Chart 3: Old age dependency ratio in India by sex. Source: Elderly in India 2021, Dept. of Statistics and Programme Implementation, Government of India

A major factor for high dependency ratio among the elderly population is illiteracy. As per the NSS report of 2017-18, 41.9% of the elderly population was illiterate. This number is going to come down in coming years as India's literacy rate has also increased quite significantly in the last three decades.

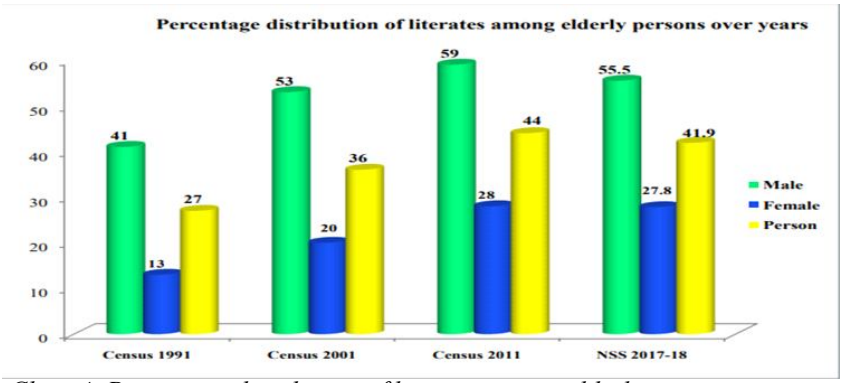

Chart 4: Percentage distribution of literates among elderly persons over years. Source: Elderly in India 2021, Dept. of Statistics and Programme Implementation, Government of India

As the literacy and penetration of internet are increasing, it has become imperative that the services are provided over the internet so that the services can seamlessly reach the wider population.

Moving towards a digital age : The central and state governments are moving fast to adapt a model where most of the services are provided digitally. Almost all the social security services of the government are relying on Direct Benefit Transfer (DBT) and the beneficiaries are expected to hold a bank account. This model requires the beneficiary to be able to track the transactions and check the account balance. In the financial year 2021-22, a sum of ₹ 6,30,264 crore was disbursed for various

social security schemes through DBT.[5] With every passing year the coverage is also increasing. This helps the Government to reach out to the actual beneficiaries and root out the middlemen. It also helps in eliminating ghost beneficiaries.

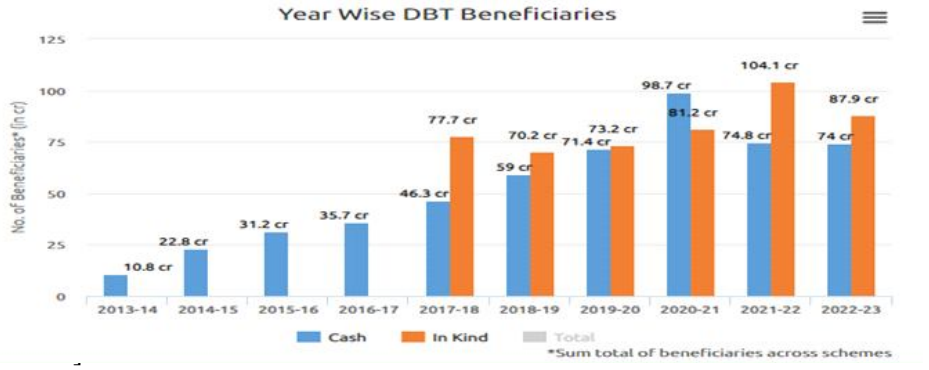

Chart 5: Year wise DBT beneficiaries. Source: Direct Benefit Transfer, Government of India, https://dbtbharat.gov.in/

According to the NSS 75th round report on Household Social Consumption on Education in India, only 1.7 percent of the population above 60 years could use a computer. This number has grown a few folds since then, but the number is abysmally small when compared to the developed countries.[6]

Also, the recent COVID pandemic forced senior citizens to move online for banking related transactions. It is not always possible for Senior Citizens to visit a branch of the bank, wait in the queues and withdraw cash. They rely on Debit Card at ATMs to withdraw cash or make payment at the Point of Sale (POS). Even the use of debit card at ATM or POS requires the user to be digitally literate. The number of transactions that were processed through the Unified Payment Interface (UPI) were just 274 million in July 2018, this number had jumped to 6288 million (July 2022) in just 4 years.[7] More and more businesses are preferring UPI over cash and the Senior Citizens also are becoming part of this digital revolution.

The pandemic caused a major digital shift towards messaging and video meeting Apps as the families were forced to stay away from each other for a long period of time. People have started using WhatsApp, Zoom, Microsoft Teams, Skype, and many other Apps to connect to the aged parents and other family members who live in faraway places. To keep in touch with their parents, the children who are living in faraway places had to nudge their parents towards the messaging and videoconferencing Apps.[8]

There has also been a push towards online delivery Apps in the last few of years. Even though the phenomenon is mainly seen in the urban areas, but the rural areas haven't remained untouched from it. There are many delivery Apps that cater specifically to the senior citizens. There is an App, HomeFoodie, which delivers home cooked food to senior citizens.

Then we have an e-Store, Seniority, which delivers curated products specifically to senior citizens. There are also apps such as NaniGhar and MilkBasket who have adopted themselves to take delivery orders from senior citizens.

In the last few years, the rate of interest on the Senior Citizens Savings Scheme has come down drastically. To beat the rate of inflation, the senior citizens have started investing a sizable chunk of their corpus into mutual funds and stock market. This is also helped by the Apps and portals of new-age brokerage firms which allow creation of DEMAT accounts in minutes.

Opportunities offered by the digital world : The society has received a lot from the Senior Citizens during their prime. It is imperative that the society becomes inclusive and does everything that can help the senior citizens to adopt technology without much struggle.

A study, The Positive Ageing Report – 2021, conducted by Columbia Pacific Communities, found that the elderly urban Indian population spends 20% of time on social media every day.[9] The study was conducted in Bengaluru, Delhi, Hyderabad, Mumbai, and Pune. This is more than any other age group. The study also found that 36%s of women above 60 years of age spend over 4 hours on social media platforms such as Facebook, WhatsApp, and Twitter. Through social media platforms the senior citizens not only maintain contact with their families, but also with former classmates, instructors, and co-workers. Senior citizens use technology to learn new skills, through YouTube or Facebook groups where like-minded people share their expertise.

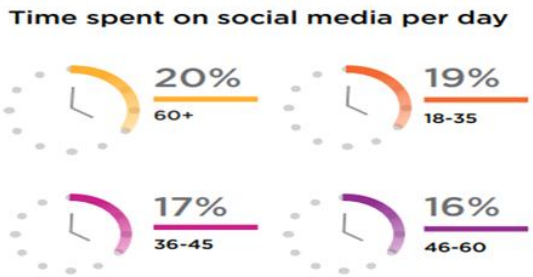

There is a plethora of opportunities that the digital world offers to the elderly population, they are:

- **Health Monitoring:** There are many devices (such as smart watches, oximeters, blood pressure measuring devices, blood sugar monitors etc.) and Apps that can track health related data in real time.
- **Online Health Records:** It is very important for the doctors to know the health-related history of the patient to provide quality healthcare. Hospitals have started using Apps to store health records of the patients. Even Government of India has developed a Personal health Management System, MyHealthRecord, which provides single point of access for consolidated health information.[10]
- **Online Consultation:** There are many Apps which have tied up with the doctors to provide online consultation. Even medicines can be ordered online through these Apps.

- **Doorstep Sample Collection:** Patients can even book lab tests online. The technicians come to the patient's doorstep to collect samples.[11] The patients are sent the test result through WhatsApp.
- **Digital Payment:** Digital payment and banking Apps have reduced the need to visit banks.
- **Online Utility Bill Payment:** Digital payment Apps can also be used for payment of insurance premiums. These Apps can also be used for payment of telephone, electricity, DTH and water bills.
- **Healthy Living:** There are many Apps which provide fitness related courses and Yoga training.
- **Investment:** Many Registered Investment Advisors (RIA) offer wealth management services online. Senior Citizens can avail these services and invest in various securities based on their risk appetite.
- **Entertainment:** Seniors can spend their leisure time on OTT platforms. Antara State of Seniors survey found that 65.7% of seniors use Amazon Prime followed by Netflix, News Channels and YouTube.[12]
- **Gaming:** To pass their leisure time, many senior citizens have started using gaming APPs such as Ludo King, Carrom King and Sudoku. Even the most popular chess websites such as Chess.Com and ChessBase.Com have special features for elderly.

Challenges involved in the Digital switch : It is not easy to change any habit, more so, when the shift is towards technology. But a huge challenge for senior citizens is Social Engineering. Social engineering is not a direct attack on the computing device, but a tactic to persuade the user to take certain actions which may lead to data, access, or financial loss.

According to Norton, one of the top anti-virus software product companies, there are ten types of malwares. Malware is an abbreviated form of "malicious software." It is very important that the user of a computing device understands the risks involved with malwares. The user must also know how to protect their devices.

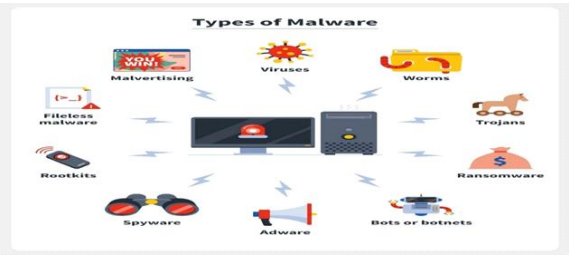

According to KnowBe4, a security training company, the common methods of social engineering are:

- **Pretexting:** Attacker has the basic information (such as name, date of birth and account) number about the victim and uses that to call and convince the victim to divulge more personal information.
- **Phishing:** Attacker sends bulk innocuous looking emails to a host of people imitating a trustworthy entity and tries to extract sensitive information such as username, password, and card details.

- **Quid Pro Quo:** The attacker convinces the potential victim to give access to the computer or turn off the anti-virus and places malware in the system
- **Diversion Theft:** The thieves would look out for an opportunity to redirect mails to another address and use the sensitive data to commit fraud. Redirecting couriers containing credit/debit card and PIN to another address is one such example.
- **Spear Phishing:** Email is sent just to a single recipient with information specific to that person. When the user clicks on the link sent with the email, the attacker places malware into the computer.
- **Baiting:** The attacker may leave a USB drive at a convenient location and if somebody picks that USB drive and inserts into the computer then the computer gets infected with a malware or ransomware.
- **Tailgating:** The attacker may follow another person to get access to restricted areas or can simply take note of the keys pressed by the potential victim while entering username and password.
- **Rouge:** A fake software that deceives a user to pay for it and assuming that it is an anti-virus, anti-malware, or anti-spyware.

According to National Council on Aging, Virginia, USA, the top ten financial scams adopted by the fraudsters to target the elderly are:

1. Government importer scams, 2. The grandparent scams, 3. Medicare/healthcare insurance scam, 4. Computer tech support scam, 5. Sweepstakes and lottery scam, 6. Robocalls/phone scams, 7. Romance scam, 8. Internet and email scam, 9. Elder financial abuse, 10. Charity scam

Most of the points listed by KnowBe4 and National Council on Aging are common. Not just the general population, but even the elderly users of computer and internet are targeted using these tactics. Hence it becomes very important that the senior citizens are well equipped to tackle these challenges. An article published by Business Standard quoted Tsaaro survey which found that Senior Citizens are the most frequent victims of social engineering. The survey found that "the elderly have a low awareness of privacy issues and are unable to protect their personal information online".[13]

Motive of Social Engineering

Source: www.techtarget.com

Digital literacy can create an inclusive digital world : To capitalize on the opportunities and overcome the challenges, it is very important to

take up digital literacy. Not just the Non-Governmental Organizations (NGOs) and the government, but even the family members should take steps towards making senior citizens digitally literate. Contribution of few of the NGOs towards digital literacy of the senior citizens:

Agewell Foundation has been running a digital literacy program for older persons since 2016 to empower and make them computer literate. This initiative is supported by ORACLE under their CSR program.[14]

Samvedna Senior Care Foundation is one more NGO which trains seniors in technology through use of smartphones and internet. They work with other NGOs and their workshops have open participation format.[15]

Helpage India conducts digital literacy classes for elderly empowerment. The NGO provides training to use a smartphone, make online transactions or make online bookings. The NGO is associated with 5000 Senior Citizens Associations (SCAs) and they have conducted over 1300 online workshops on digital literacy, legal and financial awareness.[16]

Government of India's ministry of IT through its e-governance arm, Common Services Centre (CSC), partners with NGOs to provide digital literacy to senior citizens. There have been instances where CSC has even partnered with newspapers, such as The Statesman, to impart digital literacy training.

Private citizens are also pitching in with efforts to train the senior citizens. There are a few like Shreya and Surbhi Agarwal who founded a service, Easy Hai, which focuses on training the senior citizens on using mobile and computers. The conduct Zoom sessions to conduct these trainings.[17]

But it is the family members who can contribute the most in making the elderly members of the family digitally literate. Nowadays we find that the younger generation is technologically quite aware. If the person is from within the family, then the elderly persons do not feel shy in asking questions and getting their doubts cleared.

Conclusion : As the world is becoming technology centric, digital literacy takes the centre stage. Without a digitally literate population, the productivity will take a beating. Digital literacy involves not just using devices such as computers, mobile phones, or tablets, but it also to keep the devices safe from attack. To make the society inclusive, it is important that the Senior Citizens become digitally literate and to achieve this many stakeholders must contribute. The state and central governments alongside many NGOs and private citizens are working towards digital literacy of the senior citizens. The family members should also contribute towards this effort.

If the Senior Citizens become digitally literate, then it will improve their self-esteem and reduce their dependence on the family members. The elderly can stay in regular touch with the other family members living abroad or in other cities and this should take away the sense of seclusion and loneliness.

References

1. Elderly in India 2021 report, Social Statistics Division, National Statistical Office, Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India
2. Individuals using the Internet (% of population), International Telecommunication Union (ITU) World Telecommunication/ICT Indicators Database, The World Bank, https://data.worldbank.org/indicator/IT.NET.USER.ZS
3. Internet Adoption in India report, ICUBE 2020, June 2021, KANTAR, Internet and Mobile Association of India (IAMAI)
4. Population Projections for India and States 2011-2036, Report of the Technical Group on Population Projections, July 2020, National Commission on Population, Ministry of Health and Family Welfare, Government of India
5. Direct Benefit Transfer, Government of India, https://dbtbharat.gov.in/
6. Household Social Consumption on Education in India, NSS 75th Round, July 2017-June 2018, National Statistical Office, Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India
7. UPI Monthly Product Statistics Trended, National Payments Corporation of India, Government of India, https://www.npci.org.in/statistics/monthly-matrix
8. The digital transformation of boomers and beyond during the pandemic, https://economictimes.indiatimes.com/intersnet/pandemic-play-a-lot-more-mid-age-users-click-on-net/articleshow/78456139.cms?from=mdr
9. The Positive Ageing Report - 2021, Columbia Pacific Communities
10. MyHealthRecord, National Health Portal, Government of India, https://myhealthrecord.nhp.gov.in
11. PharmEasy Portal, https://pharmeasy.in/diagnostics
12. Antara State of Seniors Survey, October-November 2020, Antara and Access Media International
13. Privacy among elders, Tsaaro Exclusive Survey Report, May 2022
14. Agewell Foundation portal, https://www.agewellfoundation.org/?page_id=5768
15. Samvedna Senior Care, https://www.samvednacare.org/our-work/active-ageing/digital-literacy
16. Helpage India, https://www.helpageindia.org/elderly-empowerment-in-the-digital-age-2/
17. Bengaluru sisters are making the elderly tech-savvy for just Rs. 150 per class, https://www.thebetterindia.com/235862/lockdown-senior-citizens-technology-online-elderly-class-app-learning-service-easy-hai-online-resources-ser106/

●

Impact of COVID-19 lockdown in urban slums located in the district Dehradun of Uttarakhand

Dr. Mahesh Kumar*, Dr. Rajinder Singh**

Abstract : Dehradun is the interim capital of Uttarakhand and is also known for quality education, industrial hub and as a military cantonment. Due to its attractive quality, it attracts many people from its other districts and neighbouring states, which developed slums in the district. Uttarakhand, the western Himalayan state, too has seen rapid urbanization. These attractive employment opportunities forced the people to migrate in the study area and this over migration leads urban slums in the district. The present study shows the impact of COVID-19 lockdown in urban slums in the Dehradun district of Uttarakhand. The descriptive research design used in the study and interviewed 350 respondents (1 person from each family). The study found that the majority of the respondents were illiterate. The percentage of private jobs declined after the lockdown, and respondents found self-employment and many were fired during the lockdown as now they are unemployed. The respondents' monthly income also shows a decreasing trend during the study period. Respondents shift from higher income to lower income groups. After lockdown, many respondents did not find work. At the same time, the main reason for not being employed is the unavailability of work and other problems followed by seasonal changes in the works places, family workload restricts them not to work.

Key words : Urbanisation, employment, migration, lockdown

Introduction : Today, more than half of the world's population lives in urban areas (United Nations, Department of Economic and Social Affairs, 2014). For the sake of golden opportunities, many people migrated from rural areas to urban areas. Still, many of them do not compete with the urban lifestyle, leading to the developing slums in the urban areas. The urban slums lack necessities which leads to a low level of living standard in those places. Dehradun is the interim capital of Uttarakhand and is also known for quality education, industrial hub and as a military cantonment. Due to its attractive quality, it attracts many people from its other districts and neighbouring states, which developed slums in the district. Uttarakhand, the western Himalayan state, too has seen rapid urbanization. Since its inception as a state in 2000, its low-land planar regions have been attracting a large hill population from higher reaches. This has led to increased growth of slums in low-land cities such as Dehradun, Haridwar, Kashipur, and Rudrapur. These cities house almost 69.1% of the total 0.77 million population residing in 578 slums spread across the state (Pant, 2017). In March 2019 Government of India imposed several restrictions

* Assistant Professor, Department of Economics, SGRR (PG) College Dehradun
** Department of Liberal Arts, Dev Bhoomi, Uttarakhand University

and a full lockdown in the country; on the footprints of the centre, the state government also applied many lockdowns to restrict infectious and deadly coronavirus. These restrictions are sometimes good, but these types of restrictions drastically impacted the urban slums because people had fewer savings and less food, and many lost their jobs during the COVID-19 lockdown. COVID-19 impacted the whole world. It is a very deadly pandemic in the 21st century. It impacted the whole world, while this study mainly focused on urban slums located in the Dehradun district of Uttarakhand. Experts' Initial predictions are they suggested that slum communities - densely packed, with shared water taps and an impossibility of social distancing - would be particularly hard-hit by Covid-19. Furthermore, our own research on slums, conducted over the past decade, underscores how economically vulnerable this population is, with many slum residents living just one illness away from chronic poverty (Krishna 2017, Rains and Krishna 2020). As part of new IGC research, we seek to track both the health and economic impacts of the pandemic in slums in India and to understand the strategies that slum residents have drawn on to cope with these impacts over time (Downs-Tepper, Krishna and Rains 2021). The district Dehradun is a temporary capital of the state; due to better job opportunities, people from the remote areas of the state and neighbouring states also migrate to the study area.

Review of Literature : Yet, despite such growing calls for inclusive policy responses, there is little systematic information coming from slum communities themselves. Efforts to survey slum residents are hampered by the inability of researchers to conduct face-to-face surveys during the pandemic. Most information on the pandemic-time experiences of slum residents comes from journalistic interviews of residents in a small handful of famous 'mega-slums,' such as Dharavi in Mumbai or Kibera in Nairobi (Chebet, 2020; Gettleman, 2020).

UN-Habitat puts the dangers of the pandemic to this population in blunt terms: "The impact of Covid-19 will be most devastating in poor and densely populated urban areas, especially for the one billion people living in informal settlements and slums worldwide" (UN-Habitat, 2020).

The negative social impact of COVID-19 can be life-threatening to vulnerable people. People with different occupations were affected in various ways. Their resilience and social assistance allow them to cope with the crisis to varying degrees. Social exclusion is common among urban slum residents. It inhibits slum residents from benefiting from social protections. This study also highlights that experienced CSOs should be involved to effectively provide social protections to urban slum residents. It is important to find the balance between preventing death from COVID-19 and preventing suffering and death from an economic crisis. This evidence also emphasises the importance of a holistic approach against the COVID-19 crisis to mitigate the suffering in their case study in Bangkok, Thailand (S, Pongutta, K. Kantamaturapoj, K. Phakdeesettakun, P. Phonsuk 2021)

Data and Methodology : This research is based on a descriptive research design. We selected 10 slums and interviewed 350 households (One respondent from one family) through purposive sampling from the district Dehradun of Uttarakhand. The information collected on this survey included on ration card, family type, educational qualifications, occupation, monthly income, government aid during lockdown and causes of not working. The primary data used in the study which surveyed 350 households through the interview method. The statistical data package for social sciences (SPSS) and Microsoft excel was used in the study to analyse the data.

Objective : To study the impact of COVID-19 lockdown in urban slums in Dehradun.

Result and Discussion : This part of the research article discusses the respondents' demographic, economic profiles and what kind of problems they faced after the COVID-19 lockdown.

Table 1.1: Classification of the respondent's ration cards.

Particulars	No. of Respondents	Percentage (%)
APL	189	54
BPL	161	46
Total	350	100

Sources: Primary Data

An official document entitling the holder to a ration under the national food security act (NFSA). Table (1.1) shows that 54% of the respondents had above poverty line ration cards, while 46% of the respondents were below the poverty line in the study area.

Table 1.2: Classification of the respondent's Type of Family

Particulars	No. of Respondents	Percentage (%)
Joint	167	47.7
Nuclear	154	44
Individual	29	8.2
Total	350	100

Sources: Primary Data

Table (1.2) shows the respondents' types of families in the study area. It depicts that the majority, 47.7%, of the respondents lived in a joint family (parents and dependent children), followed by 44% of the respondents living in a nuclear family (A couple and their dependent children) and the rest, 8.2% of the respondent's living individual.

Table 1.3: Educational Qualification of the respondents

Particulars	No. of Respondents	Percentage (%)
Illiterate	117	33.4
Primary	56	16
Middle school	43	12.2
High school	47	13.4
Intermediate	70	20
Graduation	11	3.1
Post-Graduation	3	0.8
Technical Education	3	0.8
Total	350	100

Sources: Primary Data

Education plays an important role in human development and is also an essential indicator of the Human Development Index (HDI). Table (1.3) shows the educational qualification of the respondents. It depicts that the majority, 33.4%, were illiterate, followed by 20% of the respondents who completed their intermediate, 16% completed their primary education, 13.4% completed their high school education, and 12.2% completed their Middle school education. Only 3.1% of respondents in the study area completed their graduation in different Streams, and 0.8% each completed their post-graduation and technical education in the study area.

Occupation : The occupation of the respondents before and after COVID is shown in the figure (1.1). It depicts in the figure that there is no farmer found in the study area. There are 18.8% daily wagers and 2.2% regular govt. Employees and 0.8% of pensioners found in the study area have not been affected by the covid pandemic, while in other sectors, i.e., the private sector before covid, 30.5% employed in this sector but after covid, this scenario has changed while only 22.8% working in the private sector. Self-employed work increased after covid, and other occupations (Hotels) also show an increasing trend, while unemployment among the urban slums also rose after covid. 9.1% of respondents were unemployed before covid, while after covid it was 12.8% of respondents replied they were unemployed during the study period.

Figure 1.1: Respondent's classification according to their occupation.

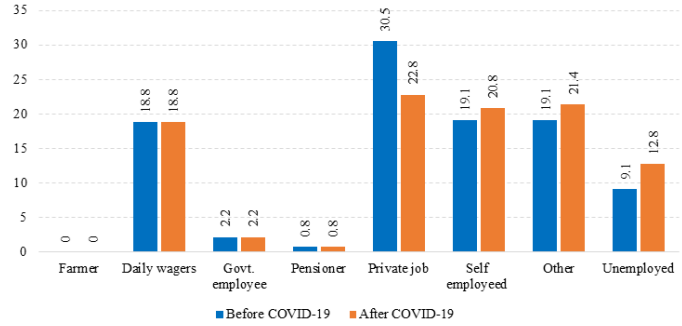

Sources: Primary Data

Income : Figure (1.2) shows the income of the respondents before and after the COVID-19 lockdown. The income of the respondents was classified in six intervals. It found that before COVID-19, it was 22.5% of respondents laid below Rs. 5000 in a month, while its percentage increased after lockdown and it was 32.5%. In between Rs. 5001-10000 income group before covid-19 lockdown there were 36.5% of the respondents earned in a month, while after the COVID-19 lockdown, the percentage of the respondents also rose in this group and reached 42%. After that, in the beyond income groups, the percentage of the respondents has decreased, which is in the Rs. 10001-

Figure 1.2: Respondent's classification according to their occupation.

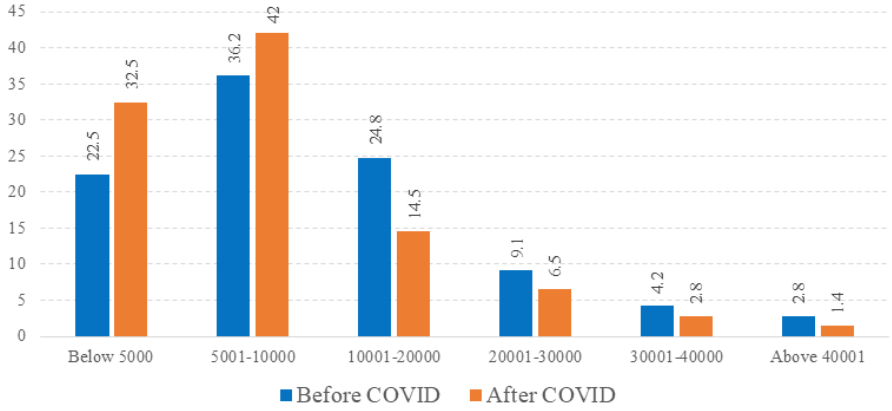

Sources: Primary Data

Aid from Government

Figure 1.3: Classifiction of government aid's beneficiries.

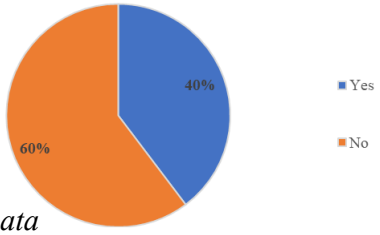

Sources: Primary Data

During the COVID-19 lockdown and after the lockdown, the central government and state government launched several schemes (free food, financial aid etc.) for the welfare of the people in the country. Figure (1.3) shows the beneficiaries of that schemes. It depicts that 60% of the respondents replied that they got these benefits, while 40% replied that they did not get them during and after the COVID-19 lockdown in the study area lockdown.

Table 1.4: List of causes for not Working after COVID-19 lockdown.

Particulars	No. of Respondents	Percentage (%)
Unavailability of work	15	33.3
Seasonal	10	22.2
Due to family workload	5	11.1
Others	15	33.3
Total	45	100

Sources: Primary Data

After the COVID-19 lockdown, many workers came to their native regions for a short period. But when the lockdown restriction was lifted, many didn't join their duties because of the unavailability of work cause after lockdown, demand for the goods shrink and companies/ firms don't want too much labour. The table (1.4) shows why some people are unemployed. It depicts that 15% of the workers did not work because there was an unavailability of work in the study area, 10% of respondents

responded that they work in seasons and during the study period season is off, 5% of the respondents responded their families did not allow them to work outside the state and 15% of the respondents replied Others (personal problems, fear,

Conclusion

Dehradun lies in the Himalayas' foothills and is Uttarakhand's interim capital. It is famous for its quality education because many prominent institutions lie in Dehradun. There are many industrial estates and IT parks in Dehradun, which attracts many people to the district, and migration is also a cause of concern and plays a role in the urban slums. Urban slums are a cause of concern for the cities. Slums are areas where dense population dynasties live in harsh conditions. The study attempts to understand the impact of COVID-19 on people who live in the urban slums of the Dehradun district of Uttarakhand. The study found that most respondents lived in a joint family structure and were less educated or illiterate. The percentage of private jobs declined after the lockdown, and respondents found self-employment and many were fired during the lockdown as now they are unemployed. The respondents' monthly income also shows a decreasing trend during the study period. Respondents shift from higher income to lower income groups. After lockdown, many respondents did not find work. At the same time, the main reason for not being employed is the unavailability of work and other problems followed by seasonal changes in the works places, family workload restricts them not to work.

Reference

Auerbach, A. M., & Thachil, T. (2021). How does Covid-19 affect urban slums? Evidence from settlement leaders in India. World Development, 140, 105304.

Rains, E., & Krishna, A. (2020). Precarious gains: Social mobility and volatility in urban slums. World Development, 132, 105001.

Downs-Tepper, H., Krishna, A., & Rains, E. (2022). A threat to life and livelihoods: examining the effects of the first wave of COVID-19 on health and wellbeing in Bengaluru and Patna slums. Environment and Urbanization, 34(1), 190-208.

Pant, N. (2017, September). Rawat govt continues with Cong's move to regularise slums. Hindustan Times. Retrieved from https:// www.hindustantimes.com/dehradun/rawat-govt-contin ues-with-cong-s-move-to-regularise-slums/story-AYXJKAfgCM06865a7NdrDJ.html.

United Nations, Department of Economic and Social Affairs. (2014). World urbanization prospects. New York, NY: United Nations.

●

Nature Based Tourism
A Case Study of Aritar, East Sikkim

Primula Sharma[*], Dr. Amit Kumar Singh[**]

Abstract : Sikkim has immense potential to became a Nature-Based Tourism (NBT) destination due to the presence of natural attractions. However, the extant literature remains silent regarding the issues that might hinder to become a potential destination. In order to address this issue, the study seeks to identify the issues and challenges in Aritar, East Sikkim for NBT. Furthermore, it also represents the economic contribution of NBT. The result revealed that absence of infrastructure; lack of planning and lack of promotion are the major barriers for NBT in Aritar. NBT significantly contributes towards business and employment opportunities for local communities. Based on the findings, implications and future research agenda has been suggested.

Keywords : Nature based tourism, Aritar, Economic contribution, Issues and challenges, Sikkim

Introduction : Nature is a key attraction factor in tourism which creates opportunities for Nature Based Tourism which diversify economy within the region with natural attractions (here after NBT). It involves visiting natural areas to experience natural environments and actively participate in nature based activities (Fredman &Tyrväinen, 2010). It offers an opportunity to tourist for experiencing and understanding the ecosystem (Kim et al., 2019). The demand of NBT has steadily grown and one the most rapidly expanding segment within the tourism (Bell et al., 2009). NBT is also recognized as the most important sector that provides job opportunities and creates different types of entrepreneurship for local communities (Lundberg & Fredman, 2012). The increase of visitation of tourist to natural areas may significantly impact the planning and management of protected areas. In addition, climate directly affects recreation and tourism demand and the quality of tourism experience (Scott et al., 2007). On the other hand, it plays a significant role in economic benefit and the conservation and protection of the environment (Tisdell & Wilson, 2012). The growing trends of tourists to visit natural areas have helped the steady demand of NBT. Recently, research on this field has grown to provide discussions of complex relationship between environment and tourism and its social, political and environmental impact. This is also reflected by the launching of specialist journal such as Journal of Ecotourism and Tourism in Marine Environment. Despite the

* Research Scholar– Department of Tourism, Sikkim University
** Assistant Professor– Department of Tourism, Sikkim University

growth of research, our understanding regarding NBT and its role and effect in natural areas is limited (Hall & Boyd, 2005). According to Karanth & DeFries (2011), most of the researches have been conducted in wealthy countries such as USA and Japan over the last two decades (Pergams & Zaradic, 2008). Balmfordet al. (2009) identified rapid increase of visitors to protected areas in less wealthy countries. Therefore, there is a need to understand NBT in emerging economy such as India with increasing mobility and disposable income (Karanth & DeFries, 2011). India has been recognized as one of the 17 mega diversity countries in the globe with an account of 7 to 8% of world species. This country is the home of 96000 and 47000 species of animals and plants respectively (UNDP, 2018). This figure indicates its potential to become a NBT destination. Specifically, Sikkim, a Himalayan state located in the North-East region of India has higher potential to attract tourist interested in natural activities from all around the world due to its location and presence of diverse group of flora and fauna. It is covers 0.2% of the country's geographical area and one of the biodiversity hot spot in the Eastern Himalaya (Sikkim Biodiversity Board, 2015). This shows the potential of NBT in Sikkim. However, none of the academic study has been undertaken to highlight the challenges and issues encountered by the destination for promoting NBT and its economic benefit to local communities in the context of Sikkim. Although some studies have been conducted in Sikkim, these are limited to community based tourism and ecotourism (Ashok et al., 2017; Chaudhary & Lama, 2014). In the light of above discussion, it is important to study NBT and its economic contribution based on the destinations in Sikkim. This study seeks to address the aforementioned objective by highlighting the issues and challenges in NBT and its economic contribution. Aritar was taken as the study due its natural attractions. Both qualitative and quantitative data were collected from the respondents. Based on the findings, implications and future research has been suggested.

Literature review : According to Fredman et al. (2012), naturalness, facilities and open access to natural areas are the important properties of NBT. In addition, they explained, NBT drives the protection of nature, sustainable management of resources and public infrastructures. This can be achieved, when both public and private entities are synergized in the tourism production process, due to multifunctional nature of NBT. Mehmetoglu (2007) revealed the importance of nature to choose a travel destination. The study underscored "everyday life" and "novelty and learning" are the two important reasons for nature-based tourist for travelling. Further, the findings verified that some tourist travel to natural destinations because it represents complete contrast to everyday life. Henning (1993) delineated that NBT has the transformative power to

help for the protection and promotion of national parks and wildlife reserves, which conserves the tropical forest and cultural heritage. Furthermore, it has the ability to prosper socio economic benefit of rural communities and national economy. However, it requires adequate funding, cooperation, coordination and communication by the private and public sector undertakings, strategic plan, and proper training of stakeholders involved in the planning, development and management of NBT. Mc Kercher & Robbins (1998) highlighted the various leading challenges and problems faced by NBT business operators. The qualitative study brought four major themes concluded on business planning issues, marketing issues, operational knowledge and skill issues and personal attributes issues. Under the themes various subthemes were also identified. These were similar to the generic challenges encountered by the small business operators. However, there are greater ways to overcome the issues by developing sound business plans and management skill. Ardoin et al. (2015) described the influence of NBT on tourist's environmental knowledge, attitude and behavior by conducting a systematic review of research published in this context. The existing studies greatly studied the new environmental knowledge; however, the concept of environmental attitude and behavior were inconsistent. Spenceley & Goodwin (2007) illustrated the socio-economic impact of NBT on local communities from the activities conducted by the NBT enterprises. The study revealed that NBT has substantial positive impact on the local communities in terms of poverty alleviation, employment generation, procurement of local products and sustainable livelihood. They validated that NBT industry has the potential to work as a tool for poverty alleviation. Frost et al. (2014) described the future of NBT in the Asia Pacific region. The analysis elicited that attachment of tourist to nature may overuse and overdevelop of natural attraction by 2050. The drivers shaping the of NBT in Asia Pacific region includes shifting demographics, Increasing urbanization, climate change, media technology, psychological drivers, health care trends, and development at all cost. De (2013) argued that NBT activities have the capacity to provide sustainable livelihood for women. The study undertaken in the North East India is bestowed with some of the potential natural tourist attractions for nature lovers. The empirical investigation suggested that women have been benefitted from the growth of NBT in that region. Karanth & DeFries (2011) explicated the new challenges faced by the management of national parks in India due to the growth of NBT. The research revealed that domestic NBT potentially support the conversation of natural resources inside the park, however, it adds to the existing challenges to park authority for managing the protected areas.

Study Area : The study has undertaken in Aritar, located in the East Sikkim District of Sikkim. It situated an altitude of 4600ft from the sea level and around 63 km away from the state capital Gangtok. According to Census 2011, the population of the place was 3175. Aritar is a perfect location for the nature tourist for natural trails and serene holidays due to its existence geographical location characterized by lush evergreen forest, placid lakes, mountains, monasteries and paddy fields. The places of tourist interest: Lampokhari lake, Parbateyswareshivalayamandir, DakBunglow, AritarGumpha, Mankhim, Lungchok valley, Kalikhola waterfall, Love Dara, Changey waterfall, Evergreen nursery and Ram Gauri Sangrahalya. The place is primarily visited by domestic tourist. The reason for visiting Aritar is to enjoy the nature and natural beauty of the place. Typically, tourist visit is short and seasonal. Tourists normally visit the place during the period of summer and spring. The place is also visited by international tourist and their visits are mainly organized by travel agencies and tour operators. Hotels, resorts and home stays are available with homely ambiences for the tourist to stay, enjoy and make him comfortable. Booking can be done through online or directly by calling the hotel.

Methodology : In order to critically analyze the major issues and challenges to promote NBT and its economic impact in Aritar, a quantitative approach to collecting data was deemed appropriate. Therefore, quantitative survey was employed. The survey population included tourists visited to Aritar and residents of Aritar. Quantitative method involved the collection of data by semi-structured questionnaire from both tourist and resident. Two set of independent questionnaires was developed for both resident and tourist to capture their responses. A total of 151 responses were collected with 81 from tourists and 70 from the local respondents respectively. Responses from both the tourist and resident were analyzed by using SPSS. Percentage analysis and frequency analysis were carried out to obtain the conclusion.

Result and discussion : The major challenges and issues encountered by tourist in Aritar is shown in Table 1. Out of the 81 tourists, 64 tourists (79%) reported the absence of infrastructure facilities for NBT in Aritar and only 21% of the tourists agreed infrastructure facilities is available for tourist. 59.3% of the tourist reported that they felt necessity of planning is required to promote Aritar as a NBT destination. 85.2% of tourist indicated emphasis on promotion is needed for Aritar to emerge as a NBT paradise for tourist. In three case i.e., availability of infrastructure, necessity of planning and promotion, an average of 74% of tourist stressed the importance of these significant factors to promote Aritar as a complete nature-based tourist place. According to Lowry (2016), tourist

infrastructure can be categorized into infrastructure and superstructure for the development of a tourist destination. Infrastructure involves telecommunication, electric supply, water supply, transport facility etc. that plays significant role in tourism. Superstructure includes tourism infrastructure that are planned and designed for the tourist. It can be classified into transport, social and environmental infrastructure. Both infrastructures are significantly necessary for planning and development of a destination. The findings of this study were similar to the results of Sæþórsdóttir (2010). They found that available infrastructure plays a significant role for NBT planning. Planning is an integral part of any tourist destination development to satisfy the entire stake holder and to get the desired result. According to Burns (2004), tourism planning must include socially oriented policy factors to obtain optimum result. It is needed for scientific purposes, conservation of environment, benefit of the local people and protect the long term investment in tourism attraction and facilities (Inskeep, 1987). This study finding also supports the necessity of planning for tourism development. Promotion is an indispensable factor for the tourism which informs, reminds and persuades the tourist to visit the destination (Inskeep, 1987). In this study, most of the tourists supported the significant role of promotion for Aritar to become a well- known tourist destination.

Table1. Major issues and challenges encountered by tourist

Major Issues and Challenges	Yes	No
Availability of infrastructure	17(21.0%)	64 (79.0%)
Necessity of planning	48 (59.3%)	33 (40.7%)
Promotion	69 (85.2%)	12 (14.8%)

Table2. Major issues reported by residents

Major Issues and Challenges	Yes	No
Overall Development for tourism	17 (24.3%)	53 (75.7%)
Necessity of planning	53 (75.7%)	17 (24.3%)

The major challenges and issues reported by the resident in Aritar are shown in Table 2. Out of the 70 resident, 53 tourists (75.5%) reported that Aritar is not properly developed to attract tourist. 75.7% of the residents perceived the necessity of planning is required to promote Aritar as a NBT destination.

Table3. Economic benefit of NBT

Economic benefit	Percentage
Business opportunities	94.2%
Employment opportunities	95.7

A total of 94.2% residents agreed that NBT has the potential to offer business opportunities to local community. Furthermore, 95.7% of the residents perceived it can contribute towards employment opportunities. In

both the case, more than 90% of the residents supports NBT contribute significantly to the economy.

Tourism is widely recognized as a significant source for bringing jobs and business opportunities for local communities (Akama & Kieti, 2007). According to IBEF (2021), 39 million were created in tourism in India during financial year 2020; this contributes 8% of the total employment. López & Arreola (2019) revealed that tourism has a significant impact on employment generation. Our study also supports the fact as more than 90% of the respondents confirmed that tourism has provided employment to them.

Conclusion : Due to the paucity of studies in NBT in the context of Sikkim, this research presents the issues and challenges in Aritar to promote it as a NBT destination and economic contribution of NBT to local community. The findings revealed that lack of infrastructure facilities; planning and promotion are the major barriers for Aritar to become a NBT destination. In terms of economic benefit, most of local communities confirmed that NBT has potential to create business and employment opportunities. The study has various contribution to NBT literature. First, the study highlights issues and challenges for NBT that can be help for planning and management of NBT destination. The findings will help policy makers and academicians to understand NBT from various perspectives and its contribution to communities. Second, it has potential to provide a deeper understanding of NBT and issues involves in it for scholars especially junior researchers interested to study NBT in the context of Sikkim. Third, this study can be taken as a reference while planning NBT in other areas in Sikkim as well as rest of India.

Despite the contribution of the study towards NBT literature, it has some limitations. First, the study is limited to Aritar, therefore future study can be conducted in other relevant NBT destinations in Sikkim as well as other geographical areas for further generalization of result. Second, the study highlights the economic contribution of NBT, however, it remains silent about the socio-cultural and environmental impact of NBT. Future research can be conducted to address these issues.

Disclosure statement

No potential conflict of interest is reported by the authors

References

Akama, J. S., &Kieti, D. (2007). Tourism and socio-economic development in developing countries: A case study of Mombasa Resort in Kenya. Journal of Sustainable Tourism, 15(6), 735–748.

Ardoin, N. M., Wheaton, M., Bowers, A. W., Hunt, C. A., & Durham, W. H. (2015). Nature based tourism's impact on environmental knowledge, attitudes, and behavior: a review and analysis of the literature and potential future research. Journal of Sustainable Tourism, 23(6), 838–858. https://doi.org/10.1080/

09669582. 2015.1024258
Ashok, S., Tewari, H. R., Behera, M. D., &Majumdar, A. (2017). Development of ecotourism sustainability assessment framework employing Delphi, C&I and participatory methods: A case study of KBR, West Sikkim, India. Tourism Management Perspectives, 21, 24–41.
Balmford, A., Beresford, J., Green, J., Naidoo, R., Walpole, M., &Manica, A. (2009). A global perspective on trends in nature-based tourism. PLoSBiol, 7(6), e1000144.
Bell, S., Simpson, M., Tyrväinen, L., Sievänen, T., &Pröbstl, U. (2009). European forest recreation and tourism: a handbook. Taylor & Francis.
Burns, P. M. (2004). TOURISM PLANNING: A Third Way? Annals of Tourism Research, 31(1), 24–43. https://doi.org/https://doi.org/10.1016/j.annals.2003.08.001
Chaudhary, M., & Lama, R. (2014). Community Based Tourism Development in Sikkim of India—A Study of Darap and Pastanga Villages. Transnational Corporations Review, 6(3), 228–237.
Creswell, J. W. (1999). Mixed-method research: Introduction and application. In Handbook of educational policy (pp. 455–472). Elsevier.
De, U. K. (2013). Sustainable Nature-based Tourism, Involvement of Indigenous Women and Development: A Case of North-East India. Tourism Recreation Research, 38(3), 311–324. https://doi.org/10.1080/02508281.2013.11081756
Fredman, P., &Tyrväinen, L. (2010). Frontiers in nature based tourism. Scandinavian Journal of Hospitality and Tourism, 10(3), 177–189.
Fredman, P., Wall-Reinius, S., &Grundén, A. (2012). The nature of nature in nature-based tourism. Scandinavian Journal of Hospitality and Tourism, 12(4), 289–309.
Frost, W., Laing, J., &Beeton, S. (2014). The future of nature-based tourism in the Asia-Pacific region. Journal of Travel Research, 53(6), 721–732.
Hall, M., & Boyd, S. (2005). Nature-based tourism in peripheral areas: Introduction. In Nature-based tourism in peripheral areas: Development or disaster? (pp. 3–20).
Henning, D. H. (1993). Nature based tourism can help conserve tropical forests. Tourism Recreation Research, 18(2), 45–50. https://doi.org/10.1080/02508281.1993.11014677
IBEF. (2021). Tourism & Hospitality Industry in India. https://www.ibef.org/industry/tourism-hospitality-India.aspx
Inskeep, E. (1987). Environmental planning for tourism. Annals of Tourism Research, 14(1), 118–135. https://doi.org/https://doi.org/10.1016/0160-7383(87)90051-X
Karanth, K. K., &DeFries, R. (2011). Nature based tourism in Indian protected areas: New challenges for park management. Conservation Letters, 4(2), 137–149.
Kim, Y., Kim, C.-K., Lee, D. K., Lee, H.-W., &Andrada, R. I. T. (2019). Quantifying nature- based tourism in protected areas in developing countries by using social big data. Tourism Management, 72, 249–256. https://doi.org/10.1016/j.tourman.2018.12.005
López, C. S. G., & Arreola, K. S. B. (2019). Impacts of tourism and the generation of employment in Mexico. Journal of Tourism Analysis: Revista de AnálisisTurístico.
Lowry, L. L. (2016). The SAGE International encyclopedia of travel and tourism. Sage publications.
Lundberg, C., &Fredman, P. (2012). Success factors and constraints among nature-

based tourism entrepreneurs. Current Issues in Tourism, 15(7), 649–671. https://doi.org/10.1080/13683500.2011.630458
Mc Kercher, B., & Robbins, B. (1998). Business development issues affecting nature-based tourism operators in Australia. Journal of Sustainable Tourism, 6(2), 173–188. https://doi.org/10.1080/09669589808667309
Mehmetoglu, M. (2007). Nature-based tourism: A contrast to everyday life. Journal of Ecotourism, 6(2), 111–126.
Pergams, O. R. W., &Zaradic, P. A. (2008). Evidence for a fundamental and pervasive shift away from nature-based recreation. Proceedings of the National Academy of Sciences, 105(7), 2295–2300.
Sæþórsdóttir, A. D. (2010). Planning Nature Tourism in Iceland based on Tourist Attitudes.
Tourism Geographies, 12(1), 25–52. https://doi.org/10.1080/14616680903493639
Scott, D., Jones, B., &Konopek, J. (2007). Implications of climate and environmental change for nature-based tourism in the Canadian Rocky Mountains: A case study of Waterton Lakes National Park. Tourism Management, 28(2), 570–579. https://doi.org/10.1016/j.tourman.2006.04.020
Sikkim Biodiversity Board. (2015). Biodiversity in Sikkim. http://sbbsikkim.nic.in/sikkim- biodiversity.html
Spenceley, A., & Goodwin, H. (2007). Nature-based tourism and poverty alleviation: Impacts of private sector and parastatal enterprises in and around Kruger National Park, South Africa. Current Issues in Tourism, 10(2–3), 255–277. https://doi.org/10.2167/cit305.0
Tisdell, C. A., & Wilson, C. (2012). Nature-based tourism and conservation: New economic insights and case studies. Edward Elgar Publishing.
UNDP.(2018).IndiaBiodiversityAwards,2018. https://www.in.undp.org/content/india/en/home/climate-and-disaster-reslience/successstories/IBA2018.html

●

The Relationship Between Job Stress and Job Satisfaction with Faculty Performance in Higher Education Institutions

Sunaina Tomar*, Dr. Meghwant Singh Thakur**

Abstract: This research paper examines the impact of work stress and job satisfaction on faculty performance in a higher education institution. Work stress or job stress includes work culture, poor management strategies, job roles, physical workplace, workplace relationships, change management, lack of assistance, and role ambiguity. Job satisfaction includes the ambiance of the team and at work, work-life harmony, wages, and working circumstances, diverse work, opportunities for growth, flexible scheduling and independence, and faculty performance includes the quality of work, quantity of work, job skills, interpersonal relationships, and achievements. In order to better understand how work satisfaction and stress affect faculty performance, an exploratory research approach was used, and to collect the data for this study secondary sources of information were used which included research papers, case studies, websites, articles, etc.

Keywords: Faculty performance, Higher education institution, Job satisfaction, Job stress, Work stress.

1. Introduction : Every living thing suffers from the phenomenon known as stress. Humans endure stress regardless of their age, gender, employment, or financial background. Hans Selye, who popularized the term "stress" in 1975, called it the "spice of life," in which ultimate liberation may only be realized by death. "Stressors" are commonly defined as factors, circumstances, or conditions that tend to induce stress. There is stress everywhere, which might be physical, biological, emotional, or psychological (including at home, work, and in a social environment). Even Nevertheless, stress may have either a positive or negative impact on a person. Stress is inescapable. Its effects on people might either be positive or negative. (Akah, Owan, Adum, Onyenweaku, & Olofu, 2022). A person's overall well-being is said to be greatly influenced by their level of job satisfaction. Numerous scholars have attempted to define and establish the dimensions of work satisfaction since the early 20th century. Job satisfaction is an affective or emotional reaction to many aspects of an employee's employment. Job satisfaction is defined as "a pleasurable or positive emotional state coming from the evaluation of

* Research Scholar, Department of Business Management
** Assistent Professor- Department of Business Management, Dr. Hari Singh Gour Vishwavidyalaya, Sagar (M.P.)

one's working or job experiences. Job satisfaction is defined as an effect, or sensation and emotion, coming from one's assessment of the circumstance. Job satisfaction "is an attitude towards one's employment". The workplace environment can influence job happiness, according to Herzberg's two factory theory. He makes a distinction between internal factors (recognition, accomplishment, or personal progress) and external factors (business regulations, supervisory practices, or wages/salary) of the work itself that influence one's perception of their employment as a whole.

(Sarri, 2016). Employee work performance has always been a key difficulty in organizational management, and implementing effective methods to inspire employees to attain and provide greater job performance while also increasing organizational competitiveness is the primary goal of any institution. Employee performance is thus considered to be crucial for overall organizational growth and profitability. Employees are viewed as important corporate resources that help an organization's everyday activities and operations. Similarly, organizational effectiveness and efficiency are determined by how effective and efficient the organization's people are. Employers' capacity to understand employee satisfaction with regard to schedules and daily obligations has a significant influence on staff productivity and performance. (Inuwa, 2016)

2. Literature Review : (Ahsan, Abdullah , Fie, & Alam, 2009) this paper examines how job stress is related with job satisfaction and that one factor influencing workers' work-related stress is the management role of an organization. Workers in an organization may experience occupational stress due to the stress placed on them by their managers. Role stress is anything about an organization that has negative effects on the individual. Role-related issues, which include role ambiguity and role conflict, are concerned with how people interpret the expectations that others have of them. (Singh & Verma, 2019) The study concentrated on the field of work stress, offering the idea and fundamental knowledge of work stress. The report also gives in-depth knowledge about work stress studies undertaken in various nations and sectors. The study discussed the numerous stressors and their effects on employee health and also focused on developing an organizational framework that should be in harmony with the developmental features and should give an encouraging environment to the employees in turn reducing the stress And also mentioned that, stress management seminars should be held on a regular basis to educate workers on the cause of stress, its negative effects on their health, and how to successfully reduce stress. It should be backed up with real stress-reduction measures that workers can adopt and benefit from. (Crossman & Abou-Zaki, 2003) this study suggested gender and job satisfaction with compensation and supervision were shown to have a substantial link;

female employees were found to be happier with pay than their male counterparts, whilst men were more satisfied with supervision. The data demonstrate no substantial association between job satisfaction and performance, implying a potential rather than a clearly recognized reality. (Berliana, Siregar, & Gustian, 2018)The job satisfaction score was calculated using the JDI questionnaire, which, while supplemented, has a restricted reach. However, if the scope was expanded and another performance rating method was utilized, a link between satisfaction and performance might have been discovered. The purpose of this research was to determine and analyze: (1) remuneration compensation; (2) works contentment; (3) performance; and (4) the influence of remuneration compensation and job satisfaction on PT. ABC employees' performance, both concurrently and partly. Based on the study's findings, it was discovered that the remuneration compensation given was considered quite appropriate, job satisfaction was considered satisfied, employee performance was considered high, remuneration compensation had an effect on job satisfaction, and remuneration compensation and job satisfaction had an effect on employee performance. It turns out that remuneration compensation and employee performance satisfaction affect performance. Because remuneration pay has a greater effect on performance than job happiness, it is best to give adequate remuneration compensation by boosting other advantages so that workers may work more professionally. (Ali & Farooqi, 2014) the purpose of this research is to determine the impact of work overload on job satisfaction, as well as the impact of job satisfaction on employee performance and employee engagement. Job stress is a major issue for all companies. Some people were stressed out because of work overload, while others were dissatisfied with their jobs. It is critical that the business knows its employees' requirements and provides what is best for them. Employees should be reinstated and motivated by continuous assessment programmes and gratitude. Unhealthy job task overload among those accountable for helping the service for future generations may eventually harm their intellectual and social capacities. This study also suggested how job overload can be reduced at the individual level by implementing several appealing measures, such as enhancing technology through the use of advanced technology. (Murali, Basit, & Hassan, 2017)The purpose of this research is to look at the impact of job stress on employee performance; the study specified how time constraints and role uncertainty had a large and unfavorable impact on employee performance. The other two criteria, workload and lack of motivation have no apparent impact on employee performance. As a result, the study determined that increased time constraints and role ambiguity will lower employee performance in all

areas. To improve employee performance, managers must ensure that job ambiguity is avoided and that defined duties are assigned and communicated to staff. Managers and supervisors should also discuss the time allocation, work completion dates, and task duration with their subordinates to prevent time pressure. This might potentially improve staff performance. As a result, it has undoubtedly exposed every working individual, from lower to higher income earners, to workplace stress, which has a significant influence not only on the quality of job performances but also on the quality of life we lead. It is a well-known reality that employment roles and working conditions evolve at such a quick speed, bringing with them the current issues that most of us encounter.

Research Methodology : This section discussed the detailed study of research design where objectives, research design, type of data, sampling method used, and expected outcome are mentioned.

Objectives

1. To examine the impact of job stress on faculty performance of higher education institution.
2. To examine the impact of job satisfaction on faculty performance of higher education institution.

An exploratory research design was employed while conducting this study as job stress and job satisfaction have a significant influence on faculty performance. Data used in this study was from secondary sources such as research papers, case studies websites, articles, etc.

3. Theoretical Review

3.1 Job Stress : The National Institute of Occupational Safety And Health, NIOSH formed an interdisciplinary team of academics and practitioners from industry, labor, and academia in 1996 to set a national research agenda on "work organization." Work organization relates to management and supervisory methods, as well as production processes and their impact on how work is done. (Centers for Disease Control and Prevention, 2022). According to NIOSH, job stress is described as the harmful physical and emotional responses that occur when the job requirements do not meet the worker's talents, resources, or demands. Workplace stress can result in ill health and even damage. NIOSH's primary research themes in occupational stress include:

1. o get a better understanding of the impact of "work organisation" or " psychosocial" elements on stress, disease, and injury.
2. To find methods to rethink occupations in order to promote safer and healthier environments.

NIOSH Model of Job Stress

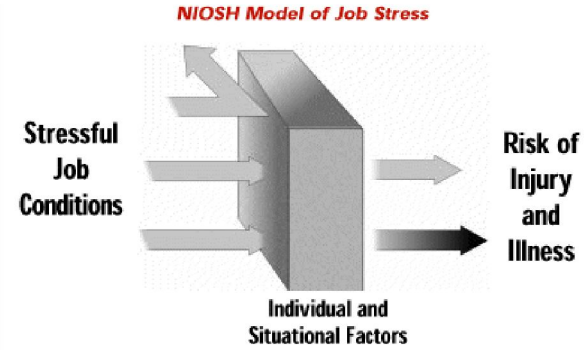

Image Source: Center For Disease Control And Prevention

A stressful working situations (referred to as job stressors) can have a direct impact on worker safety and health. However, as seen above, individual and situational factors can intervene to enhance or diminish this impact.

Job Conditions That May Cause Stress

- Task Design- Heavy workload, infrequent rest breaks, long work hours, and shiftwork; frantic and monotonous duties with little intrinsic value, that do not utilize workers' abilities, and that give little sense of control.
- Management Style- Lack of worker engagement in decision-making, inadequate organizational communication, and a lack of family-friendly policies.
- Relationships between people- Poor social environment, as well as a lack of support or assistance from coworkers and managers.
- Work Roles- Conflicting or ambiguous employment expectations, too much responsibility, and too many "hats to wear.
- Concerns about one's career- Job instability and a lack of opportunities for progress, advancement, or promotion; fast changes for which employees are unprepared.
- Environmental Factors- Physical situations that are unpleasant or harmful, such as congestion, noise, air pollution, or ergonomic issues.

Theresa and David in the same report illustrate two different approaches for dealing with stress at work. First is stress management stress management programmes educate employees on the nature and origins of stress, the impact of stress on health, and personal stress-reduction skills also stress management training can help to alleviate stress symptoms like anxiety and sleep disruptions quickly. Second is organizational change this approach is the most straightforward technique to lessen workplace stress. It entails identifying stressful characteristics of work (for example, excessive workload, competing demands) and

developing measures to lessen or remove the identified stressors. The advantage of this method is that it addresses the underlying causes of workplace stress. Managers, on the other hand, are sometimes uncomfortable with this strategy since it might include modifications in work routines or production schedules, as well as changes in organizational structure. Therefore to eliminate stress from the workplace a combination of organizational change and stress management is frequently the most effective method to preventing workplace stress.

According to American psychologist (Sauter SL et al, 1990), to Make Organizational Changes to Reduce job stress following measure can be followed Ensure that the workload is appropriate for the workers' capabilities and resources.

- Create jobs that give employees meaning, stimulation, and opportunity to put their abilities to use.
- Define the roles and duties of employees.
- Allow employees to engage in choices and actions that influence their jobs.
- Improve communication-reduce confusion regarding job advancement and future employment opportunities.
- Make possibilities for social engagement among employees.
- Create work schedules that are compatible with outside demands and obligations.

3.2 Job Satisfaction : The attitude of job satisfaction is a topic of great interest among organizational behavior researchers and practitioners of human resource management. Job satisfaction is the degree to which people are satisfied or dissatisfied with their jobs. It is an attitude or emotional response to one's tasks as well as the physical and social conditions of the workplace (Sattar et al.). Job satisfaction is defined as "the joyful emotional state arising from the evaluation of one's job as attaining or assisting the attainment of one's job values" and "the extent to which people like (satisfaction) or dislike (dissatisfaction) their jobs (Hassard et al.).

Theories of job-satisfaction : There are various theories of job satisfaction some of which are discussed here,

1. Maslow's Need Hierarchy Theory- Maslow's hierarchy of wants is "the most extensively discussed theory of motivation and fulfillment. Abraham Maslow proposed that an individual's motivational requirements may be organized in a hierarchy, based mostly on humanistic psychology and clinical experiences. It no longer serves to inspire after a certain degree of requirements has been met. As a result, the next higher degree of need must be engaged in order to motivate and hence fulfill the individual. Maslow's (1943) need hierarchy consisted of five levels such as physical

needs (food, clothing, shelter, sex), safety needs (physical protection), social needs (opportunities to form close relationships with other people), esteem/Achievement needs (prestige received from others), and self-Actualization needs (opportunities for self-fulfillment and accomplishment through personal growth) (Sattar et al.).

2. Theory of Motivator-Hygiene- According to Herzberg's motivator-hygiene theory, job satisfaction and dissatisfaction are not two opposed ends of the same continuum, but rather two distinct and, at times, unconnected ideas. In order for an employee to be satisfied with their job, 'motivating' variables such as compensation and perks, recognition, and success must be fulfilled. However, 'hygiene' elements (such as working circumstances, corporate regulations and structure, job security, contact with coworkers, and management quality) are linked to job dissatisfaction. Because both the hygiene and motivational factors are seen as autonomous, employees may be neither satisfied nor unhappy. According to this idea, when hygienic elements are low, the employee is unsatisfied; nevertheless, when these variables are strong, the employee is not dissatisfied (or neutral), but not necessarily satisfied. The motivational elements determine whether or not an employee is pleased. (Hassard et al.).

3. According to Hachman & Oldham - Job Characteristics Model, explains that job satisfaction arises when the work environment promotes intrinsically motivating characteristics. Three psychological states are influenced by five major work characteristics: skill diversity, task identity, task relevance, autonomy, and feedback. Following that, the three psychological states meaningfulness of work, responsibilty of outcomes, knowledge of results can result in a variety of outcomes, including high internal work motivation, high quality work performance, job satisfaction low absentessim and turnover. From an organizational standpoint, it is believed that strengthening the five fundamental job characteristics would result in a better work environment and higher job satisfaction. (Hassard et al.).

3.3 Faculty Performance : Faculty performance measures how successfully or poorly an employee performs their assigned work obligations and how quickly they satisfy deadlines or criteria. Measuring faculty performance can assist you in identifying any flaws in your faculty training programme and advising you on how to improve. Employee performance and job satisfaction goes hand in hand and the link between satisfaction and performance is more likely to be discovered when these three criteria are met, 1. When the performance represents valued skill. 2. When a certain set of job values has been absorbed by the individual. 3. When high levels of contact in the workplace allow the transfer of good performance assessments by others to the person. Faculty performance may

be both a goal in itself and a means to an end. For example, regardless of the externally mediated consequences of the performance, a person may get satisfaction from effective performance and disappointment from bad performance therefore increasing the following factors will improve performance the intensity of a person's desire to succeed, the extent to which overcompensation occurs, the work necessitates the use of talents that a person values or has, the feedback provided, the opportunity to engage in making decisions with long-term consequences is provided. The key factors that influence employee performances are: training and development, employee engagement and institution culture When a firm makes strategies to improve its culture, it must also plan for employee performance management. Employee performance management consists of five steps:planning- before you begin, plan your job, setting expectations and continuously monitoring, increase your ability to execute, rating- evaluate your employees' performance on a regular basis, recognize and motivate top achievers and reward them so that they feel motivated and elated to perform well, there are two kinds of rewarding which can help in increasing employee performance, intrinsic rewarding- the personal gratification gained from one's job achievements, job fulfillment, personal development, informal acknowledgement and extrinsic rewarding- the external rewards are incentives , promotion, bonus, fringe benefit. Furthermore, happy employees are more productive and efficient, and they are the ones that drive the institution towards long-term goals. Employee satisfaction is influenced by company culture, coworkers, personal difficulties, management expectations, and a variety of other factors. Institutions must take the effort to make their workers happy by understanding what they want and providing them with tools that improve employee abilities. (Periyasamy, 2020)

4. Results

4.1 Relationship between Job Stress And Faculty Performance : Stress is an emotional reaction to any circumstance that has an impact on an individual's health. Stress, may be described as an inner force or external activities that disrupt an individual's stability. Stress is defined as an individual's reaction to negative impacts such as annoyance and powerlessness that threaten his or her self-esteem. Job stress, in particular, is connected with mental stress and strain, which is associated with workers' skills to respond to and handle any circumstance at their workplace sensibly. (Ingried, Wolomasi, & Werang, 2020) Job stress, in particular, is connected with mental stress and strain, which is associated with workers' skills to react and manage any circumstance at their workplace sensibly. In other words, it is associated with all of the highly unsafe emotional responses of individuals whose talents and abilities are

not properly matched with workplace expectations. Workload, organisational limits, classroom issues, and interpersonal disputes are the key contributors to faculty stress. Role conflict, role ambiguity, workload, and workplace conflict are examples of stresses. (Sharma et al., 2021) Job-related stressors were found to be at a high level, whereas individual-related, organizational-related, and psychological stress response were found to be at a medium level. Various studies shown that all job-related stresses were shown to be at a greater level, including work overload, time pressure, role conflict, role ambiguity, and role overload. Control/ Delegation, Organizational Environment, and Organizational Design were all judged to be at a medium degree of stress. Individual stressors such as financial restrictions, competing demands, and career growth were found to be at a medium level, whereas income level and job uncertainty were found to be at a high level. All psychological stresses, as well as stress reactions such as nervousness, excessive perspiration, and difficulty feeling calm Chronic and muscular discomfort, bloating/stomach disturbance, and shortness of breath were all determined to be moderate. As a result, descriptive statistics revealed that the stressors Work overload, Time pressure, role conflict, role ambiguity, role overload, amount of income, and Job security cause a significant degree of stress in faculties.

4.2 Relationship between Job Satisfaction and Faculty Performance

Organizations, people, and universities all place a high value on job success. Individuals experience self-efficacy, happiness, and motivation when activities are completed successfully and with high performance. There are several definitions of work performance, demonstrating the concept's difficulty and complexity. Faculty job satisfaction is described as how instructors act while teaching and is closely tied to faculty effectiveness (Danish etal., 2019). Since job satisfaction is intimately tied to faculty performance in the workplace and employee turnover, it is now viewed as a major problem in educational institutions. Higher education faculty members have a significant role in students' academic achievement and the development of a productive workforce for the economy. Academics may become less devoted to their institutions and become less productive as a result of their job-related discontent. The core elements of work

satisfaction among faculty were found to be promotion, remuneration, supervisory support, team cohesiveness, and job requirements. As motivating elements, competitive wage, job autonomy, good supervision, possibilities for training and development, better working conditions, and job security is to be considered. (Kuwaiti, Bicak, & Wahass, 2020) Investing in enhancing faculty happiness is a worthwhile investment for every institution according to several studies. The key reason is that you will want happy staff working for you as a corporation. Employee

happiness is one of the biggest determinants of long-term favorable firm success, according to several research and papers. High job satisfaction is also associated with improved performance, which is associated with higher earnings. Faculties that are happy and comfortable in their jobs are considerably more likely to embrace the work at hand with excitement and devotion. Performance, which is associated to increased earnings, is linked to good work satisfaction and faculties are far more inclined to approach their work with zeal and determination if they feel pleased and happy in their positions. Your employee will feel a connection to your firm, and they will understand that whatever job they do for you will have an impact on the company's overall performance. They will be less inclined to switch jobs and may even promote your company as a place to work. (ENME, 2018).

5. Conclusion : Job stress is caused by more than just "how (academics) perceive and respond to potentially stressful situations". It is both organizational and structural, and it is inextricably linked to the qualities of their working environment. Jobs with higher demands (amount of attention or effort required) and/or less control (decision-making flexibility and employees' available abilities and resources), are more stressful. As a result, interventions aimed at enhancing worker and/or work environment quality and structural solutions to manage stress at work. Employees appear to experience job stress when they are pushed to the limit and forced to finish their tasks within an unacceptable time frame set by their employers or superiors. When employees are given too many tasks or job assignments and are expected to perform them within a short period of time, the rate of turnover appears to be rather high. Furthermore, a lack of help from management in completing the task has resulted in high levels of job stress and unhappiness with job performance. Job satisfaction is a crucial problem that must be addressed in order to get better results in any organization. Productivity, employee turnover, absenteeism, safety, stress, union recognition, and other concerns are all affected by job satisfaction. There are several methods for measuring faculty work satisfaction, including rating scales, job descriptive indexes, the Minnesota satisfaction questionnaire, critical incidence, interviews, and action tendencies. There is a relationship between satisfaction and performance. Analysis of labor turnover, absenteeism, and grievance rates might provide some signs of work satisfaction. Job satisfaction is stated to be a highly key position in affecting the level of performance in any institution.

References

- ENME. (2018, March 12). Retrieved from The link between job satisfaction and employee performance: https://www.enmehr.com/en/blog/the-link-between-job-satisfaction-and-employee-performance/

- Centers for Disease Control and Prevention. (2022, December 19). Retrieved January 04, 2023, from The National Institute of Occupational Safety and Health: https://www.cdc.gov/niosh/index.htm
- Ahsan, N., Abdullah , Z., Fie, D. Y., & Alam, S. S. (2009). A Study of Job Stress on Job Satisfaction among University Staff in Malaysia: Empirical Study. European Journal of Social Sciences – Volume 8, 121-131.
- Akah, L. U., Owan, V. J., Adum, P. O., Onyenweaku, E. O., & Olofu, M. A. (2022). Occupational Stress and Academic Staff Job Performance in Two Nigerian Universities. Journal-of-Curriculum-and-Teaching, 64-78.
- Ali, S., & Farooqi, Y. A. (2014). Effect of Work Overload on Job Satisfaction,Effect of Job Satisfaction on Employee Performance and Employee Engagement. INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY SCIENCES AND ENGINEERING, 23-30.
- Berliana, M., Siregar, N., & Gustian, H. D. (2018). The Model of Job Satisfaction and Employee Performance. International Review of Management and Marketing, 41-46.
- Crossman, A., & Abou-Zaki, B. (2003). Job satisfaction and employee performance of Lebanese banking staff. Journal of Managerial Psychology, 368-376.
- Danish etal. (2019). Work Related Stressors and Teachers' Performance:Evidence from College Teachers Working in Punjab. European Scientific Journal, 158-173.
- Hassard et al. (n.d.). Job satisfaction: theories and definitions. OSHwiki.
- Ingried, S. A., Wolomasi, A. K., & Werang, B. R. (2020). Work-related stress and performance among primary school teachers. International Journal of Evaluation and Research in Education, 352-358.
- Inuwa, M. (2016). Job Satisfaction and Employee Performance: An Empirical Approach. The Millennium University Journal, 90-103.
- Kuwaiti, A. A., Bicak, H. A., & Wahass, S. (2020). Factors predicting job satisfaction among faculty members of a Saudi higher education institution. Journal of Applied Research in Higher Education, 296-310.
- Murali, S. B., Basit, A., & Hassan, Z. (2017). IMPACT OF JOB STRESS ON EMPLOYEE PERFORMANCE. International Journal of Accounting & Business Management, 13-33.
- Periyasamy, R. (2020, May 29). Apty. Retrieved 2023, from Employee productivity and performance: https://www.apty.io/blog/employee-performance-factors/#How-to-measure-Employee-Performance
- Sarri, A. (2016). Job Satisfaction, Flexibility, and Autonomy.
- Sattar et al. (n.d.). Theories of job satisfaction: Global applications & Limitations. Gomal University Journal of Research.
- Sauter SL et al, .. (1990). Prevention of work-related psychological disorders. American Psychologist.
- Sharma et al. (2021). EFFECT OF WORK STRESS AND ITS CONSTITUENTS ON TEACHER'S PERFORMANCE IN PRIVATE HIGHER EDUCATIONAL INSTITUTIONS IN MEERUT. Internatonal Journal of Accounts, Economics and Commerce Research, 7-17.
- Singh, S., & Verma, D. M. (2019). A Conceptual Study on Occupational Stress and its Impact on Employees. Journal of Emerging Technologies and Innovative Research, 110-117.

●

Right to Health with Special Reference to Assam Public Health Act-2010

Jyotirmoyee Baruah*, Prof. Sudhanshu Ranjan Mohapatra**

Abstract : The Assam Public Health is a milestone legislation in the history of protection and promotion of right to health in India. The Act not only guaranteed right to health statutorily for the first time but also envisioned for creating a robust mechanism for protection of right to health. Although, the Act has certain limitations, it is a model legislation to be adopted by each and every states of India.

Key words- Right to health, Assam, Assam Public Health Act, 2010

Introduction : Health is one of the prerequisites for the attainment of better quality of life and realisation of basic human needs. A good health is the most important wealth that men have. The famous saying "Health is wealth" reminds us about the importance of health in human life. A good health not only ensures happiness but also facilitates us to work, attend social responsibilities, and participate in community activities. Health is generally termed as a state of physical, mental, social and spiritual wellbeing of an individual. There are a lot of factors which affect our health. The factors which have a positive impact upon the human health are balanced diet, clean water and clean environment etc. on the other hand, unhygienic conditions, polluted environment have a negative impact over human health. Maintaining a good health depends primarily upon the individual concerned, but in a welfare state the role of state in ensuring good health of citizens is must. The state has a dynamic role in preventing public health hazards, and maintaining a clean environment.

Basic Concept:

Definition of Health: - Health has been defined by different thinkers and by different disciplines in a number of ways. The most acceptable definition of health has been put forwarded by World Health Organisation. According to World Health Organisation (WHO) "health is a state of complete physical, mental and social well being and not merely an absence of disease or infirmity".

According to Webster's Dictionary health is "The state of being hale, sound, or whole, in body, mind, or soul; especially, the state of being free from physical disease or pain."

According to Dorland's Medical Dictionary, health is, "An optimal state of physical, mental and social well-being, not merely the absence of disease or infirmity.

Health Care System in India : In India, there exits a universal health care system monitored by the respective governments. The health care system of India can be divided into two distinct sectors, i.e., public health

* Research Scholar- P.G. Department of Law, Sambalpur University

** Professor and Dean- P.G. Department of Law, Sambalpur University

care system and private health care system.

According to section 2 (30) of the Gujarat public health act, 2009 , public health means assuring the conditions in which the population can be healthy. This includes population-based or individual efforts primarily aimed at the prevention of injury, disease, disability or premature mortality, or the promotion of health in the community, such as assessing the health needs and status of the community through public health surveillance and epidemiological research, developing public health policy, and responding to public health needs and emergencies.

The public health care system of India is governed and monitored by the Government of India or respective state governments, municipal bodies, panchayat and other local authorities. However, some of them are monitored by the agencies of the respective governments. The facilities under the public heath system in India includes the teaching hospitals, secondary level hospitals, first level referral hospitals or community health centres, dispensaries, primary health centres and sub centres and health posts. Apart from that hospitals and clinics exist which are run by specific occupational groups like Employees State Insurance Corporation, Postal Department, Railway , mines etc.

The private health care system in India has undergone a sea change after independence. Unlike the other South East Asian countries, India has a well established private health care system. In other South East Asian countries, private sector is dominated by private practitioners. The private sector can be further divided into "not- for profit" and "for profit" organisations.

The private health care system in India consists of private practitioners, nursing homes, private clinics and large scale private hospitals. The private practitioners at primary level include the traditional healers, practitioners who have no training or education on allopathy or homeopathy, traditional birth attendants etc. the private sector has also dominance over medical education, construction of hospitals and nursing homes, manufacture and sale of pharmaceuticals etc.

The growth of private health care system can be attributed to the lack of quality and quantity of public sector health service providers. Lack of infrastructure, funding and non availability of human resources have an adverse impact upon the public health sector. The National Health Policy, 2002 has welcomed the private initiate in health sector. However, it envisaged for formulating norms for regulating minimum infrastructure and quality standards in clinical establishments/medical institutions by 2003.

Objectives of Research : The main objectives of the study are as follows-

1. To analyze the basic concept of health including the present health care system in India
2. To analyze the International Laws relating to right to health

3. To analyze the national Laws and policies, schemes, programmes, guidelines etc relating to right to health
4. To study the State Level Legislations pertaining to right to health in India
5. To analyze the Assam Public Health Act, 2010 in the context of Right to Health
6. To find out the various loopholes or shortcomings in the existing International and National framework relating to right to health
7. To Suggest the remedial measures to solve the various loopholes or shortcomings in the existing International and National framework relating to right to health

Scope of Study and its Limitation : The Study will inter alia be conducted in the context of right to health care law with special focus on Assam Public Heath Act, 2010.

Assam is the biggest state in North East India and is a corridor of connecting South East Asia with other parts of country. Assam is the land of hills and valleys and of the mighty Brahmaputra. Assam comprises of 34 districts which has a population of 31,169,272 as per census of Government of India, 2011.

The Assam Public Health Act, 2010 is one of the few State Public Health Acts of India. The Act received the assent of the Governor of Assam on 29th April, 2010.

Methodology of Research :

The present research work is the result of doctrinal research. Both primary and secondary sources have been used in the present study.

The primary sources include the Acts, Judicial decisions pertaining to health.

The secondary sources include the textbooks, journal articles, internet and various reports and newspapers etc.

The Right to Health in International Law : The right to the highest attainable standard of health is a human right which is recognized in a number of international human rights instruments. The International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights recognizes right to health under Article 12. It provides that "the right of everyone to the enjoyment of the highest attainable standard of physical and mental health." It gives equal consideration to the physical and mental health.

Further it has been recognised by the following international Instruments-

1. Article 5 (e) (iv) of the International Convention on the Elimination of All Forms of Racial Discrimination, 1965)- Article 5 (e) of the Convention calls upon the state parties to eliminate any forms of racial discrimination in all its forms and to guarantee the right of everyone, without distinction as to race, colour, or national or ethnic origin, to equality before the law. It calls upon the state parties to provide inter alia the right to public health, medical care, social security and social services.

2. Under Articles 11 (1) (f), 12 and 14 (2) (b) of Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination against Women , 1979-

Article 11 (1) (f) protects the right to health of the working class. It provides for right to protection of health and to safety in working conditions, including the safeguarding of the function of reproduction.

Article 12 calls upon the state parties to take appropriate steps for eradicating problem of discrimination against women in the field of health care which will ensure access to health care services, including those related to family planning for both men and women.

Further, the convention through this Article calls upon the States Parties to ensure that women shall be given facilities in connection with pregnancy, confinement and the post-natal period, granting free services where necessary, as well as adequate nutrition during pregnancy and lactation.

The Article 14 (2) (b) of the convention devoted attention to the special needs of the women of rural areas and to ensure their participation in rural development. It inter alia has called upon the state parties to have access to adequate health care facilities, including information, counselling and services in family planning.

3. Art. 24 of the Convention on the Rights of the Child, 1989 with an aim that no child shall be deprived of his or her right of access to such health care services calls upon the States Parties to recognize the right of the child to the enjoyment of the highest attainable standard of health. Further it has asked state parties to provide facilities for the treatment of illness and rehabilitation of health of child. It calls the state parties to ensure the right to health care by taking up the following steps-

(i) by diminishing infant and child mortality.

(ii) By giving medical assistance and health care to all children with special attention of development of primary health care.

(iii) By combating disease and malnutrition through the provision of adequate nutritious foods and clean drinking-water.

(iv) By ensuring appropriate pre-natal and post-natal health care for mothers.

(v) By ensuring that all sections of society specially women are educated on the use of basic knowledge of child health and nutrition, the advantages of breastfeeding, hygiene and environmental sanitation and the prevention of accidents.

(vi) By developing preventive health care, guidance for parents and family planning education and services.

(vii) By removing traditional practices prejudicial to the health of children through appropriate measures.

(viii) States Parties undertake to promote and encourage international co-operation with a view to achieving progressively the full realization of the right recognized in the present article. In this regard, particular account shall be taken of the needs of developing countries.

4. Under Article 28, 43 (e) and 45 (c) of the International Convention on the Protection of the Rights of All Migrant Workers and Members of Their Families, 1990

5. Under : Article 25 of the Convention on the Rights of Persons with Disabilities, 2006

The Alma Ata Declaration of 1978 has been a milestone in public health field. The declaration sets out the policy framework to be implemented by states. The declaration indentified primary health care as the basic requirement for attaining health care for all.

The major features of the declaration may be pointed out in the following way.

1. The declaration reaffirming health as a state of complete physical, mental, and social well-being, and not merely the absence of disease or infirmity declared that right to health is a fundamental right. Further it declared that health is an important social goal which is to be achieved through actions of many other socio-economic sectors in addition to the health sector.

2. The existing inequality of health status between the developed countries and developing countries as well as among the countries is unacceptable from the political, social and economic point of view and hence common concern for all.

3. Socio-economic development based on new international economic order is basic important thing for attainment of health for all and reduction of gap between the health status of developing and developed countries.

4. It targeted the year 2000 as the year by which countries of the world would provide a level of health which will permit all the people to lead a socially and economically productive life.

5. Stressing the importance of primary health care, the declaration appealed to all the countries of the world to formulate policies, strategies and plan of actions to launch and sustain primary health care as a part of comprehensive public health system.

6. It called for cooperation of all the countries of the world in a spirit of partnership and service to ensure primary health care for all as attainment of health by one country directly concerns and benefits other countries.

Role of World Health Organisation in Public Health:- According to the Twelfth General Programme of Work , core functions of World Health Organisation are as follows-

1. Providing leadership on matters critical to health and engaging in partnerships where joint action is needed;

2. Shaping the research agenda and stimulating the generation, translation and dissemination of valuable knowledge;

3. Setting norms and standards and promoting and monitoring their implementation;

4. Articulating ethical and evidence-based policy options;

5. Providing technical support, catalyzing change, and building sustainable institutional capacity; and

6. Monitoring the health situation and assessing health trends.

Right to Health has been recognised in constitution of a number of countries. Among these , a few include the following-

Constitution of South Africa (1996): Chapter II, Section 27 of the Constitution deals with health care, food, water and social security: Under section 27 (1) it ensures health care services to all including reproductive health care. Further it provides right to sufficient food and water. Under Section 27 (2) the State must take reasonable legislative and other measures, within its available resources, to achieve the progressive realization of each of these rights. Further section 27 (3) provides right to emergency medical treatment.

Constitution of Ecuador (1998): The Chapter IV of the Constitution of Ecuador deals with Economic, Social and Cultural Rights. Under Article 42 it provides that "the State guarantees the right to health, its promotion and protection, through the development of food security, the provision of drinking water and basic sanitation, the promotion of a healthy family, work and community environment, and the possibility of permanent and uninterrupted access to health services, in conformity with the principles of equity, universality, solidarity, quality and efficiency."

International conferences and declarations- Since right to health is a multi dimensional subject having diverse approaches, various international conferences and declarations have also helped to develop various aspects of public health and reaffirmed commitments to its realization. Some of these conferences and declaration inter alia include International Conference on Primary Health Care (resulting in the Declaration of Alma-Ata), the United Nations Millennium Declaration and Millennium Development Goals, and the Declaration of Commitment on HIV/AIDS etc.

National Laws and Policies on Right to Health :

History of Public Health Care System in India:- After independence, India embarked upon planned economy which focused on the public health also. In independent India, Constitution of India also put responsibility upon the Government to raise the level of nutrition and standard of living of its people and improvement of public health under Article 47 of the Constitution of India. Further a responsibility was put upon the state to make provisions for securing just and humane conditions of work and for maternity relief. The government has taken various initiatives with regard to public health based on recommendations of various expert committees. Some of the expert committees which have dealt with public health in India include the Bhore committee, Mudaliar committee, Chadha committee, Mukherjee committee, Jungalwalla

Committee, Jain committee, Kartar Singh committee, Srivastava Committee etc.

Indian Constitutional Provisions- The Constitution of India contains a number of provisions which relates to health.

Article 14 speaks about equality before law where the State shall not deny to any person equality before the law or the equal protection of the laws within the territory of India.

Article 21 of the Indian Constitution ensures protection of life and personal liberty of the individual, where no person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law. Article 23 prohibits traffic in human beings and beggar and other similar forms of forced labour and any contravention of this provision shall be an offence punishable in accordance with law. It indirectly ensures the right to health and safety of women and child. Article 24 also prohibits the employment of children below the age of fourteen years in any factory or mine or in any other hazardous employment .It gives protection to the children's health. Article 39 further speaks that "the State shall, in particular, directs its policy towards securing - (e) that the health and strength of workers, men and women, and the tender age of children are not abused and that citizens are not forced by economic necessity to enter avocations unsuited to their age or strength; (f) that children are given opportunities and facilities to develop in a healthy manner and in conditions of freedom and dignity and that childhood and youth are protected against exploitation and against moral and material abandonment. Article 41 deals with right to work, education and public assistance in certain cases and thus imposed duty on the State to public assistance basically for those who are old, sick and disable. Article 42 provides for just and humane conditions of work and maternity relief and gives the power to the State for making provisions in this regard, which implies that this Article is intended to protect the health of infants and mothers by providing maternity relief . Article 47 imposes duty on the State to raise the level of nutrition and the standard of living and to improve public health. It categorically provides that "the State shall regard the raising of the level of nutrition and the standard of living of its people and the improvement of public health as among its primary duties and, in particular , the State shall endeavour to bring about prohibition of the consumption except for medicinal purposes of intoxicating drinks and of drugs which are injurious to health." Article 48A ensures that State shall endeavour to protect and impose the pollution free environment for good health.

Legislative entries- The concept of health is a multi dimensional subject. It encompasses a number of aspects like drug, tobacco use and consumption, public health, sanitation etc. From that perspective, the three lists of the Constitution of India contains different entries with regard to health.

Union List- These items are considered under Clause No.58, 59, 81 and 84. They are reproduced below:

58. Manufacture, supply and distribution of salt by Union agencies; regulation and control of manufacture, supply and distribution of salt by other agencies.

59. Cultivation, manufacture, and sale for export of opium.

81. Inter-state migration; Inter-State Quarantine

84. Duties of excise on tobacco and other goods manufactured or produced in India except -

(a) alcoholic liquors for human consumption;

(b) opium, Indian hemp and other narcotic drugs and narcotics, but including medical and toilet preparations containing alcohol or any substance included in sub-paragraph (b) of this entry.

State List : Under the State List has a direct reference to health. Clause No.6 under the State List refers to public health and sanitation, hospitals and dispensaries.

Concurrent List -

16. Lunacy and mental deficiency, including places for the reception or treatment of lunatics and mental deficient.

18. Adulteration of foodstuffs and other goods.

19. Drugs and poisons, subject to the provisions of entry 59 of List with respect to opium.

91. (20A. Population control and family planning).

24. Invalidity and old age pensions and maternity benefits.

92. (25. Medical education and universities, subject to the provisions of entries

63,64,65 and 66 of List I; vocational and technical training of labour.)

25. Medical and other professions

28. Charities and charitable institutions.

29. Prevention of the extension from one State to another of infectious or contagious diseases or pets affecting men, animals or plants.

30. Vital statistics including registration of births and deaths.

93. (33. Trade and commerce in, and the production, supply and distribution of)

(b) foodstuffs, including edible oilseeds and oils.

Health Policies in India:- In order to facilitate health care for all, India has initiated a number of policies. The state governments in India have also formulated health policies and schemes in accordance with their needs.

Keeping in mind the objectives of Alma Ata declaration, India formulated its first national health policy in 1983. The main objective of the national health policy 1983 was to provide universal and comprehensive primary health care services.

The important initiatives of the National Health Policy, 1983 may be underlined in the following way -

1. It envisaged a phase wise and time bound programme for setting up a network of well comprehensive health care services keeping in mind the ground reality that health related problems can only be solved by people themselves.

2. It called for establishing a well worked out referral system which can lessen the burden of higher level public health institutions/ hospitals.

3. It called for a well comprehensive network of speciality and super-speciality services and encouragement of such facilities through private investments for patients who can pay.

4. It called for intermediary services of health volunteers who possess appropriate knowledge, simple skills and requisite technologies

After a gap of 19 years from the formulation of first National Health Policy, India formulated its second National Health Policy in 2002. The National Health Policy, 2002 has stressed on the need of equitable access to health care services across the social and geographical expanse of the country. Further the policy calls for establishing a well comprehensive primary health care services in rural India. The policy put emphasis on increasing the public expenditure on health care services by releasing more funds from Union Government.

In 1999, the Regional Conference on Public Health in South East Asia in 21st century was held in Calcutta. After reviewing the progress of public health education, training, practice, lessons learned from various policies and programmes in South East Asia region, the conference adopted the Calcutta declaration. The declaration outlines the strategies and directions to be taken by the South East Asian countries in health development. The public health care system gained momentum after the Calcutta Declaration. The Calcutta declaration has redefined the role of public health in South East Asia region. The declaration calls for adopting new innovative solutions in the backdrop of emerging new challenges in public health.

The Calcutta declaration emphasised on the need of formulating and implementing policies and programs involving community participation, increasing financial and human resources allocation. The declaration further states that public health should address issues of poverty, equity, ethics, quality, social justice, community development, environment and globalisation. The declaration emphasised on the need of reforming and strengthening the public health education, training and research by coordinating with institutions and using information technology.

Some of the noteworthy features of the policy may be underlined in the following way-

In respect of public health expenditure, the National health policy envisaged that the central government has to play a leading role. It targeted for 25 per cent public health investment by central government from the existing 15 per cent by 2010. It planned to increase health sector expenditure to 6 percent of GDP, with 2 percent of GDP being contributed as public health investment, by the year 2010.

a. The National Health Policy, 2002 has provided for an increased allocation of 55 percent of the total public health investment for primary health care. Further it targeted an allocation of 35 percent for secondary sector and 10 percent for tertiary sector.

b. It mandated for compulsory 2 years of rural posting before awarding graduate degree. This would provide service to the rural masses that are from underserved areas and would provide valuable clinical experience to the young medical practitioners.

c. The National Health Policy, 2002 envisages for establishing a Medical Grants Commission for funding new Government Medical and Dental Colleges in different parts of the country.

d. The National Health Policy, 2002 envisaged for involvement of Panchayat bodies in health care programmes. It asked all state governments for decentralising the programmes to panchayat bodies by 2005. For the implementation of the programme, the central government shall be taking responsibility for funding.

e. The National Health Policy put emphasis on the improvement in the ratio of nurses vis--vis doctors/beds.

f. The National Health Policy , 2002 has called for establishing two fold urban primary health care system i.e., at the first tier, primary health centre for a population of one lakh and in second tier, a urban health organisation at the level of government general hospital. The funding for this twofold urban primary health care system has to be borne by local self governments, State Governments and Central Government.

g. In order to reduce accident morality, the National Health Policy calls for establishing 'hub-spoke' trauma care networks.

h. It emphasised on the need of upgrading the physical infrastructure of mental hospital/institutions at Central Government expense so as to uphold the human rights of this vulnerable section of society.

State Laws on Right to Health Care :

A number of State Legislatures have enacted legislations concerning public health. State of Tamil Nadu was one of the pioneering states in enacting legislations concerning public health. The Tamil Nadu Public Health Act, 1939 received the assent of the Governor on the 28th February 1939. The Act is made to advance the cause of public health in the state of Tamil Nadu.

In 1949, state of Madhya Pradesh enacted the Madhya Pradesh Public Health Act, 1949. In 1973, another state legislation surfaced in Indian Legal system, namely The Puducherry (Public) Health Act,1973 for advancement and administration of health in Union Territory of Pondicherry.

The Assam Public Health Act, 2010 is considered as one of the milestone state legislations as it is the first legislation in India ensuring the people a right to health.

A brief glimpse of the Assam Public Health Act, 2010 is presented

below-

The preamble sets out the aims and objectives of the Act. The Act has been enacted with the aim of providing protection and fulfilment of rights in relation to health and well being, health equity and justice, achieving the goal of health for all. It extends to the wole of Assam and came into force on 7th May, 2010.

Chapter I is entitled as preliminary and it provides definitions of 22 terms used in the Act.

Chapter II is entitled as obligations of Government in the Heath and Family Welfare Department in relation to health.

Section 3 of the Act sets forth the obligations of Health and Family Welfare Department of State Government.

Section 3(1) of the Act provides that the Government in Health and Family Welfare Department have certain general obligations towards the progressive realisation of health and well being of every person in the state which include-

a. Undertake appropriate and adequate budgetary measures for ensuring the planning and rational allocation and distribution of resources for various health and health related issues and concerns.

b. Provide access to health care services and ensure that there shall not be any denial of health care directly or indirectly to any one by any public or private service providers.

Section 3(2) stipulates that the Health and Family Welfare Department shall coordinate with other departments of Government in order to fulfil its general obligation.

Section 3 (3) provides some other obligations to be carried out by the Health and Family Welfare Department of State Government which inter alia include the Safeguarding of the rights related to health care as provided under the Act, taking effective measures to prevent , treat and control epidemic and endemic diseases, providing education and access to information to the communities on main health issues, providing health care to mother and child and to have effective measures to mitigate any public health emergencies.

Section 4 of the Act provides other obligations of the Health and Family Welfare Department of State Government in relation to taking appropriate legal steps including making laws, review or amends existing public health laws, strict implementation of laws etc.

Chapter III is entitled as Collective and individual rights in relation to Health. Section 5 of the Act provides for right to health to every person. It provides for the following rights -

A. Ensures to every person the right to appropriate health care, health care related functional equipments and infrastructure, ambulance services, trained medical and professional personnel and essential drugs.

B. Reproductive and sexual health care especially for women and girls.

C. Registration of birth and deaths

D. Food safety in hospitals and health establishments owned by government and private sector

E. Population stabilization and family planning

F. Immunity from health nuisances and bio medical waste.

G. Safe drinking water in hospitals and health establishments.

H. Sanitation and environmental hygiene etc.

Section 6 of the Act provides the user right to information about access to and use of health care facilities, services, programmes, conditions and technologies.

Section 7 provides for users right to medical record of at least two years preceding the last date when the service was used.

Section 8 provides for user right to autonomy and prior voluntary informed consent.

Section 9 provides for users right to confidentiality, information disclosure and privacy

Section 10 provides for users duties while section 11 provides for right to health care providers vis a vis users.

Chapter IV of the Act provide for implementation and monitoring mechanisms in the form of establishing State Public Health Board and its powers and functions, District Public Health Boards and their powers and functions, health information system and community based monitoring.

Chapter V is entitled as 'miscellaneous' which deals with the power to make rules by Government in consultation with state and district Public Health Boards.

While the last Chapter VI is entitled as 'Immunities' which deals with immunity of Government personnel, experts or agents or any NGO or civil society specially authorised by Government to act under this Act in relation to death of any person or any injury caused to any individual , dame to property etc.

Further it provides for immunity from action for damages for bonafide acts done under the Act.

Role of Judiciary- Paschim Banga Khet Mazdoor Samity v.State of West Bengal - It was held that in a welfare state, the primary duty of the government is to secure the welfare of the people. Providing adequate medical facilities for the people is an obligation undertaken by the government in a welfare state. The government discharges this obligation by providing medical care to the persons seeking to avail of those facilities

Consumer Education and Research Centre v.Union of India - The Supreme Court explicitly held that the right to health and medicalcare is a fundamental right under Article 21 of the Constitution and this right to health and medical care, to protect health and vigour are some of the integral factors of a meaningful right to life.

Vincent Panikurlangara v. Union of India - It was held that a healthy body is the very foundation for all human activities. In a welfare state,

therefore, it is the obligation of the state to ensure the creation and the sustaining of conditions congenial to good health

Pt.Parmanand Katara v Union of India - It ruled that government hospital or otherwise has the professional obligation to provide medical care without waiting for legal formalities to be complied with.

Problems of Health Care System in Assam and barriers in realisation of Right to Health in Assam-

Although Assam is the first state in the country to frame legislation on right to health, yet it displays a dismal picture of health care services. Proving the people of the state quality health care services has been a matter of challenge. Since the enactment of the Assam Public Health Act, 2010, 7 years have elapsed. How far progress has been made in health sectors in Assam with these 7 years is a matter of question. Here an attempt will be made to analyse the situation of health care services in Assam with the help of some yardsticks.

Population Control in Assam- The population in Assam has been increasing steadily. There has been significant rise in the population of some of the districts of Assam. As per the census of 2011 Assam has population of 3.12 Crores which indicates an increase 2.67 Crore as compared to 2001 census. According to the HMIS Fact Sheet of Assam shows that the estimated population of Assam is 329,64,513 for 2015-16. By 2036 population of Assam is expected to be 04 crore.

The Assam Human Development Report, 2014 reports that Assam accounts for 2.6 percent of the total population of the country. The National Family Health Survey indicates that there are 993 females against 1000 males in Assam. It shows a decline compared to the National Family Health Survey of 2005-06 which recorded 1008 females against 1000 males. As per the latest Family Health Survey, 2019-20 Assam has improved in terms of sex ratio, but child marriage rate has increased and presently stands at 31.8 percent.

In order to stop the increasing rate of population, Assam Government has made an attempt to revise the Assam Population Policy in the year 2017. The recently drafted State Population Policy stipulates that those with more than two children will be ineligible for government employment and taking part in panchayat and municipal body elections.

Patterns of Mortality- According to Assam Human Development Report, 2014, among conventional health indicators, levels and patterns of mortality - across age and sex- is considered as one of the best summary indicators of the overall health status of the population. As per the National Family Health Survey, 2015-16 infant mortality rate of child is 48 per 1000 live births in Assam. But as per HMIS fact sheet of Assam for 2015-16 shows that annual estimated death of infants is 39371 for the year 2014-15 , while for 2015-16 it is estimate to be 36,100 . Again, maternal mortality ration in Assam is also increasing day by day. According to the same fact sheet annual estimated maternal deaths for year 2014-15 is 2187. As per the

National Family Health Survey, 2019-20 infant mortality rate is 31.9 percent and neonatal mortality rate is 22.5 percent in Assam.

Delivery Care- Assam has also reported a significant rise in the home deliveries. The public health care system is considered to the safest place to deliver a baby. Home deliveries involve a number health complication and are considered as one of the reasons for high rate of mortality rate of child and mother. For the year 2015-16 , Assam has recorded a 88,701 numbers of home deliveries. It shows that only a 23 percent of the total home delivers are conducted under Skilled Birth Attendants. As per the National Family Health Survey Report, 2019-20 , only 84.1 percent deliveries are institutional delivery in Assam.

Budget for Health- Compared to other states of the country, Assam has allocated a very less amount of budgetary allocation for health. For example in the year 2009-10 , Assam invested 142094 laks of rupees for health sector which is very less compared to 158570 laks of Madhaya pradesh , 231355 laks of Rajasthan , 202019 of Karnataka. Around 7.1 percent of total budget expenditure is invested in health sector in Assam for the year 2021.

Concluding observation- Providing quality health care services to the mass has been a matter of challenge in India. In a welfare state, state machinery has the constitutional obligation of uplifting the health and nutritional status of people. But how far this constitutional obligation has been fulfilled by the state is a matter of more elaborate research. But from the above study it appears that in spite of constitutional commitments and enactment of Assam Public Health Act, 2010, Assam has miserably failed to provide quality health care services to the mass.

References

1. Pacific North West Foundation, Master Glossary**.** Available at http://pnwf.org/html/h.HTM#health (Last accessed on 5th June , 2022 at 8.15 am)
2. Pacific North West Foundation, Definitions Of Health/Wellness . Available at http://www.pnf.org/Definitions_of_Health_C.pdf (Last accessed on 5th June , 2022 at 8.15 am)
3. Draft Version of the Gujarat Public Health Act, 2009
4. Ministry of *Health* & Family Welfare-Government of India, National Health Policy – 2002, available at mohfw.nic.in/WriteReadData/l892s/1804889291210517911 0National%20Health%20policy-2002.pdf (Last accessed on 17th June , 2022 at 9 pm)
5. Available at http://www.who.int/about/role/en/ (Last accessed on 25TH June, 2022 at 1 pm)
6. Ministry of *Health* & Family Welfare-Government of India, National Health Policy – 2002, available at mohfw.nic.in/WriteReadData/l892s/1804889291210517911 0National%20Health%20policy-2002.pdf (Last accessed on 13th January , 2023 at 12.53 pm)
7. Pondicherry (Alteration of name) Act, 2006 has changed the name of Pondicherry to Puducherry
8. DNA India , Health act ensures right to health for all in Assam, 1 April, 2010 .

Available at http://www.dnaindia.com/india/report-health-act-ensures-right-to-health-for-all-in-assam-1366064 (Last accessed on 13th January , 2023, 2022 at 9 am)
9. 1996 SCC (4) 37
10. AIR 1995 SC 922
11. AIR 1987 SC 990
12. AIR 1989 SC 2039
13. 'Assam Population 2022 | Sex Ratio & Literacy Rate 2023' <https:// www.census2011.co.in/census/state/assam.html> accessed 30 January 2023.
14. Available at https://nrhm-mis.nic.in/HMISReports/frmDownload.aspx?download=rpM%2fA0p%2fr4v5fDXGBm7V2Ay+9OSM1Gpqk%2fyfBHk6WFnLh6wVHW%2fDEkbyin+ijM483 jPRI3GvdgEEY1iDorT51ZIHaaactfNGRuVbTLRihTzTAQEpax6vy+lL6O6svVxN9VCJR13hSFUtbYDCDH3Lbw%3d%3d (Last accessed on 15th January, 2023 at 5 pm)
15. 'Assam's Population Likely to Touch 4 Crore by 2036 | Guwahati News - Times of India' <https://timesofindia.indiatimes.com/city/guwahati/assams-population-likely-to-touch-4-crore-by-2036/articleshow/92817029.cms> accessed 30th January 2023.
16. International Institute for Population Sciences, National Family Health Survey, 2015-16 , State Fact Sheet Assam at p. 2
17. Sentinel Digital Desk, 'Saving Minor Girls - Sentinelassam' (30 January 2023) <https://www.sentinelassam.com/editorial/saving-minor-girls-635211> accessed 30 January 2023.
18. Jashodhara Dasgupta Et. Al. International Rhetoric, Domestic Evidence Government Claims on Health Inconsistent with Reality , Economic & Political Weekly **E**JUNE 17, 2017, Vol LII no 24
19. Available at https://sita.assam.gov.in/sites/default/files/swf_utility_folder/departments/sita_medhassu_in_oid_4/portlet/level_1/files/FINAL_Assam_HDR_2014_0.pdf (Last accessed on 30th January, 2022)
20. Available at https://nrhm-mis.nic.in/HMISReports/frmDownload.aspx?download=rpM%2fA0p%2fr4v5fDXGBm7V2Ay+9OSM1Gpqk%2fyfBHk6WFnLh6wVHW%2fDEkbyin+ijM483jPRI3GvdgEEY1iDorT51ZIHaaactfNGRuVbTLRihTzTAQEpax6vy+lL6O6svVxN9VCJR13hSFUtbYDCDH3Lbw%3d%3d (Last accessed on 15th June, 2022 at 5 pm)
21. Mita Choudhury, H.K. Amar Nath and Bharatee Bhusana Dash, Distribution of Public Spending across Health Facilities: A study of Karnataka, Rajasthan, Madhya Pradesh and Assam, National Institute of Public Finance and Policy Available at -http://www.nipfp.org.in/media/medialibrary/2013/08/treasury_report.pdf (Last Accessed on 15th June, 2022)
22. 'Assam Budget Analysis 2021-22' (*PRS Legislative Research*) <https:// prsindia.org/budgets/states/assam-budget-analysis-2021-22> accessed 30 January 2023.

●

Achieving Sustainable Development Goals :
With Special Reference to Poverty and Hunger in India

Corresponding Author : Jai Prakash Verma*

Abstract : United Nations General Assembly established the Sustainable Development Goals (SDGs) in September 2015 as part of the Agenda for Sustainable Development, which aims to change the globe. The SDGs are expected to be completed by 2030. The comprehensive set of 17 objectives in the sustainable development goals is aimed at illuminating a nation's social, economic, and environmental circumstances. In order to ensure that everyone has access to enough food, the SDGs' first aim is to reduce poverty, and their second target is to end hunger by 2030. The COVID-19 pandemic has a big impact on meeting the Goals. However during the pandemic, the Indian government passed a number of emergency laws and launched programmes to aid homes, employees, and the poor directly and indirectly. The PM-GKAY social assistance programme, part of India's COVID-19 social assistance package, was launched in March 2020 and was intended to offer urgent help to the vulnerable population. In light of this, the present Paper makes an effort to analyze how the SDGs are being implemented in India, with a focus on eradicating poverty and hunger. The paper is based mainly on secondary data and pertinent literature.

Keywords: *SDGs, Poverty Eradication, Zero Hunger, COVID-19, Vulnerable Population*

Introduction : The United Nations General Assembly adopted the 17 Sustainable Development Goals (SDGs) and the 169 targets that go along with them at the beginning of its 70th Session in September 2015, taking effect on January 1st, 2016. The SDGs, while not legally binding, have nonetheless established themselves as worldwide commitments and have the power to alter the domestic priorities of nations over the next fifteen years. It is envisioned that nations will take charge of establishing their own national frameworks to accomplish these Goals. It should be underlined that the SDGs serve in a sense as little more than benchmarks and monitoring instruments to direct and evaluate national development processes. Only a country's own sustainable development policies, strategies, and programmes can ensure implementation and success. The 2030 Agenda, which includes the SDGs, also emphasizes the need for high-quality, trustworthy, and disaggregated data to evaluate progress towards the goals and guarantee that no one is left behind. The agenda listed 17

* Assistant Professor– Department of Economics, Netaji Subhash Chandra Bose Govt. Girls PG College, Aliganj, Lucknow, Uttar Pradesh (India) Corresponding Author

SDGs, and the UN defined specific targets and indicators for each of them. Together, 169 targets and 213 indicators make up a worldwide action plan (United Nations, 2017). The SDGs are an acknowledged roadmap required for shared and sustainable prosperity with international action by enterprises, industry, civil society organisations, governmental and non-governmental organizations, research, and technological development (Khaled et. al. 2021). Nonetheless, there are significant obstacles to overcome, highlighting the significance of the interactions between individuals, sectors, and nations with different levels of economic growth (Staford-Smith et. al., 2017). The substantial interdependencies between one goal's failure or delay in implementation and how it would affect other goals can also be noted (Randers et al. 2018; Dáz-López et al. 2021). Due to the complexity of these interrelationships, it is important for researchers to evaluate the state of SDG research, for example by mapping the existing knowledge or developing new knowledge to help achieve the goals set forth by the UN and also enable the elimination of earlier partial approaches to sustainable development (Belmonte-Urea et al. 2021; Bordignon 2021). It is commonly agreed that India's progress towards the SDGs will have a substantial impact on the 2030 Agenda's overall success. It is not only due to the population's size, but also to the robustness and adaptability of the Indian economy. Moreover, India has been a global leader in the fight against poverty and hunger. It is time to assess the nation's advancement on particular SDGs after four years since the adoption of the ambitious plan. The SDG India Index: Baseline Report 2018 published by the NITI Aayog served as the foundation for this effort to reflect the progress profile of India.

Institutional Set-up : The NITI Aayog has been in charge of directing the national implementation of the SDGs. The NITI Aayog has completed a mapping of all SDGs, Central Ministries, and Centrally-sponsored Programmes as part of this implementation process. Additionally, it is conducting national and local consultations with other parties, including as States and Union Territories. The SDG India Index: Baseline Report 2018 (December 2018) and Localizing SDGs: Early Lessons from India, 2019 are two documents that NITI Aayog has released (July 2019). In addition to classifying States and UTs into Achievers, Front Runners Performers, and Aspirants based on their performance, NITI Aayog has also chosen more than 100 aspirational districts for targeted interventions. One of the major participants in the implementation of the SDGs is the Ministry of Statistics and Programme Implementation. The Ministry has produced 306 national indicators in accordance with the 169 SDG targets and the Global Indicators Framework as indicators are essential to measuring the development and degree of achievement of the targets and Goals in India.

62 key indicators have also been found among the 306 indicators to track India's most crucial developmental goals.

Poverty and Hunger : India's policy makers have placed eradicating poverty at the top of their priority list. Poor rainy seasons and droughts have frequently resulted in severe famine because the economy is predominantly agrarian and depends 7 percent on agriculture that is rainfed. India is home to a quarter of the world's hungry population despite gradually becoming self-sufficient in the production of food grains; this phenomenon is related to unequal wealth and resource distribution. Notwithstanding the nation's overall economic growth, India's ranking in worldwide indices of poverty, hunger, and women's status has remained far from adequate throughout the past few decades. The nation is ranked 131st out of all nations by the Human Development Index (HDI) and 94th out of 107 nations evaluated by the Global Hunger Index (GHI). Stories of sexual abuse that occasionally appear in the news are simply the top of the iceberg when it comes to gender issues.

India has made significant GDP growth improvements. The World Bank estimates that India's Gini coefficient, which measures how evenly income is distributed across the population, was 0.38 in 2011 after rising from 0.43 in 1995–1996 to 0.45 in 2004-05. India had 198,000 high net worth individuals (annual income over $1 million) with a collective value of $785 billion, according to the 2015 Global Wealth Report. According to the FAO's "The Status of Food Security and Nutrition in the World, 2019" report, 14.5% of India's population, or 194.4 million people, are considered undernourished. In addition, 51.4% of women between the ages of 15 and 49 who are fertile are anemic. The SDGs provide a framework for more equal and balanced growth (QMU, 2021). The "Transformation of Aspirational Districts" Program seeks to swiftly raise the socioeconomic standing of 117 districts from 28 different states. It is an NITI Aayog programme, run by a major organization. Convergence of Central & State Schemes. Cooperation among citizens and functionaries of Central and State Governments including District Teams and competition among Districts are the three main tenets of the programme. This programme, which is mostly driven by the States, targets the attainable results for immediate development and focuses on the strengths of each district. The program's five primary themes-health and nutrition, education, agriculture and water resources, financial inclusion and skill development, and basic infrastructure—have an immediate impact on individuals' quality of life and economic productivity. A dashboard is used to track 81 data points on a regular basis.

Since April 2020, the COVID-19 crisis and the unilateral imposition of a total lockdown and cessation of all economic activities, with the

exception of essential services (primarily hospitals, pharmacies, retail food outlets, and delivery services, but excluding all forms of road, rail, and air transport), have rocked the Indian economy and dislocated hundreds of thousands of migrant and temporary workers from their sources of income, suggesting Although evidence that poverty levels have decreased since 1993, it is believed that 21.9 percent of Indians still live below the poverty line. According to estimates from the UN Food and Agricultural Organization (FAO), India has roughly 195 million hungry people and is not currently on track to meet SDG 2 by 2030. Under-5 children who are underweight and stunted are malnutrition-specific targets that are well behind schedule, and some of the targets are not even being tracked. India has made progress in reducing child stunting, but the country still has the greatest percentage of stunted children under the age of five—46.6 million—of any country in the world. FAO estimates that India has the second-highest estimated number of undernourished individuals in the world behind China, while having made little progress or seeing indicators decline. India still carries 23.8% of the global burden of malnourishment (QMU , 2021).

Five national level indicators that cover three of the seven SDG targets for 2030 have been identified to assess India's progress towards the No Poverty Goal. The five national indicators are: (i) the poverty rate (according to estimates from the Tendulkar Committee); (ii) health insurance coverage; (iii) the number of people receiving employment under the MGNREG Act; (iv) maternity benefits; and (v) homelessness. The Index Score for SDG 1 on poverty for India is 54, with the score range for the States being between 37 and 76 and the UTs being between 21 and 61. The top-performing States and UTs are Puducherry and Tamil Nadu, respectively. The Indian government has launched a number of initiatives to combat persistent poverty, improve access to essential services, offer social security, sustain poverty escapes, and create gainful jobs. In order to increase the employability of the poor, anti-poverty initiatives like the Deendayal Upadhyay Grameen Kaushalya Yojana, the National Rural Livelihood Mission, and the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA) focus on creating employment, skill development, microcredit, and capacity building. Ayushman Bharat, Mission Antyodaya, the National Food Security Mission, Poshan Abhiyan, Swachh Bharat Mission, Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY), Pradhan Mantri Ujjawala Yojana, Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana (PMJDY), etc. are a few of the other programmes.

Although sporadic accomplishments in the Northeast and the Himalayan state of Uttarakhand, the southern states of Kerala, Tamil Nadu, and Andhra Pradesh have experienced the most success in reducing

poverty. According to their high levels of current development, the aforementioned states—along with Goa, Haryana, Himachal Pradesh, and Punjab—have already achieved or are very close to achieving the GOI aim of halving the national poverty rate. In terms of health coverage, which is essential for avoiding poverty, Andhra Pradesh, Kerala, Tamil Nadu, and Telangana are among the Indian states with the highest rates. On the other hand, a number of central and northern states, extending from Bihar in the east to Maharashtra in the west, have struggled to reduce poverty due to a combination of urban and rural issues. Over 40 percent of people in Chhattisgarh reside below the national poverty threshold, which, as was already mentioned, is perhaps set too low. Following closely behind it are Assam, Bihar, Jharkhand, Madhya Pradesh, Odisha, and Uttar Pradesh, all of which have poverty rates that are close to or higher than 30 percent. Homelessness has turned into a particularly difficult issue in some other States and UTs with significant urban centres. About 2 percent homeless people are in Maharashtra, Chandigarh, and Madhya Pradesh. However, homelessness affects 5 percent of households in Delhi.

Four national level indicators that cover three of the eight SDG targets for 2030 have been established to gauge India's progress towards the Goal of Zero Hunger. The four national indicators are as follows: (i) Households receiving food assistance (PDS); (ii) stunting in children under 5; (iii) anemia in women; and (iv) agricultural output. Based on these indicators, India is ranked 48th, whereas the scores for the States and UTs range from 35 to 80 and 38 to 72 respectively. The best-performing States and UTs, respectively, were Goa and Delhi. India has launched a number of efforts that are closely connected with the goals set forth under this aim in an effort to abolish hunger and all types of malnutrition. These initiatives include the Mid-day Meal (MDM) programme, the Pradhan Mantri Matru Vandana Yojana (PMMVY), the Integrated Child Development Scheme (ICDS), the National Nutrition Mission's POSHAN Abhiyaan, and others. The National Mission on Agricultural Extension and Technology, the National Mission on Sustainable Agriculture, the National Food Security Mission, and others are other policies that are related to agriculture.

A technique called the global hunger index is designed to quantify and track hunger globally as well as by region and nation. Every year, the World Hunger Index is calculated, and the results are published in a report that is released in October. Every year, the International Food Policy Research (IFPRI) calculates the World Hunger Index scores to determine whether or not the fight against hunger is making progress. With a score of 30.3% on the 2019 Global Hunger Index, India ranks 102 globally out of a total of 117 countries that are eligible, indicating that the country has a major hunger problem. In the 2019 World Hunger Index Report, India placed 102nd

overall out of 117 nations that qualified. Sri Lanka, a neighboring country, is ranked 66th. Myanmar ranked 69th, Nepal ranked 73rd, Bangladesh ranked 88th, and Pakistan ranked 94th in terms of significant hunger.

The Northeastern states bordering Myanmar, together with Punjab, Kerala, Goa, Sikkim, and a number of other states in the region, have made the greatest progress in addressing sustainability-related problems with food production and hunger. In terms of stunting in children under the age of 5, Kerala, Punjab, Goa, and Tripura have the lowest rates of malnutrition in the nation. While stunting in these four states still ranges between 20 and 25 percent , their accomplishment contrasts with India's general childhood stunting rate of 38percent . For the states of Bihar, Jharkhand, and Uttar Pradesh, each of which has stunting rates above 45 percent , these nutritional findings seem especially encouraging. Yet, with over 50 percent of pregnant women in the nation suffering from anemia, nutrition continues to be a difficult issue for these women. The states of Kerala, Manipur, Mizoram, Nagaland, and Sikkim have almost reached this goal (perhaps because they have different dietary restrictions and preferences from the rest of the nation), setting the example for the rest of India, which hopes to reduce that percentage roughly in half by 2030.

COVID-19 Pandemic : India has received acclaim from all over the world for swiftly implementing a lockdown over the entire nation to stop the deadly coronavirus's spread. Nonetheless, the lockdown has damaged the nation's economy and will have a ripple effect on many facets of life. Yet, those most affected by the economic crisis will be those earning a daily salary, those employed in construction (particularly unregistered labourers), and those working in unorganized industries. The initial fiscal support package, worth Rs. I1.7 lakh crore, was created to offer short-term help during the lockdown. In March 2020, the Pradhan Mantri Garib Kalyan Yojana was unveiled. This drew upon 12 separate pre-existing programmes and provided cash transfers, in-kind transfers, benefits for supporting a front-line health worker's livelihood, and insurance coverage. The *Atmanirbhar Bharat* package of initiatives, which were announced over many months beginning in May 2020, came next. A "1.7 trillion package" under the Pradhan Mantri Garib Kalyan Yojana (PMGKY) was announced by the Ministry of Finance on March 26, 2020, with the intention of providing monetary incentives and free rations to below-poverty-line (BPL) families and other targeted groups for the upcoming three months. The Ministry of Labour has announced an employment provident fund for wage earners whose monthly wage earnings are less than '15,000 per month and who are employed in an establishment with up to 100 workers as part of PMGKY and in an effort to prevent disruptions in short-term employment. In accordance with this programme, the

government will deposit 24% of subscribers' wages into their provident fund accounts. The PMGKY and the *Atmanirbhar Bharat* packages, which were announced in 2020, included free food, cash transfers, MGNREGA, PM-KISAN payments, and pension payments to address the pandemic's effects on vulnerable households. Nonetheless, PMGKY's efficacy was comparable for both categories of pain relief strategies. As a safety net in rural regions, MGNREGA has been extremely important. According to the official statistics, approximately 252 crore person-days of work were produced up until November 2020, an increase of 43% from the previous year. In comparison to the prior year, more than 10 million (1 crore) households participated in MGNREGA in 2020–21. States tested a variety of methods to provide greater assistance, including increasing the cash amount, delivering cash via ration shops, delivering cash at the door, increasing PDS, and introducing urban job programmes.

In the World Development Report from 1986, "access by all people to enough food for an active, healthy life at all times" was how food security was defined. According to the Food and Agricultural Organization, food security is "ensuring that all people at all times have both physical and economic access to fundamental food they require" (FAO, 1983). For everyone to lead an active and healthy life, they must always have ready access to enough food that is nutritious, safe, and satisfies their dietary needs and preferences (World Food Summit, 1996). These four facets of food security are inextricably intertwined and must cooperate for a system to be successful. The idea of food security can be taken into account at both the household and economic levels using the aforementioned components. It is undeniable that ensuring access to food is essential for both worker productivity and saving lives. Food security is not only crucial (for its own purpose), but it also contributes to increased labour productivity. As a result, the food security system of a nation has two roles in development. According to this perspective, inclusive growth necessitates complete food security. In this context, the Food Security Act of 2013 is a good first step towards inclusive growth. But, if a law, act, or policy cannot be put into practise, it is ineffective. Dev et al. (2011) report that between 1996 and 2008, the growth rate of food grain output decreased from 2.93 percent between 1986 and 1995 to 0.93 percent. Mani (2012) has shown that there was a noticeable decrease in the rate of expansion of agricultural production throughout the 1990s. He argues that the objective of export-led growth is consistent with agriculture policies in the era of reform. To implement this plan, farmers are advised to plant more cash crops, particularly rubber, tea, and coffee. Without a doubt, it reduces the amount of land that can be used to raise food. Furthermore, Mani (2012) argues that the government's recent trade policy, price policy, and weak market

mechanism are to blame for the subpar performance of the production of food grains during the reform era. Dey, et al. (2013) investigated how new economic policies have affected India's agricultural development. Sharma (2013) computed the yearly compound growth rates for area, production, and productivity for three sub-periods: 1950–51–1970–71, 1971–72–1991–92, and 1992–93–2012–13. The food supply chain is made up of five steps: agricultural production, postharvest management, processing, distribution, and consumption. The food supply chain employs two systems for ensuring the quality and safety of the food. The first is founded on laws and regulations that use mandatory standards that are checked by government agencies. The second one is dependent on voluntarily accepted standards set by international organizations or market legislation (Bendekovic et al., 2015). Health issues for food employees, personal hygiene, wearing protective gear like gloves and helmets, sanitizing workspaces and surfaces, safe food handling, preparation, and delivery, and maintaining social distance are all safety measures to ensure the food flow is uninterrupted at each stage. Protective measures in the chain's final phases are vital because more people may be impacted as it goes towards its end because the food supply chain involves not just farmers, wholesalers, and consumers, but also labor-intensive food processing plants (Rizou et al., 2020). Production was reduced, suspended, or temporarily stopped in many plants due to workers who were found to be COVID-19 positive and who refused to report to work because they thought they would get sick there during the pandemic, particularly in the meat-processing food industries. These elements were thought to have caused a 25% decrease in the output capacity of facilities that produce pork by the end of April. (Flynn, 2020; Devereux et al., 2020).

Under the energetic leadership of Honorable Prime Minister Shri Narendra Modi, the Indian government issued a financial package in March 2020 called "*Atma Nirbhar Bharat*" as a relief to the poor, the marginalized, and others for economic recovery and tackling the challenges of the epidemic. The *Pradhan Mantri Garib Kalyan Anna Yojana* (PMGKAY) was unveiled in March 2020, amid the initial COVID - 19 pandemic-related countrywide lockdown. The Central Government offers 5 kg of free food grains to the underprivileged each month as part of this programme. This is in addition to the subsidized ration provided to households enrolled in the Public Distribution System (PDS) under the National Food Security Act (NFSA) (PDS). As part of *Atmanirbhar Bharat,* the *Pradhan Mantri Garib Kalyan Anna Yojana* (PM-GKAY) programme offers free food grains to migrants and the underprivileged. By the public distribution system created to reach all priority households (ration card holders) and *Antyodaya Anna Yojana*, it is intended to meet the food needs

of the underprivileged. The first and second phases of this plan, respectively, were in operation from April to June and July to November 2020. The third phase of the plan was in operation from May to June 2021. Phases IV and V of the plan will run from July to November 2021 and December 2021 to March 2022, respectively. The current Phase-VI began in March 2022 and will probably last through December 2022. It should be highlighted that the PM-GKAY is the largest food security programme in the world and has been in place since April 2020. The Public Distribution System is being used to carry out the Plan. Around Rs 2.60 lakh crore has already been spent by the government on the programme, and an additional Rs 80,000 crore would be invested over the following six months, through September 2022.

India has shifted away from dependency on food aid and has turned into a net food exporter thanks to a five-fold rise in food grain production, which increased from 50 million tonnes in 1950–51 to around 250 million tons in 2014–15. To increase farmers' incomes by 2022, the government introduced a number of programmes in 2016. They aim to clear obstacles in the way of increased agricultural productivity, particularly in rural areas. National Food Security Mission, *Rashtriya Krishi Vikas Yojana* (RKVY), Integrated Schemes on Oilseeds9, Pulses, Palm oil, and Maize (ISOPOM*), Pradhan Mantri Fasal Bima Yojana*, e-NAM, as well as significant irrigation and water harvesting programmes to increase the country's gross irrigated area from 90 million hectares to 103 million hectares by 2017 are among them. The introduction of mid-day meals at schools, anganwadi systems to provide rations to expectant and nursing mothers, and subsidized grains for those living below the poverty line through a public distribution system are just a few of the significant measures the government has taken to combat malnutrition.

The worldwide response to India's efforts to combat the COVID-19 virus has been positive. The lockdown did, however, come at a financial cost and had a ripple effect on every aspect of life. Thousands of thousands of labourers marching back to their communities on Indian roadways are seeking some warmth and compassion (Dandekar and Ghai, 2020). The national and state governments in India attempted to care for the economy and the poorest of the poor under the special economic package, PMGKY plan, however efficient execution of this scheme presents a significant difficulty (Jha , 2020). In order to successfully implement the plan, governance-related concerns are crucial (Singh , 2019). While there has been progress in making this architecture available across the nation, several of the last-mile issues that implementers still face have not been resolved (Gupta, 2020). The unpredictable credit facilities under DBT have been a significant problem in the previous two to three years. After the first

few payment cycles, transfers can become erraticly credited into DBT accounts, either as delays or outright stops. This could be due to a number of factors, such as transaction failures at the back-end (Khera and Somanchi, 2020), misspellings of beneficiaries' names (News 18, 2020), blocking of accounts by banks as part of account cleaning exercises, issues with Aadhaar seeding, and conflicts between product codes when accounts are converted from *Jan Dhan Yojana* to Basic Savings Bank Deposit (BSBD) accounts or vice versa (Kodali, ,2020,). The timing of the epidemic, the prompt implementation of public policy responses, the development of infrastructure for social transfers, and other theories are put forth by policy experts as possible explanations for the agricultural sector's resilience (Mohan et al., 2020; Jhajhria et al., 2020). Prices of essential commodities remained stable in May and June 2020 due to better supply chain management (Varshney et al., 2020a), and the procurement picked up in May and June, albeit with a slow start. Although the government's price stabilization policies have initially helped stability in cereal prices (Lowe and Roth, 2020). Also, because most agricultural trade in India takes place physically, farmers frequently do not receive money for their produce right away (Reddy, 2017). According to Varshney et al. (2020), while making investment decisions for the agricultural sector, it is important to consider when PM-KISAN benefits are transmitted to farmers. According to the notion of fungibility, spending is more sensitive to income and liquid assets than it is to assets like houses (Levin, 1998). According to empirical research on the fungibility of microfinance in Bangladesh and India, the money given to farmers has been diverted to pay for uninvited obligations (Mahajan and Ramola, 1996; Sharma and Zeller, 1997). As a result, it is expected that farmers will use the advantages gained here to increase the return on their agricultural investments. Prices of essential commodities remained stable in May and June 2020 due to better supply chain management (Varshney et al., 2020), and the procurement picked up in May and June, albeit with a slow start. Although the government's price has stabilization policies initially helped stability in cereal prices (Lowe and Roth, 2020). Also, because most agricultural trade in India takes place physically, farmers frequently do not receive money for their produce right away (Reddy, 2017). According to Varshney et al. (2020), while making investment decisions for the agricultural sector, it is important to consider when PM-KISAN benefits are transmitted to farmers.

The capacity of everyone to have access to enough food at all times is known as food security (Krishna et al., 2015) All people on the earth would have access to food security under goal two of the 17 Sustainable Development Goals (SDGs). And the only way we can do this is to engage in sustainable agriculture. Agriculture is the only sector where 40% of

people worldwide are working (Kumar et al., 2018). Asia was home to 63% of the world's hungry people in 2017, according to the United Nations Development Program (UNDP). In the modern world, where there is an abundance of food grain production but an unequal distribution of that grain, there is an issue of widespread food insecurity. It is challenging to provide healthful meals for the expanding population. An unusual level of food grain output is also impacted by crop failure brought on by drought and flooding, diminishing water resources, soil erosion, and climate abnormalities. The lack of awareness among farmers about government policies and what to do in the event of crop damage is another factor contributing to the agrarian crisis. The poor implementation of programmes like PDS, the poor management of food resources, the very limited use of technology, the lack of investment in research to find alternative sources of food, the lack of willpower in leaders, etc. are some of the challenges that require the proper attention of the political class, bureaucracy, civil society, and the integration with the marginal and poor people of the country. Making sure there is enough food has always been one of the top priorities for Indian policymakers and planners.

Challenges : India has the most people living below the worldwide poverty line, despite its best efforts to combat poverty. According to a 2013 World Bank estimate, 30% of its people was living in poverty, defined as living on less than $1.90 per day (World Bank, 2016). Despite significant economic progress, one-third of the world's 1.2 billion extremely poor people lived in India alone in 2010, according to the United Nations MDG 2014 report (UN, 2014). An average yearly financing shortage of almost $2.5 trillion during the years 2015 to 2030 persists at the current level of public and private investment in SDG-related industries in developing nations (World Investment Report, 2014). More private sector investment is required to close this gap, particularly in the fields of infrastructure, food security, and climate change mitigation. A recent study in India projects that the cost of implementing the SDGs there by 2030 will be about $14.4 billion (World Investment Report, 2014). Given the recent cuts to India's social sector programmes, there is probably going to be a sizable financing vacuum (Hanson et. al. 2003). Although NITI Aayog is supposed to take the lead in monitoring the SDGs' development, some of its members have expressed doubts about their capacity to do so. How to gauge SDG accomplishment or development is the final obstacle. The Indian government has acknowledged that it is nearly hard to accurately gauge progress towards even the MDGs due to data availability concerns, periodicity problems, and poor administrative data coverage. By creating a unique model for implementing, monitoring, measuring, and reporting SDG-related course of action, the problems mentioned above can be

overcome. Due to a lack of data, India was unable to adequately assess its achievement of the MDGs. Hence, it is crucial to create a system that can support this effort by providing the necessary data, as well as appropriate metrics for evaluating the development of the SDGs.

The nation's existing academic infrastructure can be strengthened in order to partially address the issue of SDG finance. India boasts of being the birthplace of numerous prestigious institutions, like IIT and IIM, and serves as a regional powerhouse for higher education. The infrastructure for research at these institutions is highly developed. Designing, creating, and measuring indicators intended for sustainable development can be done by combining and properly utilising these resources. There was some reluctance in emerging nations like India to reduce carbon emissions for two reasons: first, their per capita emissions were lower, and second, it would imply giving up on the country's development (Celine et. al. 2011). It is imperative that the Indian Government decentralise this tedious effort in light of NITI Ayog's expressed skepticism about how far it will succeed in doing so. Yet, it must be kept in mind that SDGs are intended to conserve and pass on natural resources to future generations. Without the support of society, this is impossible to accomplish. But, it is practically impossible for a society with such advanced understanding to exploit its natural resources in an entirely ecologically appropriate way. The natural resource base will be subject to new pressures due to shifting social, political, cultural, technological, and ecological situations, and there is always a risk that these resources will be misused or used excessively (Scoones, 1999). Consequently, the ideal political system would be one in which people who would suffer the repercussions of those judgements made the decisions. It is necessary to develop a new mechanism that would guarantee participation from parties with a direct stake in the issue. The global effort to achieve sustainable development has suffered greatly as a result of the COVID-19 epidemic. The global average SDG score fell in 2020 for the first time since the Sustainable Development Goals (SDGs) were adopted in 2015. The higher rates of poverty and unemployment during the pandemic, according to analysts, are mostly to blame for the overall decline in the composite SDG score. Even wealthy nations like Finland, Sweden, and Denmark—which come in first, second, and third on the SDG index, respectively—are not on course to meet all of the SDGs. The socio-economic effects of the epidemic on low-income countries were even more severe since they lacked the financial resources to fund emergency response plans and economic recovery strategies, as well as their most susceptible populations (such as migratory workers and women).

Conclusion : The second-largest population in the world is found in India. The world pays close attention to India's efforts to attain the SDGs. If

India is successful in achieving the SDGs, then a larger portion of the world will have done so. India must therefore create efficient systems for carrying out, overseeing, and tracking the SDGs' development. The creation of appropriate indicators appears to be India's major obstacle. This problem can be solved by creating the Indian Index for Sustainable Development (IISD), which will be based on the Ibrahim index. Economic growth and MDG achievement are highly correlated throughout Indian states. This is a result of both direct and indirect effects of growth on the MDGs, including the creation of jobs and higher incomes for low-income households, which may be used to invest in education, health care, and nutrition. States that have improved their service delivery have also done a better job of meeting the MDGs. For instance, states with superior overall MDG performance scores offered more labour to the poor under the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA) and more food grains to low-income households through the Public Distribution System (PDS). The COVID -19 epidemics caused suffering among small and marginal farmers, craftsmen, migrant labourers, and the destitute. The government launched a number of programmes, including Self Reliant India, which created jobs for the underprivileged while also providing cash transfers, rations, and gas distribution. Thus, it may be concluded that despite the adverse impact of COVID-19 pandemic, India government is committed towards achieving SDGs particularly poverty alleviation and attaining zero hunger. Many states have pooled their budgetary resources for effective implementation of SDGs and achieving development targets.

References :

- Belmonte-Ureña LJ, Plaza-Úbeda JA, Vazquez-Brust D, Yakovleva N (2021) Circular economy, growth and green growth as pathways for research on sustainable development goals: a global analysis and future agenda. Ecol Econ 185:107050. https://doi.org/10. 1016/j.ecolecon.2021.107050
- Bendekoviæ, J. et. al (2015) Food safety and food quality in the supply chain *Trade Perspectives,* 151 163 , Google Scholar WorldCat
- Biberman, John and Nirupam Bajpai (2020) India and The SDGs , CSD Working Paper Series, Towards a New Indian Model of Information and Communications Technology-Led Growth and Development, Centre for Sustainable Development, Columbia University
- Bordignon F (2021) Dataset of search queries to map scientific publications to the UN sustainable development goals. Data Brief 34:106731.
- Celine Dorathy MB (2011) Carbon Emission-An Emerging Issue in Corporate Governance. Journal of Commerce and Management Thought. 2(3):451-61.
- Dandekar, A. , & Ghai, R. (2020). Migration and reverse migration in the age of COVID 19. Economic and Political Weekly, 55(19), 28–31.
- Dev, S. Mahendra and A. N. Sharma (2010). Food Security in India: Performance, Challenges and Policies, *Oxfam India working papers series September 2010, Oxfam India*.

- Devereu, S , et. al. (2020) Conceptualising COVID-19's impacts on household food security *Food Security,*12 ,769 , 772, Google Scholar, Crossref , WorldCat
- Dey, R., S. Mondal and T. Debnath (2013). Trends in Agricultural Development in New Economic Era: A State Level Analysis. in M. Ghosh and A. K. Chattopadhyay(Eds) Rural Development in India Challenges and Prospects, *Serials Publications, New Delhi. pp 35-51*
- Díaz-López C, Martín-Blanco C, De la Torre Bayo JJ et al (2021) Analyzing the scientific evolution of the Sustainable Development Goals. Applied Science.11:8286.
- Feder, G., Just, R. E., & Zilberman, D. (1985). Adoption of agricultural innovations in developing countries: A survey. Economic development and cultural change, 33(2), 255-298
- Flyn, D. (2020).CDC provides first guidance to a specific meat plant for combating COVID-19 among employees [Online] . https:// www.foodsafetynews.com/2020/04/cdc-provides-first-guidance-to-a-specific-meat-plant-for-combating-covid-19-among-employees/. Accessed on'
- Gupta, M. D. (2020). Modi govt stares at 'shortage of funds' for MGNREGS urban variant, drops idea for now, The Print October 6.
- Hanson K, Ranson MK, Oliveira-Cruz V, Mills A.(2003) Expanding access to priority health interventions: a framework for understanding the constraints to scaling-up. Journal of International Development. Jan 1; 15(1):1.
- Jha, S., 2020. Adopt fixed-term contracts for seasonal work, Labour Minister asks industry. [Online] Available at: https:// www.business-standard.com/article/ economy-policy/adopt-fixed-term-contracts-for-seasonal-work-labour-ministerasks-industry-120100501138_
- Jhajhria, A., Kandpal, A., Balaji., S. J., Jumrani, J., Kingsly, I. T., Kumar, K., Singh, N. P., Birthal, P. S., Sharma, P., Saxena, R., Srivastava, S., Subash, S. P., Pal, S., Nikam, V., (2020) COVID-19 lockdown and Indian agriculture: Options to reduce the impact, National Institute of Agricultural Economics and Policy Research, Indian Council of Agricultural Research, Government of India. Working Paper, October 2020.
- Khaled R, Ali H, Mohamed EKA (2021) The Sustainable Development Goals and corporate sustainability performance: mapping, extent and determinants. Journal of Clean Production , 311:127599
- Khera, R and A Somanchi (2020), 'A review of coverage of the Public Distribution System', Ideas for India, 19 August.
- Krishna, N., Kundapur, R., Kiran, N.U., and Badiger, S., (2015) Food Security and Nutrition Consumption Among Households in the Semi-Urban Field Practice area of K.S. Hegde Medical Academy, Mangalore: A Pilot Study, Nitte University Journal of Health Sciences, 5(2),pp. 31-37.
- Kumar, N., Anand, S. and Singh, J., (2018), Understanding the Status of Food Security: A Case Study of Haryana, The Horizon: A Journal of Social Sciences 1(IX), pp. 1-18.
- Levin, L (998) **Are assets fungible?: Testing the behavioral theory of life-cycle savings** J. Econ. Behav. Organ., 36 (1) (1998), pp. 59-83 Article Download PDFView Record in Scopus Google Scholar
- Low and Roth.2020. India's supply chain unchained. International Food Policy Research Institute (IFPRI), South Asia Office, New Delhi, India.
- Mahajan, V., & Ramola, B. G. (1996). Financial services for the rural poor and

women in India: Access and sustainability. Journal of International Development, 8(2), 211-224.
- Mani, K. P. (2012). Agriculture Growth and Performance, in B. A. Prakash (Eds). The Indian Economy Economic Reforms and Performance. *Pearson, Delhi, pp 323-41*
- Mohan et al., (2020) How agriculture stayed resilient despite Covid shock, Times of India, Opinion Article, May 30, 2020 How agriculture stayed resilient despite Covid shock - Times of India (2020) indiatimes.com
- QMU(2021) Implementing The SDGs In India: Poverty, Hunger and Gender, Queen Marry University, London, Report , March
- Randers J, Rockstrom J, Stoknes PE, Golüke U, Collste D, Cornell S (2018) Transformation is feasible: how to achieve the sustainable development goals within planetary boundaries. A report to the Club of Rome from Stockholm Resilience Centre and BI Norwegian Business School, Stockholm University
- Reddy, A. (2017). Impact of e-markets in Karnataka, India. Indian Journal of Agricultural Marketing, 30(2), 31-44.
- Rizou , M. Et. al. (220) Safety of foods, food supply chain and environment within the COVID-19 pandemic*Trends in Food Science & Technology* ,102 , 293, 299 Google Scholar Crossref , WorldCat
- Scoones I.(1999) New ecology and the social sciences: what prospects for a fruitful engagement?. Annual review of anthropology. Oct; 28(1):479-507.
- Sharma, Amod (2013). Trends in Area Production and Productivity of Food Grain crops: An Overview. *Economic Affairs, Vol. 58 No.1 pp 57-68*
- Sharma, M., & Zeller, M. (1997). Repayment performance in group-based credit programs in Bangladesh: An empirical analysis. World development, 25(10), 1731-1742.
- Staford-Smith M, Griggs D, Gafney O et al (2017) Integration: the key to implementing the Sustainable Development Goals. Sustainable Science , 12:911–919.
- United Nations (2014) . The Millennium Development Goals Report 2014. New York: United Nations.
- United Nations (2017) A/RES/71/313 - Work of the Statistical Commission pertaining to the 2030 Agenda for Sustainable Development. Resolution adopted by the General Assembly on 6 July 2017, p 25.
- Varshney, D., Joshi, P. K., Roy, D., & Kumar, A. (2020). PM-KISAN and the Adoption of Modern Agricultural Technologies. Economic & Political Weekly, 55(23), 49.
- World Bank(2016) India has highest population of poor: World Bank. The Hindu Business line.2016 Oct 3. available from https://www.pressreader.com/india/the-hindu-business-line/.../281865822968167
- World Investment Report (2014) Investing In The SDGs: An Action Plan, UNCTAD

●

Understanding the Cultural and Analytical Aspect of the Development of a Disabled in *Insignificant Events in The Life of a Cactus* by Dusti Bowling

Retty Christopher Cardoz*, Dr. Shibani Chakraverty Aich**

Abstract : Since the beginning of time, society has had a strong tendency to stigmatise those who have disabilities as being incapable, inept, or weak. People who are crippled are typically looked upon with pity or fear. The goal of this study is to show that traumatic social experiences can cause long-term trauma and identity crises in the disabled, making it harder for them to overcome social obstacles than biological or medical ones. A notable piece of children's literature called *Insignificant Events in The Life of a Cactus* by Dusti Bowling is selected for a special cause. When we examine the disabled characters in both works, we notice a pattern where these characters frequently encounter negative responses from young people in the community, sometimes even from children their own age. This reveals the necessity of instilling children with a right understanding and awareness from an early age if we want them to grow up to be kind and caring adults.

Keywords : Disability, Disability studies, Identity crisis, Children's fiction

According to Simi Linton (1998), it is "a field that explores the critical divisions our society makes in creating the normal versus the pathological, the insider versus the outsider, or the competent citizen versus the ward of the state" (Linton 2) Disability studies, similar to other scholarly equity projects, 'cuts across a range of disciplines, examine how power and privilege function to create and reproduce ableist cultures (Mallett and Runswick-Cole, 2014). Ableist cultures are constituted by two prevailing systems of thought. The first constructs disability as an inherent deficit or anomaly of the individual and the second promulgates compulsory able-bodied and reasoned normative standards to which we must all aspire. (Campbell, 2008; McRuer, 2006).

The Social model of disability views disability as a socially constructed phenomenon on account of the environmental attitude and behaviour of the society. This model could be explained by Disabled People's International's quote: "the loss or limitation of opportunities to take part in the normal life of the community on an equal level with others due to physical or social barriers." This model prioritises that any individual irrespective of their ability or inability have equal rights to be a member of full potentiality in a society. It eliminates the identity of being a disabled person from a medical context and tries to reconstruct society's

* Department of English– Amrita Vishwa Vidyapeetham, Amritapuri, India
** Department of English– Amrita Vishwa Vidyapeetham, Amritapuri, India

norms towards people of disability. The problem lies as society neglects its duty of fulfilling small duties such as in giving equal opportunity in education and job offers, public facilities like transportation, special medical aids, and easy access in buildings.

The Minority model of disability regards the fact that it's the society's failing in to accept and adapt to disabled people's demands of ambition and desires wholeheartedly. It is in the behavioural manner of the normal people in the society that does not fit with the disabled minority. If the society cannot indulge on to such, then it's the problem of the society and not of the disabled people.

The Cultural model of disability is a community of disabled people who come in together on the basis of their disability. There they embrace onto different cultures they come from as a unified group. They find it unchallenging within this group as they accept each other without any judgements on their identity of being a disabled person.

In *Insignificant Events in the Life of a Cactus,* Aven's first awareness of her lack of arms came from the incident at a playground where another kid screams with terror upon seeing her in the playground. This child cannot alone be blamed for his reaction of this sort, as it is merely a reflection of his ignorance on the subject of disability. His reaction was utterly honest as the kid obviously didn't know the right way to behave in such a situation. As his family failed to endow him with the fundamental awareness about people with disabilities, it led to culminating in an inerasable traumatic memory and a constant reminder of her lack of 'ordinariness' for the protagonist. "I had never realised just how different I was until the day that horrible kid shouted about my arms having fallen off. For the first time I found myself aware of my total armlessness, and I guess I felt like I was sort of naked all of a sudden." (Bowling 07).

Society often assumes that anyone with disability would doubtlessly require constant assistance and aid in carrying out their day-to-day chores and tasks. This common predisposition is visible through the following lines:

Everyone was super nice and caring, of course, but they all said the same thing so much, it started to get annoying: "If there's anything you need, Aven, don't be afraid to ask." Like they just knew I was going to need a lot of extra help." (Bowling 18). "My teachers had all been nice enough, but I didn't want them giving me special treatment. I could tell they all wanted to. (Bowling 29).

Most of the insecurities of Aven originates from her concern regarding how society would react to her. At times this society induced self-consciousness overpowers to such an extent that it restrains her from doing the simplest of things that give happiness. "I always wanted to wear a dress with skinny straps like that, but I guess I felt too self-conscious about it; the strappy dress wouldn't look the same without some nice long arms to show off in it." (Bowling 19).

Another aspect often overlooked is the terminology used to denote people with disabilities, especially in public. “I locked myself in the handicapped stall and sat down.” (Bowling 31) According to the National Disability Authority, terms like ‘handicapped’ are considered offensive and stigmatising. A much better alternative is the term ‘person with disability’. Usually nice-nellyism is the root cause of the problem. As suggested by disability activist and Paralympic Medalist Elizabeth Wright, “By denying the very term disability we are removing disability from the equation. Society ceases to be the problem. The world doesn’t need to be fixed or challenged around ableism because there is nothing to fix.” The same thought is conveyed by Aven through the lines “When you have a malformation (yuck, I hate that word) like I do, you definitely have to deal with the usual looks.” (Bowling 43)

As suggested in the minority model of disability, Aven, Connor and Zion end up being viewed by some of the schoolmates as outcasts due to their medical conditions. “As Connor, Zion, and I walked together down the sidewalk, I heard someone do that coughing thing when they sneak a word into the cough, but they’re not actually being very sneaky about it at all. And the word was freaks.” (Bowling 79) Even after getting to know her, Aven’s schoolmates alienated her due to her disability and refrained from her company. “Most of the kids at school were now ignoring me completely. I guess they were used to seeing me around by now, so I wasn’t getting any more shocked looks. It was more like I just didn’t exist” (Bowling 93)

When it comes to the basic understanding of disability, generally people tend to have a wrong notion that only individuals with physical disabilities can come under the description of ‘disabled’. “I think some of them assume I do it for attention, but I don’t care. Most people I meet think I’m doing it deliberately at first.” (Bowling 41) These lines suggest how particularly young children are unenlightened regarding the various types/ kinds of conditions that belong to the category of disability. As Connor’s condition is predominantly a behavioural disability that may not be easily noted from his physical appearance, the other kids at school even mistake it as him putting on an act to gain attention.

The stigma towards people with disabilities has existed since time immemorial and continues to exist in society even now. This inequity is carried on like an infinite loop, as parents first adopt such wrong notions and condition their children with similar ideologies. At other times, children assume such absurd ideas and the parent, rather than correcting, encourages them. Such an inst “Then this one kid cried out, ‘Gross! She’s putting her feet in the Play-Doh.’”...”Kids are dumb,” Zion said.”Then his mom looked at my mom and said this: ‘Would you mind not letting your daughter put her feet in the Play-Doh?’” (Bowling 64)

The Cultural affiliation model stresses on the tendency of individuals with various disabilities to develop a sense of belongingness as they

associate with other individuals or groups with commonalities in their condition. It helps them in better acceptance of their identity and empowerment. "It would be just as much for me as you," I said. "It turns out I like kids who have Tourette's, and I don't have all that many friends. So I'd like to go and see about making some new friends in a place where I'm not the only kid who's sort of different." (Bowling 85) Within the peer group, though every member's Torette manifested distinctively, they acknowledged each other's condition with thoughtful consideration. "Connor barked as we stood there surveying the room. The other kids didn't seem at all fazed by his barking, but they watched me with curiosity. That was okay." (Bowling 86) Even Aven, who has a different kind of disability compared to the rest of the peer group, felt at ease with them. "It was also strangely comforting. No one cared about my lack of arms; they were all far too caught up in their own struggles. And I, for once, felt completely normal among this group of misfits." (Bowling 90)

Since Aven Connor and Zion faced similar treatment from society due to their respective medical conditions, they could easily relate to each other's struggles. This understanding helped them to stand up for one another against the prejudice of society.

The role of good friendships and a supportive family in tackling societal and other challenges for the disabled is perhaps the most important message conveyed through the novel. Aven's final blog post affirms this idea. "Awesome parents. This is a must…Friends who listen…Friends who laugh with you…Friends who are brave. Friends who love you just the way you are…These last few supplies are hard to find, but when you do find them (and I sincerely hope you do), hold on to them forever." (Bowling 170)

Aven's character has remarkably succeeded in becoming self-reliant and can well enough take care of herself. She has made this possible through undeterred perseverance, years of training and consistent support from family and some old friends. In a way one can say that she conquered her physical disabilities by compensating her difficulties through other means. However, the only challenge she struggles to overpower is the one created by others in society.

From the time I was little, my parents had trained me to be an extreme problem-solver…. They were determined I would grow up to be a totally self-sufficient, problem-solving expert. I only wished I could solve the problem of how to make friends in a sea of kids who thought I was a freak (Bowling 13) In my whole life, I had seldom felt like I was missing out on anything by not having arms. Some of the only times I had ever wished for them were during those fleeting moments of frustration when my shirt got caught around my neck or some insensitive person tossed something at me without thinking, only to have it bounce off my chest or head. (Bowling 129)

When we compare the experiences of the characters with disability in

Wonder by R.J.Palacio and *Insignificant Events In The Life Of A Cactus* by Dusti Bowling, there are several similarities as well as differences. For instance, something often overlooked is the way in which a person with disability notices even the slightest gesture and reactions to his/her disability from the onlooker. In both the novels we can almost form an assemblage of the various kinds of expressions shown by the observers towards the disabled characters.

When I looked up at her, Mrs. Garcia's eyes dropped for a second. It was so fast no one else would have noticed, since the rest of her face stayed exactly the same."(Palacio 25) "While she was talking, I noticed Julian staring at me out of the corner of his eye. This is something I see people do a lot with me. They think I don't know they're staring, but I can tell from the way their heads are tilted." (Palacio 34) "Before I'd walked five steps, I got my first look. I tried to ignore it." (Bowling 18) "I could tell the girl was desperately trying not to look at my non-existent arms. People were always doing that—like if they looked down at my torso for longer than a split second, they would turn to stone." (Bowling 19).

In both the novels, the protagonist's classmates fear their disability to be transmissible and it forms the ground for their bitterness. Such erroneous notions must be corrected from a young age itself for which basic awareness on the subject must be given from school level itself.

The girls looked alarmed. "Is it contagious?" green-tank-top girl asked. I gazed at the girl, searching her face to see if she was serious. I imagined passing my arm lessness on to other people, their fully grown arms shrinking and shrivelling and getting sucked up into their shoulders with a terrible slurping sound after I touched them… "No, it's genetic…The girls' faces all relaxed as flowery-tank-top girl said, "Oh, that's good. It was nice meeting you. (Bowling 33)

Auggie's insecurity of his appearance bothered him more while he ate in public. "I hate the way I eat. I know how weird it looks. I had a surgery to fix my cleft palate when I was a baby, and then a second cleft surgery when I was four, but I still have a hole in the roof of my mouth. And even though I had jaw-alignment surgery a few years ago, I have to chew food in the front of my mouth." (Palacio 57) It is the same story for Aven, Connor and Zion. Since being in a new environment, eating with her feet made Aven self-conscious and worried as to how the rest of the students would stare at her.

"Zion says: I don't want the other kids to watch me eat. Everyone likes to watch a fat guy eat. They want to see how much food he can stuff into his mouth" (Bowling 64).

Upon close observation, one can find the dissimilarity in the parenting style adopted by Aven and Auggie's parents. Auggie's parents are more coddling while Aven's parents attempt to make her more independent, thereby preparing her to face the real world. "I think I can do all these things because my parents have always encouraged me to figure things out

on my own—well, more like made me figure things out on my own. I suppose if they had always done everything for me, I would be helpless without them." (Bowling 08). In total contrast to this is the parenting approach adopted by Connor's father who considers his son's disability as an embarrassment and is so apathetic that he demands the disability be concealed from society.

Related to globally significant concerns like racism, environmental protection, etc., there has been much talk but little action on issues related to disability. As a result, some negative social stereotypes and attitudes continue to exist. In our nation, there is a clear lack of empathy and indifference toward those who have disabilities. This topic remains significant until society accepts to treat a disabled person with consideration and equity and respond to it through feelings other than fear, rage, disdain, or sympathy. It is intended to inspire kids who face similar problems in real life by showing these two works, in which young protagonists with impairments overcome socially imposed obstacles. It is critical to foster compassion, love, and understanding in children from an early age, and we must all work together to make society a safe place for persons with disabilities. Family and friends are crucial in helping people with disabilities gain confidence and thrive in general.

Works cited

1. Palacio, R.J. *Wonder*. United States : Alfred A. Knopf, 2012.
2. Amy. "6 Theoretical Models of Disability." *100 days of A11y*, 08 Nov 2019, 100daysofa11y.com/2019/11/08/theoretical-models-of-disability/.
3. Byrne-Haber, Sheri. "Is an identity model replacing the charitable, medical, and social models of disability." *Medium*, The Shadow, 28 Jan 2021, medium.com/the-shadow/is-an-identity-model-replacing-the-charitable-medical-and-social-modeLs-of-disability-ce3b42bbb43d.
4. "Disability Studies." *Disability Studies - an overview | ScienceDirect Topics*, www.sciencedirect.com/topics/social-sciences/disability-studies.
5. "Models of Disability: Types and definitions." *Disabled World*, 10 Sept 2010, www.disabled-world.com/definitions/disability-models.php.
6. Retif, M. & Letsosa, R., 2018, 'Models of disability: A brief overview' *HTS Teologiese Studies/Theological Studies* 74(1), doi.org/10.4102/hts.v74i1.4738
7. "Why It's Important to Raise Awareness Around Disabilities." *Weaver Industries*, www.weaverindustries.org/blog-details/why-its-important-to-raise-awareness-around-disabilities#, Accessed on 01 Jun 2022.
8. Wright, Elizabeth. "Why you shouldn't use differently-abled anymore." Interview by Allaya Cooks-Campbell. *Buttercup*, 18 June 2011, www.betterup.com/blog/differently-abled.

●

Cultural Ecology in Jon Krakauer's *Into the Wild*

Harinandana R.*, Shibani C. Aich**

Abstract : The relation between the field of cultural ecology and the work *Into the Wild* by Jon Krakauer is explored in this paper. The protagonist's journey to the Alaskan wilderness and the subsequent conclusions he arrives at emphasizes the argument posed by the cultural ecologists. This paper conducts an attempt in understanding how civilization is interrelated with the natural world to an extent where only by the coexistence of both can balance be acquired.

Keywords : Wilderness, cultural ecology, civilization, materialistic world

Introduction : The cultural shifts that occur in a society over the ages could promote varied responses in people. Considering wilderness to be discrete from civilization and seeking serenity in it is widely exercised. Chris McCandless, the protagonist of the novel *Into the Wild* written by Jon Krakauer endures an extremely perplexed juncture of life induced by diverse factors like familial situations. He chose wilderness as his safe place. His journey offers indications which could reveal the fact that the wild and the tamed could be interrelated. This paper intends to conduct an analysis on this relation by analyzing the life of Chris McCandless and some other venturesome individuals with close parallels.

Cultural Ecology : Cultural Ecology, being the field of study in which the interrelation between human cultures and the natural environment is analyzed, contributed to numerous deliberations. According to Charles O Frank, cultural ecology is "the study of the role of culture as a dynamic component of any ecosystem". The general perception that humans and ecology as two separate subjects gives out the idea to examine the impacts of human actions on ecology as the only way to deal with several contemporary plights. On the contrary, the fact that humans are another set of animals and are a mere part of the ecosystem provides us with the knowledge that the impacts are mutual and human impressions have its repercussions from the other side - "Both affect and are affected by the other" (Crossman)

The term cultural ecology was termed by Julian Steward in the 1950s and it put forth certain queries which dwell on matters like the adaptation of humans to the biological and cultural alteration through ages. For a considerable amount of history, humans tried to decipher the challenges faced by nature as a result of human interventions. On the other hand, cultural ecology motivates the seeker to process the fact that nature's ways have caused civilizations to differ from each other. The interrelation between culture and ecology is interpreted while analyzing the work.

Chris McCandless who had a promising academic life and an exceptional financial state found himself being miserable among people

* Department of English– Amrita Vishwa Vidyapeetham, Amritapuri, India
** Department of English– Amrita Vishwa Vidyapeetham, Amritapuri, India

sprinting after material wealth. He recognizes himself in the lives of people like Gene Rusellini who left the so-called "perfect" life in pursuit of peace and knowledge. From the excerpts OF HIS INTERVIEW with Debra McKinney, a reporter, his intention to overthrow the system of civilization from his life can be deciphered.

He became convinced that humans had developed into progressively inferior beings and it was his goal to return to a natural state. He was forever experimenting with different eras-Roman times, the Iron Age, the Bronze Age. By the end his lifestyle had elements of the Neolithic. (Krakauer 75)

When in fact, the realization part of Rusellini's life is absent in the case of McCandless. Rusellini navigates himself back to society as he finds himself leaning towards it. Even Chris in his last moments tends to long for companionship as he desperately notes down in his journal that happiness is not real until it's shared. In accordance with Rosellini's conclusion,

I began my adult life with the hypothesis that it would be possible to become a Stone Age native. For over 30 years, I programmed and conditioned myself to this end. In the last 10 of it, I would say, I realistically experienced the physical, mental and emotional reality of the Stone Age. But to borrow a Buddhist phrase, eventually came a setting face-to-face with pure reality. I learned that it is not possible for human beings as we know them to live off the land. (Krakauer 76)

Rosellini had his post wilderness phase but Chris did not or to be more accurate, by the time the idea sank in, he was "TRAPPED IN THE WILD"(Krakauer 195).

The gravity of the narrative is proved by the parallels projected in the work itself. Jon Krakauer delineates comparisons among Gene Rosellini, John Mallon Waterman, Chris McCandless and Carl McCunn with the intention to find the roots of their venture. He infers that while the world appreciated those who contributed to its competitive spirit, these individuals found it endearing to embrace nature which accepted the exceptions. Through which he is introducing a new normal where the tendency of human beings to find comfort in nature is established. The theory of Cultural Studies could be applied at this point. Literary studies in earlier days, before the advent of institutionalized development of cultural studies were engrossed in highlighting the elite culture or the upper-class society and disregarded the popular culture. Richard Hoggart addressed the matter by forming the CCCS (Centre for Contemporary Cultural Studies) and re-evaluating this particular characteristic . Richard and Raymond Williams spearheaded taking novel approaches in terms of culture. Works like "Uses of Literacy ‘’ and "Culture of Society" had significant influence on the venture. The changes happening to the working-class culture with the advent of capitalism was discussed in Hoggart's book. In the "Uses of Literacy'', he mentions the impacts of massification(influence of mass media). The mass consumer culture which crept into the world as a repercussion of the World Wars were explored along with his grief for the loss of the working-class culture of Northern England (Hoggart 2017).

The New Left Theorist, Raymond Williams also spoke against the notion of high culture. He succoured the view of culture being democratic

and ordinary. He detained the theory of culture being produced rather than something already existing. As he mastered cultural production, he was cautious of how forms of communication like the press, advertisement, education and so on became instruments in the function of capitalism. The idea of dominant culture, residual culture and emigrant culture had significant roles in his book "The Long Revolution", as he predicted the conversion of culture and society by the advent of future generations and the assertion of popular and democratic values, public ownership of communication technologies and so on (Williams 1992).

The high culture which kept necessitating material wealth as quotients of one's success is discredited with the advent of such loud thoughts like that of Chris McCandless'. From Everett Ruess' last letter to his brother, it's evident that being in the wild by choice is not always an indication of lack of material wealth but by the richness of their sensitivity towards being biased for the "elite" society and the monotonous wheezing of the rat race.

As to when I shall visit civilization, it will not be soon, I think. I have not tired of wilderness; rather I enjoy its beauty and the vagrant life I lead, more keenly all the time. I prefer the saddle to the streetcar and star-sprinkled sky to a roof, the obscure and difficult trail, leading into the unknown, to any paved highway, and the deep peace of the wild to the discontent bred by cities.

Chris is unable to define his relationships under certain categories. The rootlessness and alienation he felt in his own house, the stubborn regularity of life shook him to his core that he chose instability to be his home (the thought put forward by Roland Barthes was that everything is a play of meanings with constant change - unpledged stability).

Conclusion : Chris MacCandless' perception of life had grounds in relation to his familial relationships, inquisitive nature, urge to unearth the ultimate truth regarding human life and likewise. Moving away from sophistication seemed to him as the optimal course of action yet he struggled to gather his thoughts around the conclusions he derived from years of pondering. Only through the fusion of both culture and ecology, one can peel off the conceits of the world and analyze the core with specificity. Chris as well as Rosellini culminated in this conclusion. At the same time, the propagation of this mode of finding answers is favored and brought to the mainstream as a digression from the high culture. The materialistic world might observe this slow-paced evolving system as lunacy nevertheless the intrusive ones will appreciate the judgment

Works Cited

- Krakauer, Jon. *Into the Wild.*Pan Books, 2011.
- Crossman, Ashley. "Definition of Cultural Materialism." ThoughtCo, Feb. 16, 2021, thoughtco.com/cultural-materialism-3026168.
- Williams, Raymond. The Long Revolution. Hogarth Press, 1992.
- Hoggart, Richard. The Uses of Literacy. Routledge, 2017.

●

Utilization of Antenatal Care Services during Covid-19 Pandemic in Bhabua City, Kaimur, Bihar

Corresponding Author : Dr. Meeta Ratawa Tiwary*

Abstract : Covid-19 pandemic has had a devastating effect on countries around the world, and especially on vulnerable populations. The pandemic has highlighted existing inequalities in healthcare access and social welfare systems, which have made it more difficult for some populations to access necessary care and support. The risk of infection among vulnerable populations, such as children, elderly, pregnant women, people with comorbidities, people with disabilities, migrants, and slum dwellers, is particularly high due to a number of factors.

India was not exception to this. The lack of preparedness to tackle the growing infection and related mortalities resulted in the reluctance among people to access health care facilities especially that of maternal health care. This directly influenced the maternal health. Therefore, it is important to investigate the use of Antenatal Care (ANC) during the COVID-19 pandemic, as pregnant women and their unborn babies are particularly vulnerable to the effects of the virus. The study was conducted on 250 women respondents age 15 to 45 years who had children or were pregnant during the years 2020, 2021 and 2022 in Bhabua city, Kaimur district of south west Bihar to gather information about the situation in this specific region. Purposive sampling was used to choose respondents from each ward to collect representative data. Face-to-face interviews assisted by questionnaires provided detailed information about the experiences and attitudes of participants. The study was conducted during December 2022. CART analysis was used to analyse and find out the most important variables determining the antenatal care utilisation among women respondents during this period.

Keywords : Pandemic, maternal health, Antenatal Care and Covid -19.

Acknowledgement : The scholar Dr. Meeta Ratawa Tiwary is the awardee of ICSSR Post-Doctoral Fellowship. This paper is largely an outcome of the Post-Doctoral Fellowship sponsored by the Indian Council of Social Science Research (ICSSR). However, the responsibility for the facts stated, opinions expressed, and the conclusions drawn is entirely of the author.

Introduction : Maternal health is an important parameter reflecting

* Indian Council of Social Science Research (ICSSR)-Post Doctoral Fellow (PDF)
Department of Geography, Institute of Science, Banaras Hindu University (BHU)
Varanasi, U.P.-221005

social development aiming at sustainable development. Sustainable Development Goal number 3 aims to ensure healthy lives and promote well-being for all at all ages (visit:http://www.un.org/ sustainabledevelopment). Therefore, women in their reproductive age should also be ensured a healthy life which would eventually reduce maternal mortality. Government of India holds maternal mortality as a priority area and is committed to lower maternal deaths from maternal deaths per 1,00,000 live births in 2016 to 70 by 2030 (SRSO, RGI, 2018). Both Antenatal care and post natal care services are critical for maternal health. Antenatal care holds utmost importance as it influences both maternal and child health. It helps in the reduction of maternal mortality and morbidity. It does so by providing information and creating awareness among women about danger signs, health promotion, birth preparedness and care during pregnancy.

Antenatal healthcare, also known as prenatal healthcare, is the medical care and attention given to pregnant women during their pregnancy. It is essential for the health of the mother and the developing fetus. The aim of antenatal healthcare is to promote a healthy pregnancy, reduce the risk of complications during childbirth, and ensure the well-being of both the mother and baby. This can include regular check-ups with healthcare professionals, such as doctors or midwives, as well as education and counselling on topics like nutrition, exercise, and childbirth preparation. Additionally, antenatal care often includes screening and testing for potential health risks, such as gestational diabetes or preeclampsia, and administering immunizations to protect the mother and baby from certain infections. Antenatal care is defined by the WHO as " care a pregnant mother receives before birth and and involves education , screening counselling, treatment of minor ailment, and immunization services."(Akowuah, L.A. et. al, 2018). Antenatal care is the first contact opportunity for a woman to connect with formal health services (Gebreyohannes, Y. et. al., 2017).

In 2016, the World Health Organization (WHO) updated its guidelines for antenatal care, including a new recommendation that pregnant women with uncomplicated pregnancies should receive at least eight antenatal care (ANC) contacts with healthcare professionals throughout their pregnancy (WHO, 2016). Prior to the 2016 update to WHO guidelines, the recommended minimum number of antenatal care visits for pregnant women was four (ANC4+) (WHO, 2015). This recommendation was based on the premise that four antenatal care visits were sufficient to identify and manage most pregnancy-related complications, particularly in resource-constrained settings (Ataguba, J.E., 2018). In the last fifteen years India had implemented programs to improve the health care system in the country

and address the health needs of the population. National Rural Health Mission (2005), National Urban Health Mission (2008) and Reproductive, Maternal, New Born, Child and Adolescent Health (RMNCH+ A) (2013) were such programs that aimed to ensure that women in both urban and rural areas receive antenatal and postnatal care. A minimum of four antenatal care contacts during pregnancy was recommended at specified intervals (MHFW, 2005, 2013). During the COVID-19 pandemic, pregnant women in India were advised to avoid visiting health care facilities for routine antenatal check -ups in the months of April and May 2020, as a part of measures to prevent spread of the virus. This was a temporary measure to minimize the risk of exposure to COVID-19, especially since pregnant women are considered to be at higher risk of developing severe illness if they contact the virus.

In the initial days of the lockdown the Indian Council for Medical Research (ICMR) and National Institute for Research in Reproductive Health (NIRRH) issued a detailed updated protocol for child birth. It included the reservation of obstetrics units for confirmed COVID-19 positive cases and compulsion of wearing PPE by pregnant woman, health care workers and birth partners during labour and delivery (ICMR, 2020). Despite of the detailed guidelines there was a gap in frontline health worker's awareness and comprehension of these guidelines which led to an atmosphere of confusion and fear for both pregnant woman and health workers (Green, L., et. al, 2020). There were certain barriers in accessing ANC services even after the lockdown was eased. The most common barriers were lack of preparedness in the form of PPE kits and sound medical infrastructure, administrative apathy, prevalent socio-economic inequalities apathy towards migrants coming from cities (Green, L., et. al., 2020; Bisht, R, et. al., 2020). Besides this the home visit to pregnant women and distribution of food supplements, Iron and Folic Acid (IFA), Zinc and calcium tablets were also disrupted. Heavy burden on health workers to attend COVID-19 related patients reduces their availability for maternal health care service delivery (Shrivastava, S., 2020). Apart from this inaccurate information about the service provision, restrictions on mobility, fear of getting infected were some other barriers that affected maternal health care service delivery (Aggarwal, L., et. al., 2021; renuka, M., 2020). The outcome of the situation was the bias for accessing non COVID-19 health services which had a significant impact on utilisation of antenatal and post natal care. Between May and July 2020, World Health Organization also found that 90% (90/105) of countries reported a disruption to maternal health services and that middle income countries reported greater disruptions (WHO, 2020). Similar survey conducted by WHO in early 2021 showed that 94% of the countries reported some

disruption in previous three months (WHO, 2021). During the lockdown in India there were surely indirect impacts of the pandemic that were driven by the lack of reliable means of transportation, family pressure to self-isolate to be safe, fear of getting infected and giving less importance to ANC by family members to avoid risk of transmitting COVID-19 to the foetus. Anxiety, low confidence and mental illness were the indirect impacts that deteriorated maternal health (Green, L.,et.al., 2020; Nguyen, P.H., et. al., 2021). Restrictions on mobility during the pandemic contributed significantly to the lower number of visits for ANC (Pant, S. et.al., 2020). According to the various studies conducted in different countries certain socio-economic and demographic factors such as maternal age, birth order, educational status, religion, income, occupation and previous obstetric history are significantly associated with the utilisation of ANC services (Ayalew, T.W., et.al., 2018; Timothy, R., 2020; Birmeta, K. et. al., 2013 and Ali, S. A. et. al., 2018). I this direction Shrivastava, S. (2020) also studied the challenges that pregnant women faced during lockdown while seeking institutional care in India. L.H. Nguyen et, al. (2022) in his study in Vietnam showed how the delay in antenatal care due to COVID-19 impaired pregnant women's quality of life and psychological well-being.

Kumar (2022) in his study showed a contrast in ANC service utilisation between urban and rural health facility during the pandemic era. The study showed a significant increase in ANC service utilisation at urban health facility and decline in ANC service utilisation at rural health facility. Riley et.al. 2020 estimated a 10 % decline in the proportion of women receiving sexual and reproductive health services in LMICs (Africa, Asia, Eastern and Southern Europe and Latin America and the Caribbean) and its impact on unintended pregnancy and maternal and new born mortality over 12 month period by using the available data from Demographic Health Survey and Multiple Indicator Cluster Survey.

(Ranganathan R et.al. 2020) summarized the published evidences related to antenatal care during the COVID-19 pandemic and suggested through a flow chart how community efforts can improve access to health care facilities by pregnant women and also emphasized the role of health facilities in maintaining follow up.

Martin et.al. (2022) in his observational study of postpartum women at a hospital in Brazil during pandemic reported a decline in the number of women utilising antenatal care during COVID-19 pandemic. Tadesse, E. (2020) in his study in low income countries showed that even a 10 % decline in health care access by pregnant women may cause a considerable increase in obstetric complications and maternal deaths. Landrian, A. et.al. (2021) studied the COVID-19 related barriers to ANC utilisation in Kenya.

They found that women who delivered during COVID-19 had delayed ANC initiation than who delivered before the pandemic.

Novida, A., (2022) conducted a cross sectional study during July 2021 on 344 pregnant women in primary, secondary and tertiary maternal health care facilities in Pauruan Regency, Indonesia and found that the prevalence of ANC during the pandemic's second wave attack was lower than the overall service utilisation before the pandemic.

Huailiang, Wu. Et al., (2020) studied behaviour and attitude towards ANC during pandemic. A survey among Chinese pregnant women indicated that about 20% of the respondents were reluctant to consult at hospital while 40% feared in hospital antenatal visits. More than half of the respondents decided to cancel or postpone their appointment. This indicated the behaviour and attitude of pregnant women towards ANC service as influenced by the pandemic. Guzman et. a l (2022) studied the reasons for deferrals of ANC among postpartum women respondents in Philippines from January 1 to March 31, 2022. He reported that all respondents agreed on the necessity of antenatal visits but almost half of them reported cancelling antenatal visits. Among the most cited reasons behind such behaviour were transportation problems, lockdown, financial status, fear of getting infected and lack of companion. Bankar, S. et.al (2022) also found the fear of contracting COVID-19 as the most important reason for the deferral of ANC services in the rural areas of Jharkhand, Madhya Pradesh and Uttar Pradesh.

Research Methodology : Primary data was collected from household survey through questionnaire which covered 250 women respondents in Bhabua city, Kaimur district, Bihar. From each of the 25 wards of the city 10 women respondents of age 15 to 45 years having child birth or pregnancy in the last three years (2020, 2021 and 2022) were selected. Classification And Regression Tree (CART) analysis has been used to analyse and find out the most important variables determining the antenatal care utilisation among women respondents during this period. CART is a nonparametric technique that can help in identifying the most important variable out of large number of variables that determine the outcome variable to be explained (Loh, W.Y., 2011). In the study the independent variables included age, religion, caste, literacy, level of literacy, employed or not, sector of employment and income.

Study Area : The study area Bhabua is a capital town of Kaimur district in the south western Bihar with 25°.04'26" North latitude and 83°.60'55"East longitudes. The total numbers of households in the city are 7855 with total population of 50,179 persons out of which 70.92% of its population are literates Male literacy (75.50%) is higher than the female literacy (65.72%). 79.53% of its population is Hindu followed by 20.10%

Muslims and remaining Christians, Sikhs, Buddhists and Jain. Ward no. 11 has the highest population of 3,543 persons and ward no. 4 has the lowest population of 884 persons (Census, 2011).

Data Analysis and Discussion : Socio-economic and demographic characteristics of respondents determines the knowledge, attitude, behaviour and utilization of any service. Antenatal care service utilization during COVID-19 in Bhabua city was also influenced by such socio-economic and demographic characteristics. Out of the 250 women respondents of age 15 to 45 years (Table 1) more than 70 % are between the age group 20 to 35 years. 87.6% of the total respondents are literates. More than 50 of them are educated upto higher secondary and only 13.6 % are educated till UG and above. 79. 2 % of the respondents are Hindus and OBC caste dominates the area with 59.6%. A majority of women respondents are not working (80.4%). For those who are employed, the difference between the %ages of women working in organised and unorganised sectors is only 1.2 % and majority of them have income less than 5000 rupees per month. Antenatal care service utilisation in the study area during COVID -19 is 72.8 % but only 2% of the women respondents utilised all 4 antenatal check-ups as recommended (Figure 1). Most commonly used health facilities are district hospital and private hospitals (60%) (Figure 2) them received antenatal care by health personnel at home.

Figure 1: Number of Antenatal Care

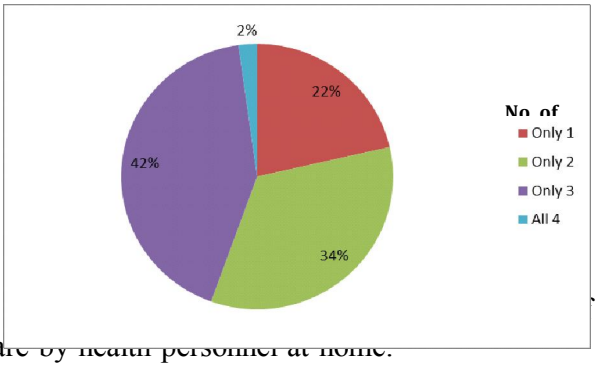

Source: Personal Field Survey, 2022

Figure 2: Place of Antenatal Care

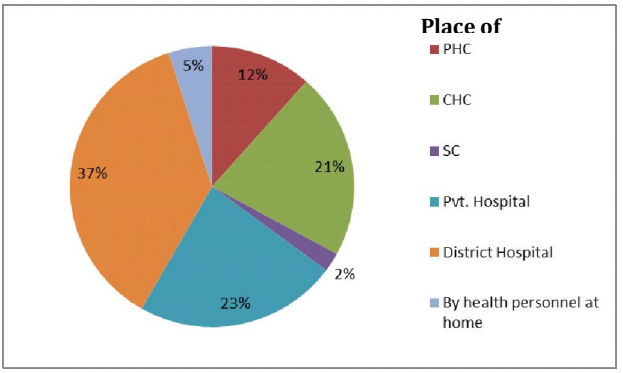

Source: Personal Field Survey, 2022

The most important variables that influenced the ANC utilisation can be understood through the CART analysis as described below.

The Classification Tree : The CRT subroutine of the Tree procedure in SPSS software was used for the data analysis. The dependent variable was "utilization of antenatal care" which was categorised as no use or No (0) and atleast 1 in all three trimesters (1). The independent variables included age: less than 20 years (1), 20 years to 35 years (2) and 35 to 45 years (3); religion: Hindus (1) and non Hindus (2) ; caste: general (1), OBC (2), SC, ST others (3); literacy: not literate (0) and literate (1); level of literacy: not literate (0), primary education (1), secondary education (2), higher secondary (3), UG and above (4); employed or not: not employed (0) and employed (1); sector of employment: not employed (0), organised sector (1) and unorganised sector (2); income : no income (0), less than 5000 rupees (1), 5000 to 10000 rupees (more than 10000). Antenatal care utilisation among women who have children of age 1, 2 or 3 years varies widely across these categories as may be seen from Table 1. The classification table generated through the application of CRT subroutine is given in Table 2.

The first split of 250 currently married women aged 15-45 years having child birth or pregnancy in the years 2020, 2021 and 2022 was on the "Utilisation of antenatal care" which divided women into two groups- women having at least one antenatal care (72.8%) and women having no antenatal care (27.2%). Antenatal care utilisation in the two groups of caste i.e. general and OBC, SC, ST and other was 66.7% and 74.9 % respectively. Between the same caste groups the non-utilisation of antenatal care was 33.3% and 25.1 % respectively. At the second level, the two caste groups were split again on the "level of literacy". The general caste group was split into (a) higher secondary education, under graduate and above (8.8 %) and (b) primary education, secondary education and above (16.4 %) having antenatal care utilization of 81.8 % and 58.5 % respectively. Similarly the OBC, SC, ST and other caste group was split into (c) primary education and secondary education (43.2 %) and (d) higher secondary education, under graduate and above (31.6%) having antenatal care utilization of 80.6 % and 31.6% respectively.

There was no further splitting of the groups of level of literacy under general caste. However, at the third level the groups (c) and (d) of OBC, SC, ST and other caste group were further split into sector of employment and literates respectively. Women who had primary and secondary education (43.2 %) were split into those working in organised sector (2%) and unorganised sector or not working (41.2 %). For women working in organised sector the antenatal care utilisation was 100 % whereas, for the

women either not working or working in unorganised sector antenatal care utilization was 79.6 %. Women who were either not educated or educated till higher secondary, under graduate and above (31.6 %) were split into those who were literate (20.4%) and those who were not literate (11.2 %). For women who were literate the antenatal care utilisation was 64.7% whereas, for those who were not literate antenatal care utilization was 71.4%.

Further literacy was not split into any groups. At fourth level the women employed in unorganised sector or not employed were split into two age groups (i) < 20 years and 20 to 35 years (32.8 %) and (j) 35 to 45 years (8.4 %). For both the groups the antenatal care utilisation was 81.7 % and 71.4 % respectively. The most important characteristic of women influencing the utilization of antenatal care was level of literacy, while the least was the employment status (employed or not). Income per month of the women respondents seems to be the second most important characteristic of women influencing the utilization of antenatal care. Compared to the level of literacy importance of Literacy (Literate or not) was found to be less than 8% while that of the employment status (employed or not) was less than 1% (Table 3). Even the influence of caste, sector of employment and age was found to be

Not more than one-fourth of the influence of the level of literacy on the utilization of antenatal care. Out of the 13 nodes of the classification tree, 07 are terminal nodes. Women in each of these terminal nodes have distinct social, economic, cultural and demographic characteristics and distinct patterns of antenatal care utilization. Women representing these nodes also vary in size. Women respondents working in unorganized sector and those who are not employed constitute the largest group out of which 79.6 % utilize antenatal care. By contrast, women respondents working in organized sector are the smallest group utilizing antenatal care.

Particulars	**Proportion of Women (%)**	**Antenatal Checkup YES (%)**	**Antenatal Checkup NO (%)**
Literates			
YES	87.6	73.52	26.48
NO	12.4	67.74	32.26
Level of Literacy			
Primary education	32.8	75.60	24.40
Secondary Education	25.6	75	25
Higher Secondary	15.6	69.23	30.77
UG and above	13.6	70.60	29.40
Religion			
Hindu	79.2	71.20	28.80
Non Hindus	20.8	78.85	21.15
Caste			
General	25.2	67	33
OBC	59.6	74	26
SC, ST and other	15.2	79	21

Table 1: Antenatal care utilisation among women aged 15-45 years

Employed or Not			
YES	19.6	73	27
NO	80.4	73.47	26.53
Sector of Employment			
Organized	10.4	73.07	26.93
Unorganized	9.2	73.91	26.09
Income			
< 5000	12.0	74	26
5000 - 10000	7.6	73.69	26.31
Age			
<20	1.6	100	0
20 – 35	75.6	73.01	26.99
35 – 45	22.8	70.17	29.83

Source: Personal Field survey, December, 2022

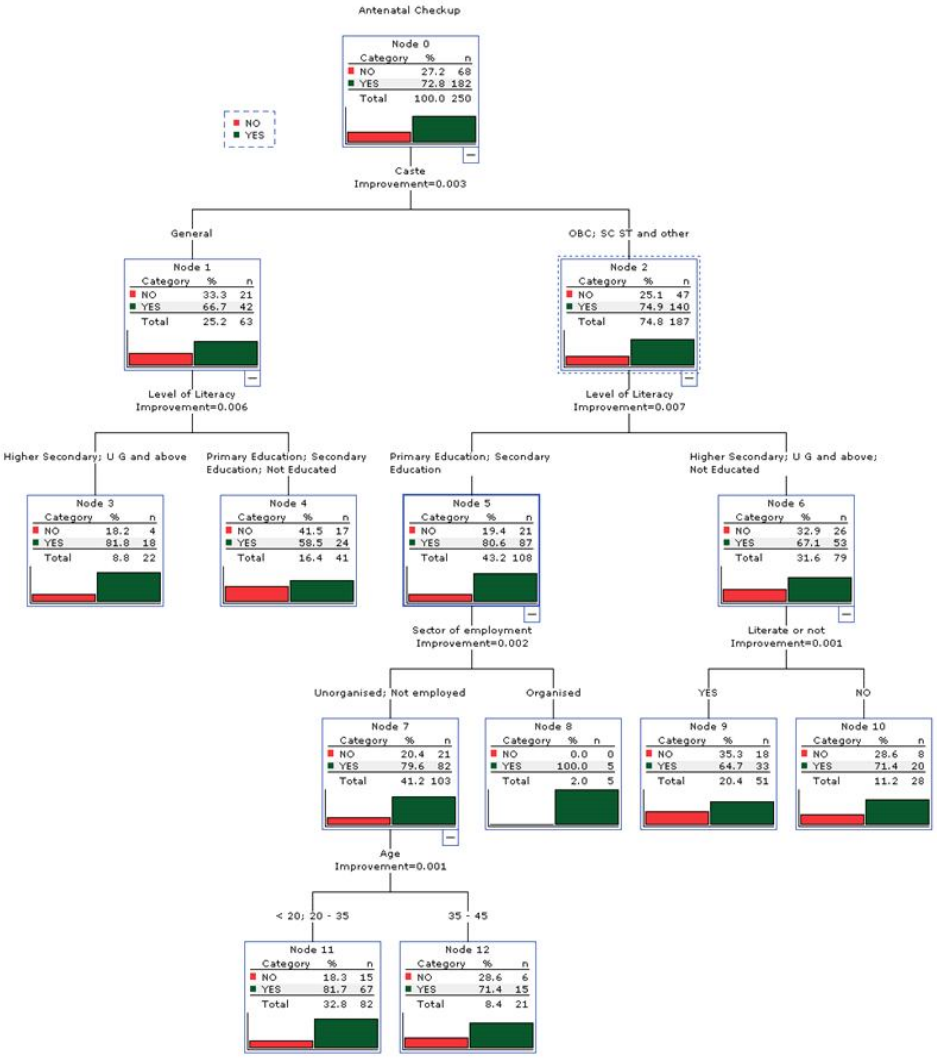

Table 2: The Classification Table

Node	Parent Node	Variable	Split Value	N	% of women utilizing antenatal care	Node Category
0	--	--	--	250	100	Parent
1	0	Caste	General	63	66.7	Parent
2	0	Caste	OBC, SC, ST and other	187	74.9	Parent
5	1	Level of Literacy	Primary education, secondary education	108	80.6	Parent
6	1	Level of Literacy	Higher secondary, UG and above	79	67.1	Parent
7	2	Sector of employment	Unorganized and not employed	103	79.6	Terminal
3	2	Level of Literacy	Higher secondary, UG and above	22	81.8	Terminal
4	5	Level of Literacy	Primary education, secondary education, not literate	41	58.5	Terminal
8	5	Sector of employment	Organized	05	100	Terminal
9	6	Literacy	Literate	51	64.7	Terminal
10	6	Literacy	Not literate	28	71.4	Terminal
11	7	Age	< 20 years, 20 – 35 years	82	81.7	Terminal
12	7	Age	35 – 45 years	21	71.4	Terminal

Source: Derived from the classification tree (Figure:3)

Table 3: Importance of characteristics of women respondents in antenatal care utilization.

Independent Variable	Absolute Improvement	Relative improvement
Level of Literacy	.013	100.0%
Income per month	.006	45.5%
Caste	.003	18.8%
Sector of employment	.002	13.6%
Age	.001	10.5%
Literate or not	.001	7.2%
Employed or not	.005	0.2%

Figure 4: CRT Model

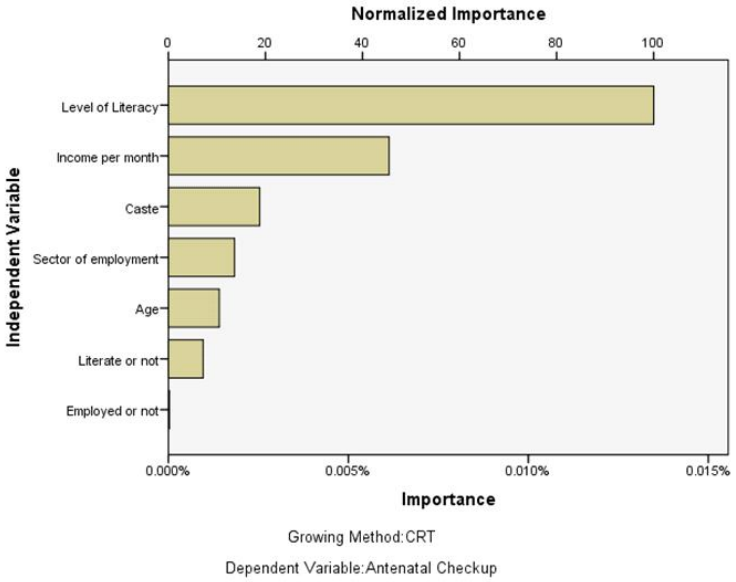

Figure 5: Antenatal Care Obstacles during COVID-19

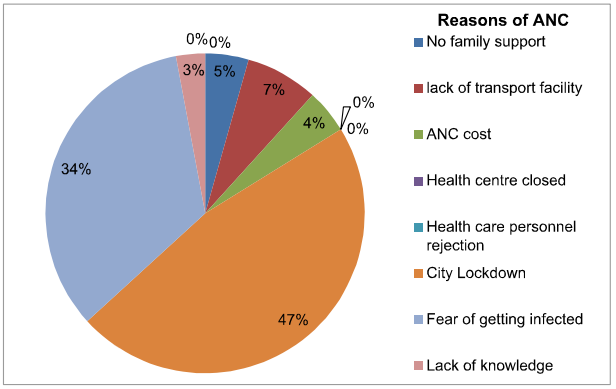

Reasons of ANC obstacle

Source: Personal Field Survey, 2022

Antenatal care obstacles during COVID -19: The respondents expressed various reasons as obstacle to antenatal care utilisation (Figure 4) during the pandemic. Of 250 women respondents (47%) stated that city lockdown restricted them to access ANC. 23 (34%) women expressed the fear of getting infected as a reason for not going to health facilities to access ANC. 4 % of women experienced difficulty in ANC costs and 7 % told that there was lack of transportation facility during the lockdown period. Other reasons include no family support (5%) and lack of knowledge (3 %).

Conclusions : The research showed that the prevalence of antenatal care use during the pandemic in Bhabua city in kaimur district of Bihar

which was 72.8 %. Only 2% of the women respondents utilised all 4 antenatal check-ups as recommended. The prevalence is lower than the overall service utilization in the city before the pandemic. Restrictions on mobility imposed by the government through lockdowns and restrictions on transportation contributed to the decline in ANC utilization. Therefore strategic policies are required to find out alternative ways to ease the access to such services by people during any such pandemic. Various socio-economic and demographic factors contributed to the utilization of maternal health services during the pandemic. Level of literacy is the most important factor that contributed to the utilization of ANC. This indicates the respondent's level of awareness towards the benefits of ANC and their attitude and behaviour towards the utilization of health facility during pandemic. Employment status (employed or not) is the least important factor influencing ANC utilization but income levels seems to influence ANC utilization during pandemic. Respondents with low income levels or no income attempted less ANC visits and showed fear of getting infected and lack of transportation facility during lockdown as major constraint. Fear of getting infected impacted pregnant women during pandemic despite their high level of education.

Acknowledgment: I acknowledge the Indian Council of Social Science Research (ICSSR), New Delhi for financially supporting me as Post Doctoral Fellow (PDF) to carry out this research project. I am very thankful to my research supervisor Prof V.N. Sharma, Head, Department of Geography, Institute of Science, Banaras Hindu University (BHU) Varanasi, UP 221005 for his constant guide and support besides his busy schedule.

References

- Aggarwal R, Sharma AK and Guleria K.(2021). Antenatal care during the pandemic in India: the problem and the solutions. *Int J Pregnancy Child Birth*. 2021;7(1):15–7.
- Akowuah JA, et al. (2018). Determinants of antenatal healthcare utilisation by pregnant women in third trimester in Peri-Urban Ghana. *J Trop Med*. 2018;2018:8.
- Ali SA, et al. (2018). Factors affecting the utilization of antenatal care among pregnant women: a literature review. *J Preg Neonatal Med*. 2018;2(2).
- Ataguba J.E.(2018). A reassessment of global antenatal care coverage for improving maternal health using sub-Saharan Africa as a case study.*PLoS One*. 2018; 13:e0204822
- Ayalew, T.W. and Nigatu, A.M. (2018). Focused antenatal care utilization and associated factors in Debre Tabor Town,northwest Ethiopia. *BMC*. 2018;11:819.
- Bankar, S. and Ghosh D. (2022). Accessing Antenatal Care (ANC) services during the COVID 19 first wave: insights into decision making in rural India, *ÿþReproductive Health (2022) 19:158* https://doi.org/10.1186/s12978-022-

01446-
- Birmeta K, Dibaba. Y and Woldeyohannes D. (2013).Determinants of maternal health care utilization in Holeta town, central Ethiopia.*BMC Health Serv Res*. 2013;13(1):256. doi:10.1186/1472-6963-13-256
- Bisht R, Sarma J and Saharia R. (2020). COVID-19 lockdown: guidelines are not enough to ensure pregnant women receive care. *The Wire.*2020 May. https:/ / thewi re. in/ women/ covid- 19- lockd own- pregn ant- women- child birth. Accessed 14 Dec 2021.
- Census of India (2011) https://www.census2011.co.in/data/town/801392-bhabua-bihar.html).
- Guzman and Silao (2022). Antenatal care utilization during the COVID 19 pandemic: an online cross sectional survey among Filipino women *ÿþ BMC Pregnancy and Childbirth (2022) 22:929* https://doi.org/10.1186/s12884-022-05234-5
- Gebreyohannes Y, et al. (2017). Improving antenatal care services utilization in Ethiopia: an evidence-based policy brief. *Int J Health Econ Policy*. 2017;2:111–117.
- Green L, et al. (2020). Providing women's health care during COVID-19: personal and professional challenges faced by health workers. *Int J Gynecol Obstet*. 2020;151(1):3–6.
- Huailiang Wu, (2020). Online Antenatal Care During the COVID-19 Pandemic: Opportunities and Challenges in *J Med Internet Res 2020;22(7):e19916)*doi: 10.2196/19916
- Indian Council of Medical Research (ICMR), National Institute for Research in Reproductive Health.Guidance for Management of Pregnant Women in COVID-19 Pandemic ICMR— National Institute for Research in Reproductive Health; 2020.https:// www.icmr. gov. in/ pdf/ covid/ techdoc/ Guidance_ for_ Management_ of_ Pregn ant_ Women_ in_ COVID 19_ Pandemic_ 12042 020. pdf. Accessed 14 Dec 2021.
- Kumar P. (2022). What is the impact of Covid-19 on the Antenatal Care Services Utilization in Public-Private-Rural-Urban Hospitals of India during the COVID-19 Pandemic Period of 2020-2021 compared to pre-pandemic era 2018-2019?.*Research Square*; 2022. DOI: 10.21203/rs.3.rs-1286087/v1.
- Landrian A, *et al*. (2022).Effects of the COVID-19 pandemic on antenatal care utilisation in Kenya: a cross-sectional study. *BMJ Open* 2022;12:e060185. doi:10.1136/ bmjopen-2021-060185
- Martin et al. (2022).Adequacy of Antenatal Care during the COVID-19 Pandemic ,*Rev Bras GinecolObstet* 2022;44(4):398–408.
- Ministry of Health and Family Welfare Government of India.A strategic approach to reproductive, maternal, newborn, child and adolescent health (RMNCH+A) in India.2013. http:// nhm.gov. in/ index1. php? lang= 1& level= 1&sublinkid= 794& lid= 168. Accessed 12 Dec 2022.
- Ministry of Health and Family Welfare Government of India. National Rural Health Mission - Meeting people's health needs in rural areas. Framework for Implementation.2005. http:// nhm.gov. in/ Write ReadData/ l892s/ nrhmframe work- latest. pdf. Accessed 10 Dec 2022.
- Ministry of Health and Family Welfare Government of India.National Urban Health Mission—Framework for Implementation.Ministry of Health and Family Welfare Government of India; 2013.http:// www.nhm. gov. in/ images/ pdf/

NUHM/ Implementation_ Frame work_ NUHM. pdf.
- Ministry of Health and Family Welfare, Government of India. India fact sheet—National Family Health Survey (NFHS-5) New Delhi: IIPS; 2019 2020. (NFHS).http:// rchii ps. org/ NFHS/ NFHS-5_ FCTS/ NFHS-5% 20Sta te% 20Fac tsheet% 20Com pendi um_ Phase-I. pdf. Accessed 14 Dec 2022.
- Ministry of Health and Family Welfare,PIB Delhi. State/ UT Wise Details of Maternal Mortality Ratio (MMR) During Last Three Years Period.Press release 2021.https:// www.pib. gov. in/ Press ReleasePage. aspx? PRID= 16974 41. Accessed 12 Dec 2022.
- Ministry of health and family welfare, Government of India. India fact sheet—National Family Health Survey (NFHS-4) India: IIPS; 2015 2016. (NFHS).http:// rchii ps. org/ nfhs/ facts heet_ nfhs-4.shtml. Accessed 12 Dec 2022.
- Motihar, R. (2020).The impact of COVID-19 on reproductive health services. *India Development Review2020*.https:// idron line. org/ the- impact- ofcovid-19- on- repro ductive- health- services/. Accessed 12 Dec 2021.
- Nguyen P.H.et al (2021). COVID- 19 disrupted provision and utilization of health and nutrition services in Uttar Pradesh, India: insights from service providers, household phone surveys, and administrative data. *J Nutr*. 2021;151(8):2305–16.
- Novida, A. (2022). Antenatal care services utilization during COVID-19 second wave attack in Pasuruan, Indonesia, *Journal of Medicine and Life*.vol: 15 issue:, pp 7-14
- Pant S, Koirala S, Subedi M.(2020). Access to Maternal Health Services during COVID-19. *Europasian J Med Sci*. 2020;20:46-0, doi: 10.46405/ ejms.v2i2.110.
- Pulse survey on continuity of essential health services during the COVID-19
- Ranganathan R, Khan AM and Chhabra P. (2020). Antenatal care, care at birth, and breastfeeding during the Coronavirus (COVID-19) pandemic: a review. *Indian J Community Health.* 2020;32(1):15 - 18.
- Sample Registration System Office (SRSO), Registrar General of India. Special Bulletin on maternal mortality in India 2014–2016 India: Sample Registration System Office of Registrar General of India; 2018. p. 1–3. (Maternal Mortality).https:// censusindia.gov. in/ vital_ statistics/ SRS_ Bulle tins/ MMR% 20Bul letin- 2014- 16. Pdf
- Second round of the national pulse survey on continuity of essential health services during the COVID-19 pandemic: interim report. Geneva: World Health Organization; 2021. Available from: https:// apps .who .int/ iris/ handle/ 10665/ 340937 ?locale -attribute =
- Shrivastava S, M. S. (2020). Obstetric violence during COVID-19 is yet another challenge for Indian women. *The Wire* 2020.https:// thewi re.in/ rights/ women-covid- 19- obstetric- violence.
- Shrivastava S, Rai S and Sivakami M. (2021).Challenges for pregnant women seeking institutional care during the COVID-19 lockdown in India: A content analysis of online news reports. *Indian J Med Ethics*.Published online first on January 18, 2021. DOI:10.20529/IJME.2021.004.
- Tadesse E.(2020).Antenatal care service utilization of pregnant women attending antenatal care in public hospitals during the COVID-19 pandemic period.*International Journal of Womens Health*. 2020;12:1181–1188. Doi:

10.2147/IJWH.S287534

- Taylor Riley, et al.(2020). Estimates of the Potential Impact of the COVID-19 Pandemic on Sexual and Reproductive Health In Low- and Middle-Income Countries, *International Perspectives on Sexual and Reproductive Health*, 2020, Vol. 46 (2020), pp. 73-76
- Timothy R. et al. (2020).Early estimates of the indirect effects of the COVID-19 pandemic on maternal and child mortality in low-income and middle-income countries: a modelling study. *Lancet Glob Health*. 2020.
- W. Y. Loh, (2011) "Classification and regression trees," *Wiley Interdisciplinary Reviews: Data Mining and Knowledge Discovery*, vol. 1, no. 1, pp. 14–23.
- WHO (2016) Recommendations on antenatal care for a positive pregnancy experience https:// www.who. int/ publicatio ns/i/ item/ 9789241549 912. Accessed 10 Oct 2022.
- World Health Organization (2020) Pandemic: interim report. Geneva:. Available from: https:// www .who .int/ publications -detail -redirect/ WHO -2019 -nCoV -EHS _continuity -survey -2020
- https://www.un.org/sustainabledevelopment/wp-content/uploads/2018/09/Goal-3.pdf

●

स्वाभिमान की भावना ने आजादी के आंदोलन को दिया बल : प्रो ओमप्रकाश सिंह

- धन अर्जन नहीं बल्कि राष्ट्र चेतना के भाव को जाग्रत करती रही है पत्रकारिता : डा. वशिष्ठ नारायण
- प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास व हिंदी पत्रकारिता संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में राष्ट्रीय संगोष्ठी का हुआ समापन

तरुणमित्र न्यूज

वाराणसी। प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास एवं महामना मदन मोहन मालवीय हिंदी पत्रकारिता संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के केंद्रीय पुस्तकालय स्थित समिति कक्ष में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में साहित्य और पत्रकारिता के योगदान विषयक दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन शनिवार को हुआ। जिसमें पहले सत्र में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में पत्रकारिता की चुनौतियां विषय पर प्रमुख विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये।

कार्यक्रम में मौजूद सभी विशिष्ट जन

इस संगोष्ठी के अध्यक्ष महामना मदन मोहन मालवीय हिंदी पत्रकारिता संस्थान के पूर्व निदेशक प्रो ओम प्रकाश सिंह ने कहा कि आज भी समाज में बहुत सुधार की आवश्यकता है। हमारे राष्ट्रीय आंदोलन में पत्रकारिता के समक्ष कई चुनौतियां थीं। रही बात भाषा की तो हिन्दी भाषा देश के हर कोने में ग्राह्य है। देश का कोई भी कोना हो, वहां हिंदी बोली पढ़ी और समझी जाती है इसलिए हमें भाषा के परिष्कार और उसके रहस्य के अपवाद पर ध्यान देना चाहिए। हमें उस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि स्वाधीनता के समय भारतीय पत्रकारिता का परिवेश कैसा था। उस समय पत्रकारों को आर्थिक समस्या का भी सामना करना पड़ता था। उन्होंने कहा कि जब तक भारतीयों में स्वाभिमान की भावना नहीं आई तब तक आजादी की प्रेरणा नहीं मिली। संगोष्ठी के मुख्य वक्ता डॉ. वशिष्ठ नारायण सिंह ने हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए कहा कि उस दौर में एक खबर हिन्दी प्रदीप को सरकार के खिलाफ लिखने पर 3000 रुपए का जुर्माना हुआ।वहीं बनारस से प्रकाशित आज अखबार ने भी अपने जीवन में कई उतार चढ़ाव देखे। उसके संपादक बाबू विष्णु राव पराड़कर को कई बार जेल जाना पड़ा। प्रेमचंद ने भी आर्थिक कारण से ही हंस को बंद कर दिया। लेकिन उन्होंने 200 रूपए घाटे पर भी जागरण अखबार का प्रकाशन किया। 1947 में आजादी के समय की स्थिति विकट थी। काशी विद्यापीठ, पत्रकारिता विभाग के डॉ. विनोद सिंह ने जेम्स अगस्टस हिक्की की पत्रकारिता से लेकर हरिचंद्र भारतेंदु की पत्रकारिता का जिक्र किया। भारतेंदु का काल गद्य निर्माण का काल कहलाता है। उन चुनौतियों के बीच साहित्य और पत्रकारिता को संरक्षण देने का काम भारतेंदु ने किया। उन्होंने पत्रकारिता की चुनौतियों में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को साधा। सत्र के वक्ता डॉ. अरुण कुमार शर्मा ने कहा कि आज तो मीडिया में फेक न्यूज ज्यादा छप रही है। जो की पत्रकारिता की ग्रीन जर्नलिज्म है। इस फेक न्यूज से लड़ना ही हमारी सबसे बड़ी चुनौती है। आज विज्ञापन का दौर है जिसकी वजह से पैड न्यूज की चुनौतियां भी बढ़ी हैं। जिसकी वजह से पत्रकारिता में विश्वसनीयता दूर होती जा रही है। इस मौके पर चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ से डॉ. नवीन चंद लोहानी वर्चुअल रूप से जुड़े और उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के समय भारतीय पत्रकारिता की चुनौती पर प्रकाश डाला। संगोष्ठी के दूसरे सत्र में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन हासिए के सिपाही विषय पर प्रमुख विद्वानों ने वक्तव्य दिया साथ ही शोधार्थियों ने भी अपने शोध पत्र प्रस्तुत किए। इस मौके पर प्रो. गायत्री सिंह, प्रो. गायत्री माहेश्वरी, नीरज कुमार सिंह, पूजा, सीमा तिवारी आदि लोगों ने भी अपने विचार रखे। सत्र में विशिष्ट वक्ता प्रो. ओम प्रकाश सिंह ने

1857 के मुक्ति संग्राम का जिक्र किया। उन्होंने कहा कि उस दौर की यह बहुत बड़ी चुनौती थी कि साहित्य कैसे गढ़ा जाय तब भारतेंदु जी अपने अखबार और पत्रिका में नव रचनाकारों को स्थान दिया। इस मौके पर उमापति दीक्षित ने कहा कि निश्चित रूप से यह ध्रुव सत्य है की साहित्य और पत्रकार का अन्योन्याश्रित संबंध है। स्वतंत्रता संग्राम के वीर गाथा को याद करते हुए आज हम इस बात का संकल्प लें कि राष्ट्रीय संगोष्ठी का यह मौका देने वाले आचार्य के दृष्टांतों और उनके शैली को हम लोग ग्रहण करें। उनके अंदर इतिहास पढ़ाने के की एक अक्षुण्ण कला थी। सत्य की बात कही गई है। हमें सत्य चाहिए तो आचार्य के पास आने की जरूरत है। समापन सत्र के अध्यक्ष डॉ. वशिष्ठ नारायण सिंह ने बहती गंगा, चंद्र शेखर आजाद, विश्वनाथ शर्मा आदि लोगों का जिक्र करते हुए कहा कि जिस प्रकार काशी को नहीं बांधा जा सकता उसी प्रकार प्रो. वासुदेव सिंह को भी किसी सीमा में नहीं बांधा जा सकता। कार्यक्रम का संचालन प्रो. श्रद्धा और धन्यवाद ज्ञापन प्रो. हिमांशु शेखर सिंह ने किया। इस मौके पर मदन मोहन मालवीय हिंदी पत्रकारिता संस्थान के प्रथम व तृतीय सेमेस्टर के समस्त छात्र छात्राओं समेत तमाम शोध छात्र व विद्यार्थी गण मौजूद रहे।

Online Shopping
The Liaison with Customer Traits and Attitude

Dr. Geetika Tandon Kapoor*, Ms. Nidhi Singh**

ABSTRACT : The retailers are discovering that it is increasingly crucial to represent themselves online in order to gain new customers, raise public knowledge of the business and its items, and—last but not least—increase sales of their products/services. While merchants utilize a variety of tactics to satisfy the demands of online customers, and they are also examining consumer behavior with regard to online purchasing. Shopping online and marketing online both use technology to attain better marketing feats. As a result, to study the consumer attitudes toward online purchasing, this research focuses on the elements that motivate people to indulge in online buying.

Key Words : Online-shopping, Customer Traits, External and Internal Influences, Consumer Perception, Consumer Behaviour, Fishbein Model.

Introduction : The internet has received a lot of attention these days. Additionally, nearly 50% of all web users today have bought goods or services online, Sefton (2000). In 2000, Ernst & Young reported that 79% of those who were not currently purchasing intended to do so online, leading to a rise in internet retail. Marketing initiatives taken for online shopping can raise consumer awareness and then guide them through the process of buying the product (Goodwin, 1999).

The customers form attitudes and make decisions based on motivation, vision and knowledge. As a consequence, decisions are directly influenced by attitudes. The attitudes of consumers act as a bridge between their inherited traits and the purchases that meet its wants. A person's attitudes are their enduring perceptions, emotions, and dispositions toward a thing or a concept. The attitudes of people affect whether they like or detest something and whether they approach or avoid it (Armstrong and Kotler, 2000).

Clicks on banners and online transactions do not reveal attitudes, perceptions, or reasons, yet they are a significant factor in the success or failure of online marketing initiatives (Goodwin, 1999). Four important psychological aspects influence a person's purchasing decisions: motivation, vision, knowledge, ideas and behaviour (Armstrong and Kotler, 2000). These are crucial to the choice making process for a buyer. People utilise these skills to notice their emotions, collect and analyse data,

* Associate Professor– Department of Commerce, University of Lucknow.
** Research Scholar– Department of Commerce, University of Lucknow.

produce ideas and opinions, and act (Wells, W.D. and Prensky, D. 1996). Since opinions are difficult to alter, marketing executives can estimate the rate of shopping online and analyse the potential rise of internet commerce by knowing customer experience with online transactions. Individual experiences, reality-based education, and information from colleagues, salesmen, and the media outlets form important sources. They also come from both directly and indirectly life experiences (Loudon and Della Bitta, 1993). As a result, it is critical to understand that a variety of circumstances influence the creation and changing of attitudes. A consumer's background characteristics are invariably recurring components of their life that are based on their ethnic background, beliefs, demography, psychological makeup and interpersonal behaviours (Wells and Prensky, 1996).

The purpose of this study is to assess the variables that affect customer perception of shopping online. The findings of an investigation into the links between levels of online shopping, attitudes, and relative influence factors are presented. The focus of this research is on Internet users' worries and perceptions about online purchasing. After that, Internet users' attitudes toward online buying is assessed. Following which the relative elements that influence consumer sentiments toward internet shopping are investigated. With regard to these attitude influence variables, the link among beliefs and influential factors is studied.

Method of Assessing Attitudes

Today, attitude surveys are routinely employed in marketing. Fishbein's behavioural model is one of the most prominent and thoroughly investigated models in the literature (Burn-Krant and Page, 1982). The Fishbein model has received increasing attention from marketers and consumer behaviourists (Bass and Talarzyk, (1972), Woodside and Clokey, (1974), Maze's et al., (1975), Etter, (1975). Etter (1975) looked at how Models of choice theory and Fishbein's attitudes paradigm interacted. Lutz, (1977) described 2 laboratory-style tests that looked at the Fishbein model's causal links. People establish attitudes toward objects based on their ideas (Apprehensions and information) regarding such things. Fishbein's paradigm was created with the goal of determining a person's overall attitude toward an object based on his ideas and feelings regarding numerous attitudes toward the thing. As a result, the Fishbein model can be used to measure multiple attributes of attitude.

The attitude model of Fishbein (Fishbein, 1967a, b) can be written as:

$$A_o = \sum_{i=1}^{n} b_i e_i$$

where:

A_o = the person's overall attitude toward object o.

b_i = the strength of his perception that the item is related to attribute i (such as the strength of the belief that online shopping is convenient).

e_i = assessment or strength of feelings for an attribute i.

n = the number of beliefs that are relevant to that person.

The consumer's overall attitude toward this product or service is created by multiplying each of the belief scores (b_i) by its corresponding evaluation score (e_i), adding all of the scores for the qualities of the product or service, and then summing the results.

Because one of the attitude models claimed that the Fishbein model serves as the foundation for studies in marketing, this study assessed Web users' online shopping behaviour that use the Fishbein model and looked into the comparative factors that influenced customer online shopping behaviour. Fishbein attitude model and the subjectively expected utility models share certain similarities. As per this concept, the belief that connects one salient attribute of the good or service to the event or object throughout all salient characteristics determines the attitude and the evaluative response to that salient property (Athol, 1975). For instance, suppose some subjects in a test study say that "online shopping is very safe." Whenever the conviction intensity (bi) is assessed utilising grading systems such as "probable-improbable," "true-false," or "likely-unlikely," Scales such as these are used to measure the evaluation (ei) of this, "good-bad," "extremely important-not significant at all," which is problematic. In this paradigm, the strength of the belief linking a salient property to the attitude, object, or event across all salient properties is added to the evaluative response to that feature. The association between a consumer's qualities and their views toward online purchasing can be investigated after the general attitudes of the customers are known.

Traits and Attitude of Consumers : Consumer purchasing is impacted by Cultural, social, personal, and psychological factors. Though these factors are not within control of marketers, they cannot be ignored. (Armstrong and Kotler, 2000). Demographic, economic, social, situational, and technical factors are some of the outside forces that affect consumer behaviour. Internal influences include personality, perception, values, learning, motives and needs, beliefs and attitudes, and learning. The lifestyle lies in the middle of internal and exterior factors influencing consumer purchasing decisions since it genuinely combines both.

Although external influences have a significant impact on how buyers behave, internal considerations are equally essential (Keegan et al., 1992). These underlying aspects were split up into two main categories by Wells and Prensky (1996), they functioned as the pillars of the paradigm for consumer research: customer background traits and behavioural tendencies. Customer background traits are a natural component of what makes a consumer. These are the characteristics of consumers—how people define themselves and how they categorise others. These features

are unchangeable, constant parts of a consumer's existence. Background features include things like demographic traits like gender, age, or ethnicity. Consumers employ behavioural processes as motivating, perceptual, educational, attitude-forming, and decision-making instruments to carry out the tasks as per their requirement. This behavioural process can indeed be changed by such an individual's mind since they are used in specific contexts. The influences on behavioural processes come from the environment. These processes are of special importance to public policy makers and marketers because they present chances for them to sway consumer behaviour. Marketing initiatives to persuade customers to buy frequently centre on attitudes since they are simpler to alter than ideas or values. This study organised and merged the attitude-influencing components and determined the characteristics of customers using the four domains of demography, buying preferences, benefit perceptions, and lifestyle of consumer. This is in accordance with the aforementioned theory and point of view. The external influencing elements known as consumer demographics include customer's gender, age, profession, level of education, earnings, hobbies and place of residence, among other things. Buying motivation and preferences are internal characteristics that are included in customer purchase preferences. Consumer benefit perceptions are the total of benefits or satisfactions associated with online buying that satisfy a person's needs or wants. A person's way of life is referred to as their consumer lifestyle. The main AIO dimensions of the actions, interests and opinions of consumers are measured. These four areas collectively have a significant influence on consumers' attitudes and purchasing choices.

Research Methodology

Framework : Figure 1 below depicts the idea of the relationship construct. Consumer traits have an effect on this specific system for customer perception, which in turn has an effect on purchasing behaviour.

According to this paradigm, the four customer feature components have a significant impact on a user's perspective towards both the direct customer transactions and online purchasing. These consumer traits are significantly correlated with attitudes about shopping online, and the rate of shopping is significantly correlated with attitudes toward online shopping. With presumptive customer assessments the analysis of the associations between the perception of online purchasing as well as the other influential factors, the following hypotheses are put forth:

H1. There is significant difference regarding attitude towards online shopping based on the different consumer demographics.

H2. There is significant difference regarding attitude towards online shopping based on the consumer purchase preferences.

H3. There is significant relationship between the attitudes towards online shopping and consumers' benefit perception.

H4. There is significant relationship between the attitudes towards online shopping and consumer lifestyle.

Measures : A person's way of life was described as their style of living. The 3 main AIO dimensions of consumers' actions, preferences, and beliefs are evaluated. Throughout this research, consumer benefit needs were evaluated using a 5 lexical distinction measure, while lifestyle data were collected using a Likert Scale of % Points. A nominal scale was used to evaluate consumer purchasing preferences, demographic information, and the prevalence of internet buying. 38 semantically different topics on benefit needs and attitudes were used to gauge respondents' views regarding online shopping, and true/false responses were graded on 5 Point magnitude. 38 lexical distinction measure different items were used to gauge respondents' attitudes toward internet purchasing in general, asking them to rate their importance or unimportance (Craig et al., 1994). For instance, each participant evaluated the following profiles:

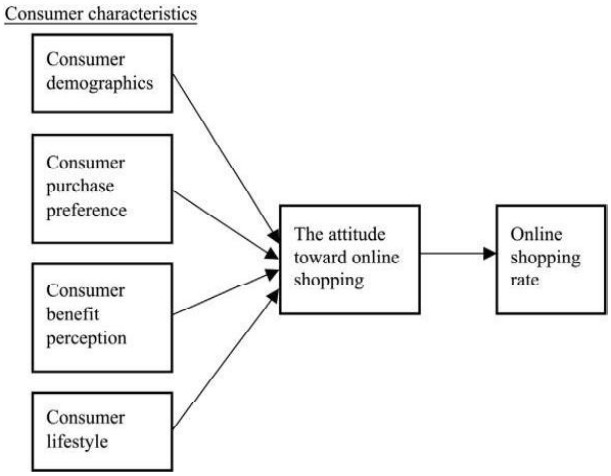

Figure 1. Consumer traits, attitude and online shopping

The consumer's overall attitude was created by summing the 38 items, the respondent evaluation scores, and each consumer belief score.

Sample : The main information for this study was gathered through in-person interviews with 200 Internet users. In Uttar Pradesh, members were chosen at random. The age range of the respondents was 15 to 40. The gender ratio was practically equal (49 percent male, 51 percent female). Intermediate to PhD degree levels of education were represented. Individuals' gross monthly incomes ranged from zero to over 75 thousand. Engineers (33%) and students (40%) were the most common occupations among respondents, followed by business people (16.05%). Their hobbies were diverse, and the majority of them lived in cities (70%), then villages

(30%). These racial and ethnic traits matched those of Internet users.

Data Analysis

Table 1. Variance Analysis for Consumer Demographic

Demographic Profile of consumer	Attitude mean	F value	P value	Scheffe test
Gender				
1. Female (51%)	442.84	8.973	0.002**	
2. Male (49%)	481.44			
Age (Years)				
1. 15-20 (22%)	482.93	8.921	0.000**	(1,3) (1,4)
2. 21-25 (19%)	488.16			(2,3) (2,4)
3. 26-30 (18%)	426.41			(3,1) (3,2) (3,5)
4. 31-35 (21%)	424.01			(4,1) (4,2) (4,5)
5. 36-40 (20%)	489.76			(5,3) (5,4)
Education				
1. Intermediate (20.40%)	477.22	3.426	0.017*	(1,4)
2. Graduate (40%)	455.98			(2,4)
3. Post Graduate (34.7%)	456.92			(3,4)
4. PhD (4.90%)	398.19			(4,1) (4,2) (4,3)
Occupation				
1. Students (40%)	472.57	2.183	0.021*	
2. Government Employees	465.38			
(7.32%)	445.23			
3. Private Employees (33%)	470.29			
4. Businessmen (16%)	450.35			
5. Housewife (3.68%)				
Monthly Income				
1. 0-25000 (52.1%)	475.88	4.314	0.000**	(1,2)
2. 25000-50000 (15.52%)	498.82			(2,1) (2,3)
3. 50000-75000 (12.13%)	505.20			(3,2)
4. Above 75000 (20.25%)	482.84			
Interest				
1. Sports (20.85%)	478.37	15.122	0.000**	(1,2)
2. Reading (7.14%)	450.13			(2,1) (2,4) (2,5) (2,6)
3. Music (25.82%)	438.30			(3,6)
4. Internet (26.1%)	479.61			(4,2)
5. Travel (12.08%)	490.83			(5,2)
6. Watching TV (8.01%)	521.53			(6,2) (6,3)
Living Area				
1. City (70%)	435.43	5.024	0.007**	(1,3)
2. Village (30%)	481.15			(3,1)

Notes: * $p < 0.05$; ** $p < 0.01$

This study employed variance analysis to show that, depending on consumer demographics, consumer attitudes toward online purchasing differed significantly. As indicated in Table 1, the findings revealed that there were significant differences in attitudes regarding online purchasing across all customer groups (p 0.05). Thus, hypothesis H1 is accepted.

Table 2. Variance Analysis in Consumers Purchasing Preferences

Buying Behaviour of Consumer	Attitude mean	F value	P value	Scheffe test
Duration for purchase				
1. Once a month (21.77%)	545.00	3.423	0.024*	(1,4)
2. Once every three months (25.42%)	522.15 513.64			
3. Once every six months (25.52%)	430.53			(4,1)
4. Once a year (27.30%)				
Payment method				
1. Card Payment (36.16%)	510.01	23.083	0.000**	(1,2) (1,3) (1,4)
2. Cash (22.19%)	441.06			(2,1) (2,4)
3. Transfer account (37.36%)	442.43			(3,1) (3,4)
4. Cheque (4.29%)	332.23			(4,1) (4,2) (4,3)

Notes: * p less than 0.05; ** p less than 0.01

Using variance analysis, it was discovered that the consumer's purchase preference for two variables varied significantly depending on their online shopping behaviour (p 0.05).

It was discovered that the frequency and mode of payment of these two consumer purchase items were significantly correlated with attitudes regarding online purchasing. As indicated in Table 2, this somewhat supports H2.

Table 3. Factor analysis and reliability for benefit perception

Benefit Factor	Eigen value	Cumulative %age of variance	Cronbach's alpha
1. Efficiency & modernity	14.2808	40.96	0.9299
2. Ease of buying	2.2482	45.88	0.8461
3. Information available	1.9506	53.01	0.8139
4. Variety and safety	1.7708	54.65	0.8192
5. Quality of service	1.3426	55.18	0.8080
6. Time of delivery	1.2482	63.49	0.6374
7. Homepage layout	1.1378	64.48	0.8181
8. Freedom of choice	1.0781	68.32	0.5282
9. Comfort with the company name	1.0421	71.06	0.6085

Table 4. Analysis of the relationship between attitudes and perceived customer benefits

Benefit Factor	Attitudes (Pearson Correlation Coefficient)	P value
1. Efficiency & modernity	0.538	0.000**
2. Ease of buying	0.245	0.000**
3. Information available	0.247	0.000**
4. Variety and safety	0.183	0.000**
5. Quality of service	0.112	0.011**
6. Time of delivery	0.130	0.002**
7. Homepage layout	0.243	0.000**
8. Freedom of choice	0.217	0.000**
9. Comfort with the company name	0.303	0.000**

Notes: * p value is less than 0.05; ** p value is less than 0.01

A principal component factor analysis with a varimax rotation was applied to the consumer benefit needs data. Nine elements emerged when an eigen value larger than 1 was used as a selection method. The variance was explained by these nine variables in 71.05 percent of cases. Table 3 demonstrates that for all factors, Cronbach's 2 was higher than 0.52. There was a positive connection found while examining the association between attitudes and the 9-benefit assessment test H3 variables in each case, as shown in Table 4. (p 0.05). This backs H3. As a result, it has been demonstrated that all of the customer benefit perception criteria have a favourable impact on attitudes regarding online purchasing.

Table 5. Factor analysis and reliability for lifestyle

Lifestyle Factor	Eigen value	Cumulative %age of variance	Cronbach's alpha
1. Leadership	5.1008	19.01	0.7055
2. Energetic	3.0007	30.78	0.5541
3. Seeker of knowledge	2.0006	37.48	0.7194
4. Computer-friendly	1.6256	43.73	0.6544
5. Interested in fashion	1.5154	50.53	0.6537
6. Attached to appearance	1.4275	54.05	0.5627
7. Spend time at home	1.3299	59.76	0.5464
8. Regular life.	1.0505	65.20	0.5384

A principal components analysis using variance rotations and eigen values larger than one was performed on 26 lifestyle variables. Eight lifestyle characteristics were preserved with success. 64.19 percent of the variance is explained by the eight shared components. Based on the pertinent factor loads for every variable, Table 5 lists the 8 lifestyle factors.

Table 6. Analyzing the relationship between a person's attitude and their lifestyle

Lifestyle Factor	Attitude (Pearson Correlation Coefficient)	P value
1. Leadership	0.015	0.754
2. Energetic	-0.060	0.172
3. knowledge seeker	-0.075	0.089
4. Computer-friendly	0.111	0.011*
5. Fashion-conscious	0.059	0.002**
6. Attached to appearance	0.172	0.000**
7. Spending time at home	0.047	0.285
8. Regular life.	0.124	0.003**

Notes: * p value is less than 0.05; ** p value is less than 0.01

Investigating the relationship between attitude and the 8-lifestyle test H4 components as can be seen in Table 6, a positive relationship was seen in four instances (p value 0.05). This partially supports H4. Therefore, it demonstrates that consumer lifestyle elements, such as "computer-friendly," "Fashion-conscious", "attached to appearance," and "regular life," are factors having a favourable impact online buying.

Results : Nearly all of the hypotheses were confirmed by the study's findings. Online shoppers have been shown to have greater attitudes score, and it has been shown that these greater attitudes ratings are directly related to those purchases online. The target market should be the group with the greatest attitudes rating.

The attitude toward internet buying was significantly correlated with each of the customer demographic factors. Males had a mean attitude score that was noticeably greater than females. Age brackets 36 to 40 received the best attitude ratings. Higher attitude scores are found among consumers who have completed intermediate, work as students, enjoy watching TV, make between 25000-50000 per month, and reside in urban areas. Consumers with higher attitude ratings enjoy using computers, care about their looks, and engage in routine life activities. Therefore, the group that exhibits the aforementioned consumer traits is a target market for online buying. Retailers could create a plan pertaining to marketing for those targets in this demographic. In order to attract customers and satisfy their information needs, the marketer must emphasise the benefits of internet shopping, as well as its efficacy and modernity, brand name recognition, buying convenience, information richness, and selection freedom.

Conclusion : The experiment's goal was to evaluate Internet users' traits and perceptions of online purchasing while also gauging their attitudes toward it using the Fishbein model. The relative influencing elements on one's attitude about purchasing online were investigated, and a connection among the two was shown. The findings demonstrated that through the above model, customer attitudes and key consumer traits that affect attitudes and purchasing decisions related to online shopping could be measured.

References

- Fishbein, M. (1963), ''An investigation of the relationships between beliefs about an object and the attitude toward that object'', Human Relations, Vol. 16 No. 3, pp. 233-40.
- Fishbein, M. (1965), ''A consideration of beliefs, attitudes and their relationship'', in Steiner, I.D. and Fishbein, M. (Eds), Current Studies in Social Psychology, Holt, Rinehart and Winston, New York, NY, pp. 107-20.
- Fishbein, M. (1967a), ''A consideration of beliefs and their role in attitude measurement'', in Fishbein, M. (Ed.), Readings in Attitude Theory and Measurement, John Wiley & Sons, New York, NY, pp. 257-66.
- Fishbein, M. (1967b), ''A behavior theory approach to the relations between beliefs about an object and the attitude toward the object'', in Fishbein, M. (Ed.), Reading in Attitude Theory and Measurement, John Wiley & Sons, New York, NY, pp. 389-400.
- Fishbein, M. and Raven, B.H. (1962), ''The AB scales: an operational definition of belief and attitude'', Human Relations, Vol. 15, pp. 35-44.
- Goodwin, T. (1999), ''Measuring the effectiveness of online marketing'',

Journal of the Market Research Society, Vol. 41 No. 4, pp. 403-7.

- Harrell, G.D. and Bennett, P.D. (1974), ‘‘An evaluation of the expectancy value model of attitude measurement for physician prescribing behavior’’, Journal of Marketing Research , Vol. XI, pp. 269-78.
- Keegan, W., Moriarty, S. and Duncan, T. (1992), Marketing, Prentice-Hall, Englewood Cliffs, NJ, pp. 191-205.
- Loudon, D.L. and Della Bitta, A.J. (1993), Consumer Behavior, 4th ed., McGraw-Hill, New York, NY, p. 425.
- Lutz, R.J. (1977), ‘‘An experimental investigation of causal relations among cognitions, affect, and behavioral intention’’, Journal of Consumer Research , Vol. 3 No. 4,pp. 197-208.
- Mazes, M.B., Athol, O.T. and Klippel, R.E. (1975), ‘‘A comparison of four multi-attribute models in the prediction of consumer attitudes’’, Journal of Consumer Research , Vol. 2,pp. 38-52.
- Miyazaki, A.D. and Fernandez, A. (2001), ‘‘Consumer perceptions of privacy and security risks for online shopping’’, The Journal of Consumer Affairs, Vol. 35 No. 1, pp. 27-44.
- Piirto, R. (1991), ‘‘VALS the second time’’ American Demographics, July, p. 6.
- Sefton, D. (2000), ‘‘Daily Web surfing now the norm’’, USA Today, June 7, available at www.usatodat.com/life/cyber/tech/ cth591.htm
- Wells, W.D. and Prensky, D. (1996), Consumer Behavior, John Wiley & Sons, New York, NY, pp. 44-6.
- Woodside, A.G. and Clokey, J.D. (1974), ‘‘Multi- Attribute/multi-brand models’’, Journal of Advertising Research, Vol. 14, October, pp. 33-40.
- Armstrong, G. and Kotler, P. (2000), Marketing, 5th ed., Prentice-Hall, Englewood Cliffs, NJ, pp. 153-4.

●

हिन्दुस

आज युवाओं को केवल अर्थ चिंता: डॉ. पांडेय

विद्यापीठ में आयोजित संगोष्ठी के दौरान शुक्रवार को पत्रिका 'नमन' का विमोचन करते केंद्रीय मंत्री डॉ.महेंद्रनाथ पांडेय (दाएं से तीसरे) व अन्य।

वाराणसी, संवाददाता। केंद्रीय भारी उद्योग मंत्री डॉ. महेंद्रनाथ पांडेय ने कहा कि पत्रकार और साहित्यकार अपने-अपने तरीके से आजादी की लड़ाई में सक्रिय रहे। काशी तो पत्रकारों की थाती है। यहां पराड़कर, गर्दे, अंबिका प्रसाद वाजपेयी जैसे पत्रकारों की लम्बी कड़ी है।

वह शुक्रवार को काशी विद्यापीठ में प्रो. वासुदेव सिंह की स्मृति में आयोजित 'भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में साहित्य और पत्रकारिता के योगदान' विषयक दो दिनी राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन के बाद बोल रहे थे। आयोजन प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास एवं महामना हिन्दी पत्रकारिता संस्थान ने किया है। केंद्रीय मंत्री ने कहा कि हमारी सनातन परम्परा में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की बात कही गई है लेकिन आज के दौर में युवा केवल अर्थचिंता और तकनीकी विषयों में ही संलिप्त हैं। संगोष्ठी में छपरा विवि के पूर्व कुलपति डॉ. हरिकेश बहादुर सिंह ने कहा कि हमारा समाज समरस और सममेधा होना चाहिए। बोले, काशी साहित्य जगत की जीवंत उदाहरण है। अध्यक्षता प्रभारी कुलपति प्रो. अशोक कुमार मिश्रा ने की। बीज वक्तव्य प्रो. अनुराग कुमार ने दिया। मौके पर प्रो. श्रद्धा सिंह, डॉ. हिमांशु शेखर सिंह, डॉ. नागेंद्र सिंह, डॉ. शिवकुमार मिश्र, डॉ. वशिष्ठ नारायण सिंह, डॉ. नीरज खरे आदि रहे। संचालन डॉ.जितेंद्रनाथ मिश्र ने किया।

लगनशील और विद्वान प्राध्यापक थे प्रो. वासुदेव सिंह : डा. महेंद्र नाथ पाण्डेय

- विद्यापीठ की आचार्य परंपरा श्रेष्ठतर : प्रो हरिकेश सिंह
- काशी विद्यापीठ में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में साहित्य और पत्रकारिता का योगदान विषयक संगोष्ठी आयोजित

तरुणमित्र न्यूज

वाराणसी। प्रो. वासुदेव सिंह स्मृति न्यास एवं महामना मदन मोहन मालवीय हिंदी पत्रकारिता संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के केंद्रीय पुस्तकालय स्थित समिति कक्ष में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में साहित्य और पत्रकारिता के योगदान विषयक दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के प्रथम दिन उद्घाटन सत्र का आयोजन हुआ।

उद्घाटन सत्र में बतौर मुख्य अतिथि भारत सरकार के केंद्रीय भारी उद्योग मंत्री डॉ. महेंद्र नाथ पांडेय ने प्रो. वासुदेव सिंह की पुण्य स्मृति पर उन्हें नमन करते हुए कहा कि प्रो वासुदेव कबीर साहित्य के मर्मज्ञ थे। उन्होंने अपने छात्र जीवन की बातों को याद करते हुए कहा कि वह एक दौर था जब हम लोग छात्र राजनीति में सक्रिय हो गए थे, तब कक्षाओं में पढ़ने का अवसर कम ही मिलता था। उस समय गुरु जी हम लोगों को घर पर बुलाकर पढ़ाया करते थे। हमारे सनातन परंपरा में धर्म अर्थ काम मोक्ष की बात कही गई है लेकिन आज के युवा केवल अर्थ चिंता और तकनीकी विषयों में ही संलिप्त हैं। उन्होंने संगोष्ठी की विषय वस्तु पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हमारी मीडिया समाज में सजग है। आजादी के दिनों में हमारे देश के पत्रकार और साहित्यकार अपने- अपने तरीके से आज़ादी के पथ पर अग्रसर थे। उन्होंने काशी के बारे में कहा कि काशी तो पत्रकारों की थाती है। यहां पराड़कर, गर्दे, अंबिका प्रसाद बाजपेई जैसी एक लंबी कड़ी है। उन्होंने कहा कि आज विद्यापीठ, बनारस और भारत में अपनी प्रगति का एक नया और बड़ा रूप ले रहा है। इसी क्रम में छपरा विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ. हरिकेश बहादुर सिंह ने कहा कि काशी साहित्य जगत की एक जीवंत उदाहरण है। विद्यापीठ आचार्य परंपरा में श्रेष्ठ व श्रेष्ठतर है। उन्होंने कहा कि हमारा समाज समरस और सममेधा होना चाहिए। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए काशी विद्यापीठ के कुलपति प्रभारी प्रो. अशोक कुमार मिश्रा ने प्रो. वासुदेव सिंह को याद करते हुए कहा कि एक पिता के लिए गौरव की बात तब होती है जब उसे उसके पुत्र के नाम से जाना जाता है। ऐसे विचार गोष्ठियों में नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ियों से जुड़ती हैं और उनसे परिचित होती हैं।

कार्यक्रम के प्रारंभ में प्रो. अनुराग कुमार ने बीज वक्तव्य दिया। कार्यक्रम के संयोजक प्रो श्रद्धा सिंह, संरक्षक डा. हिमांशु शेखर सिंह और संरक्षक सचिव डा. नागेंद्र सिंह थे। संगोष्ठी का संचालन बनारस के जितेंद्र नाथ मिश्र ने और धन्यवाद ज्ञापन प्रो. श्रद्धा सिंह ने किया। इस मौके पर डा. शिवकुमार मिश्र, डा. वशिष्ठ नारायण सिंह, डा. नीरज खरे समेत अन्य लोग मौजूद थे।

An Exploration of Emotional Intelligence Among Secondary School Teachers

Dr. Vidhu Shekhar Pandey*, Dr. Ruchi Dubey**

Abstract: *The present study is an attempt to explore and compare emotional intelligence among different groups of secondary school teachers. Sample for the study consists of 260 secondary school teachers. Teacher's Emotional Intelligence Inventory developed by Shubhra Mangal was used as tool for the study. t-ratio were calculated for the analysis of the data. The finding of the study revealed that urban and rural secondary school teachers differ from one another on awareness of self and others, professional orientation, self-regulation and interpersonal management dimensions of emotional intelligence; male and female secondary school teachers differ from one another on awareness of self and others, professional orientation, self-regulation and interpersonal management dimensions of emotional intelligence.*

Key words: Secondary School Teachers, Emotional Intelligence, Professional Orientation, Inter-personal Management.

Introduction : Vital personality, skills and behaviours must be possessed by Secondary school teachers to impact students' motivation to learn. They also need to excel in their profession and in professional development, emotional intelligence play a significant role. Teachers can not be the effective source of knowledge unless they are possessed with the essential emotional and social skills, knowledge and talents. In the current years, the concept of the emotional intelligence among teachers has been taken attention in the schools and other educational institutions due to its great significance.

Emotional intelligence is the capability of individuals to recognize their own and other people's emotions. Emotional intelligence is the ability to identify and manage ones own emotions and emotions of others. Emotions are complex psycho-physiological processes triggered by subjectively important events in an individual's life (Eisma and Stroebe, 2021). Bar-on (1997), defined emotional intelligence as being concerned with understanding oneself and others, relating to students, and adapting to and coping with the immediate surroundings to be more successful in dealing with environmental demands. It is also defined as an array of non-cognitive capabilities competencies and skills that influence one's ability to succeed in coping with environmental demands and pressure. Emotional intelligence includes several factors i.e. self-awareness, social deftness, the ability to delay gratification, to be optimistic in the face of adversity, to channel strong emotions and to show empathy towards others. Goleman

* Assistant Professor– Department of Teacher Education, N.G.B. (D.U.), Prayagraj

** Assistant Professor– Department of Education, University of Allahabad, Prayagraj

(1995) identified five factors as the components of emotional intelligence like self-awareness, self-regulation, motivation, empathy and social skills. Thus, emotional intelligence contributes much more towards balance personality of the individual. Gitika (2016) and Garg and Kapri (2016) revealed that significant difference of emotional intelligence dimensions like self awareness, self-management and sum of all dimensions between teachers of government and private secondary school. Study of (Bhuvaneswari and Baskaran, 2020; Gurunani, 2018; Bose and Guha, 2018 and Suvarna, 2015) also found that male and female secondary school teachers have similar emotional intelligence. Study of (Gurnani, 2018 and Suvarna, 2015) revealed that urban and rural secondary school teachers have similar level of emotional intelligence. Suvarna (2015) also found that no significant difference between locality subject and experience of emotional intelligence among secondary school teachers. While (Dahiya, 2019; Sowmyashree and Sreenivasa, 2019; Guha, 2018 and Mudasir, 2016) reported that urban and rural secondary school teachers differ from one another on emotional intelligence. The finding also indicates that urban secondary school teachers have better emotional intelligence as compared to rural secondary school teachers. While Dahiya (2019) reported that rural teachers are more emotionally intelligent than urban teachers. Dahiya also revealed that rural and urban teachers both have equal skill of intra-personal management; urban teachers have more intra-personal awareness than rural teachers.

Teacher's emotional intelligence determines the achievement of the students and maintains overall performance of the school. The classroom climate determines the personality of the students. The good classroom climate can be created by the emotionally intelligent teachers. Teaching profession meets the widely accepted criteria of professions; however, it is pertinent to note that there are subverting factors that restrains the advancement of teaching profession. Commitment is also a factor which affects the teaching as a profession. Innovation is not only a part of education but also a need of the modern times. A number of problems regarding the students' unrest, subject matter, home environment, school environment, peer groups, heredity and a lot of demographical variables and so on affect the professional responsibility of teachers, but emotional intelligence plays a significant role to make up a teacher professionally responsible. The significance of emotional intelligence skills in the school teaching is highlighted by the very nature of the job. Personal emotional intelligence skills of self-awareness, self-regulation and motivation (Goleman, 1998) are necessary, if individuals are to recognize their own strengths and weakness, develop good self-esteem, maintain integrity, take responsibility for their own actions, and take initiative for excellence. Interpersonal emotional intelligence skills i.e. social ability and empathy are at the heart of handling relationships. Thus, emotional intelligence is an

essential factor for a productive workplace. Therefore, it becomes obligatory to access the comparative study of emotional intelligence among secondary school teachers.

Objectives of the study:

The present study has been conducted to achieve the following objectives :

1. To compare the emotional intelligence among urban and rural secondary school teachers.
2. To compare the emotional intelligence among male and female secondary school teachers.

Hypotheses of the Study:

To achieve the above mentioned objectives, the following hypothesis were formulated and tested:

1. There is no significant difference in the emotional intelligence of urban and rural secondary school teachers.
2. There is no significant difference in the emotional intelligence of male and female secondary school teachers.

Methodology : Descriptive method of research has been employed in the present study. Sample for the study consisted of 260 secondary school teachers of urban schools like K.P. Inter College, Colonelganj Inter College, Arya Kanya Inter College and Iswar Saran Balika Inter College, Prayagraj and rural schools like Gopal Vidyalaya Inter College, Koraon, Sardar Patel Inter College, Manbodh Balika Inter College Koraon and Lalbahadoor Shastri Inter College, Manda, Prayagraj, U.P. Teacher's Emotional Intelligence Inventory prepared by Shubhra Mangal (2010) was used as a tool for collection of data. t-ratio have been calculated for the analysis of the data.

Results and Discussion:

Table-1

Mean, S.D. and t-ratio showing difference in emotional intelligence among urban and rural secondary school teachers

S. No.	Dimensions of Emotional Intelligence	Groups	N	Mean	S.D.	t-ratio
1.	Awareness of self and others	Urban	120	146.80	6.20	7.86*
		Rural	140	140.20	7.40	
2.	Professional orientation	Urban	120	84.50	7.30	9.57*
		Rural	140	75.60	7.80	
3.	Self regulation	Urban	120	54.60	5.20	17.08*
		Rural	140	43.50	5.10	
4.	Interpersonal management	Urban	120	86.53	8.10	2.62*
		Rural	140	92.63	26.09	

*Significant at .01 level

Observation of Table 1 reveals that the value of t-ratio showing difference in various dimensions of emotional intelligence i.e. awareness of self and others (=7.86), professional orientation (=9.57), self regulation (=17.08) and interpersonal management (=2.62) among urban and rural secondary school teachers are significant at .01 level. So, the corresponding null hypothesis is rejected and it can be inferred that urban and rural secondary school teacher differ from one another on awareness of self and others, professional orientation, self regulation and interpersonal management dimensions of emotional intelligence.

It can also be observed from the table that as compared to rural secondary school teachers, urban secondary school teachers have more awareness of self and others, professional orientation and self-regulation in emotional intelligence. This means that urban secondary school teachers have more awareness of one's own self and other's interaction; optimism towards the profession, service orientation and an innate desire to achieve are the key stones to achieve professional orientation; in public independently by exhibiting positive EQ traits of self-confidence and self control than rural secondary school teachers.

Table 1 also points out that as compared to urban secondary school teachers; rural secondary school teachers have better interpersonal management in emotional intelligence. This means that rural secondary school teachers have more requires immense skills of managing others where competencies like teamwork capabilities, problem solving and building bonds initiating a change are very essential. The present finding draws support from the findings of Mudasir (2016) who also found that urban and rural secondary school teachers differ from one another on emotional intelligence, while urban secondary school teachers have better emotional intelligence as compared to rural secondary school teacher. Contrary was the finding of (Gurnanai, 2018 and Suvarna, 2015) also found that both urban and rural secondary school teachers have similar emotional intelligence.

Table-2

Mean, S.D. and t-ratio showing difference in emotional intelligence among male and female secondary school teachers.

S. No.	Dimensions of Emotional Intelligence	Groups	N	Mean	S.D.	t-ratio
1.	Awareness of self and others	Male	126	146.15	7.40	3.59*
		Female	134	149.70	8.56	
2.	Professional orientation	Male	126	75.42	6.70	4.33*
		Female	134	79.36	7.90	
3.	Self-regulation	Male	126	48.51	5.56	26.7*
		Female	134	69.61	7.12	
4.	Interpersonal intelligence	Male	126	83.61	8.48	11.26*
		Female	134	96.45	9.93	

*significant at .01 level

Observation of Table 2 reveals that the value of t-ratio showing difference in various dimensions of emotional intelligence i.e. awareness of self and others (=3.59), professional orientation (=4.33), self regulation (=26.7) and interpersonal intelligence (=11.26) among male and female secondary school teachers are significant at .01 level. So, the corresponding null hypothesis is rejected and it can be inferred that male and female secondary school teachers differ from one another on awareness of self and others, professional orientation, self-regulation and interpersonal intelligence dimensions of emotional intelligence. It can also be observed from the table that as compared to male secondary school teachers, female secondary school teachers have more awareness of self and others, professional orientation, self-regulation and interpersonal intelligence in emotional intelligence. This means that female secondary school students have more awareness of one's own self and others interaction; optimism towards the profession, service orientation and an innate desire to achieve are the key stones to achieve professional orientation; in public independently by exhibiting positive EQ traits of self confidence and self control can be said to possess the skill of self management; and requires immense skill of managing others where competencies like teamwork capabilities, problem solving and building bonds initiating a change are very essential than male secondary school teachers. The present finding draws support from the finding of Mudasir (2016) who found that male and female secondary school teachers differ from one another on emotional intelligence, while male secondary school teacher have better emotional intelligence as compared to female teachers. Contrary were the findings of (Gurnanai, 2018 and Suvarna, 2015) they found that male and female teachers of secondary school do not differ with respect to emotional intelligence.

Thus, it can be concluded that urban and rural secondary school teachers differ from one another on awareness of self and others, professional orientation, self regulation and interpersonal management dimensions of emotional intelligence; male and female secondary school teachers differ from one another on awareness of self and others, professional orientation, self-regulation and interpersonal management dimensions of emotional intelligence. In the light of the present study it can be concluded that emotional intelligence of teachers play a vital role in managing their own life and dealing effectively with the feeling of others. The holistic approach influences emotionally supportive environment in the classroom, which can be created by a teacher. Emotionally healthy teacher behaviour is reflected in characteristic ways of thinking, identifying, managing and expressing feelings.

Educational Implications : The areas of emotional intelligence

would help the secondary school teachers to maximize their teacher effectiveness and improve their personal and professional life. Measures should be taken up to improve and sustain the level of emotional intelligence of secondary school teachers by providing congenial environment for strategy of teaching, autonomy and independence in teaching. Emotionally intelligent teachers are the key for proving quality education. Positive emotions of teacher would leave positive impact on students. An emotionally intelligent teacher helps the students to improve their academic performance. Emotional intelligence should be kept as an input factor in both pre-service and in-service teacher education programme.

References :

- Bar-on (1997). In P.Garg and U.C. Kapri (2016). A comparative study of emotional intelligence of secondary school teachers. *EPRA International Journal of Economic and Business Review*, 4(5), 67-71.
- Bhuvneswari, G. and Baskaran, D. (2020). A study on emotional intelligence of higher secondary school teachers in Chengalpattu district. *International Journal of Education,* 9(1), 146-151.
- Bose, S. and Guha, A. (2018). Emotional intelligence and professional adjustment of secondary school teachers. *International Journal of Research in Social Sciences*, 8(4). 579-590.
- Dahiya, A. (2019). A study of Emotional Intelligence Inventory for secondary and higher secondary school teachers with respect to area. *International Journal of Interdisciplinary Research and Innovations*, 7(2), 1-3.
- Eisma, M.C. and Stroebe, M.S. (2021). Emotional regulatory strategies in complicated grief. *A Systematic Review of Behaviour*, 52, 234-249.
- Garg, P. and Kapri, U.C. (2016). A comparative study of emotional intelligence of secondary school teachers. *EPRA International Journal of Economic and Business Review*, 4(5), 67-71.
- Gitika (2016). A study of emotional intelligence among secondary school teachers. *International Research Journal of Commerce, Arts and Science,* 7(10), 17-22.
- Goleman, D. (1995). *Emotional Intelligence*. New York : Bantam Book.
- Goleman, D. (1998). *Working with Emotional Intelligence*, New York : Bantam Book.
- Gurnani, P. (2018). Emotional intelligence : A study on secondary school teachers of Durg district. *Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika*, 5(12), 121-124.
- Mudasir, H. (2016). A study of emotional intelligence of teachers at secondary level in relation to gender and rural urban dichotomy. *International Journal of Humanities and Social Science Research*, 2(11), 32-38.
- Sowmyashree, K.N. and Sreenivasa, M. (2019). Emotional intelligence among rural and urban secondary school girls. *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research*, 6(6), 328-330.
- Suvarna, V.D.(2015). A comparative study of emotional intelligence of rural and urban teachers of government secondary schools. *Global Journal for Research Analysis*, 4(1), 66-69.

Impact of Time Spent on Information Search on Consumer Purchase Decision

Dr. Rahil Yusuf Zai*, Dr. Pankaj Kumar**

Abstract : Online marketing is an internet accessible virtual marketplace which has a global reach coverage of the customers. In the era of advanced technology, what seems to be good for the customer, they get convinced to its purchase. Therefore, a global reach technology is required for mass coverage of the market. The customer wants to access a lot of information about a durable, compare it with other brands, and get a quick response about their choice. This type of changing behaviour has promoted the online marketing. The consumer decides about durable in several steps and then makes an online purchase. Online marketing provides an opportunity to the customer to view and check the information provided by the company. The consumer can be more reliable after searching a lot of information about a particular brand. In this way, they gain a wide knowledge about specific market. This paper is based on the time spending behaviour in consumer decision making through online marketing.

Keywords : Time Spent, online marketing, purchase decision

1. Introduction : With the advancement of technology, the industries have grown to reach their customers through the internet. The rapid penetration of the internet in business has led to the birth of online marketing. Online marketing involves retailing products through e-services, digital promotions, building long term relationships with the customer, and securing an online payment. The online marketer explores new sources to provide consumer satisfaction to gain competitive leverage (Doherty, Dennis, and Ellis Chadwick, 2009). The internet provides broad target markets, improved communications with the customer, wide product lines, building customer relationships with a lot of promotional offers and coupons (Srinivasan et. al., 2002). Online marketing facilitates two-way communication among customers and online marketers and supports an easy and flexible online channel for sale and purchase of goods and services (Basu and Muylle, 2003). With the growth of technology, a diverse set of consumers are harbored in the domestic and global online marketplace. Online marketing is reliant on information processing by consumers. When reliable and trusted information is published by the online marketer, they will get a mass customer through online marketing. The ability of the website can track the consumer behaviour about their

* Assistant Professor, Department of Business Management, Indira Gandhi National Tribal University Amarkantak

**Assistant Professor, KCC Institute of Legal and Higher Education, Greater Noida,

searching pattern, and visiting product. Though the classical consumer decision making process comprises of five stages – Needs Recognition, Information Search, Evaluation of alternatives, purchase decision, and post-purchase decision. (Engel, Kollat, and Blackwell 1973; Howard and Sheth 1972; Nicosia 1982). The Indian marketing environment is full of diversity in culture and traditions to explore a wide of scope of marketing research.

2. Literature Review : A lot of studies have been done in the past about online marketing. Several researchers have worked on the scope and drivers in online marketing. In reviewing such literature, the two construct scope and drivers have been jointly addressed (Doherty et al., 2003; Gibbs and Kraemer, 2004; Wymer and Regan, 2005. The researcher has studied the impact of the internet on consumer decision making and suggested that the internet can not only be used for promotional tools but it can be timely used for cost-effectiveness. The stiff competition among the rivalry companies can be looked at closely to draft a proper marketing policy (McGaughey & Mason, 1998). The economic impact of online marketing has been studied which focuses on the effect of online marketplaces, pricing policies, and competitions (Wood et al., 2005). There is a gradual shift in research for studying consumer decision making in online marketing. The internet has a different retail atmosphere to influence the emotion of the consumer (Menon & Kahn, 2002).The web browser is less time-pressured and focuses less on providing convenience to the online customer. Browsers do not purchase online and it can suggest the online customer for low price products, good quality, and making a final selection. These activities are performed by an online customer (Lepkowska-White, 2004). After studying several past literature and researches, it has been seen that there is no study related to time spent searching for information through online marketing and consumer decision making.

Some other aspects of time spent in purchase decision making are choosing offers and online coupons, promotional schemes, and discounts. The consumer searches a lot of information about advertisements and promotions which takes time in making a purchase decision. Various literature has been found about responses of promotional offers (Inman and McAlister 1994; Folkes and Wheat 1995). The consumer is stirred by the promotional schemes to check the reliability of the information. The expiry of promotional offers matters a lot in searching for information about the product. The consumer faces uncertainties about time at several moments in the purchase decision (Roselius, 1971). Time-related information can influence purchase intention. The consumer tries to get a lot of information to evaluate according to the needs, it will help in reducing uncertainty about the outcome, the absence of information may not be considered for

appropriate purchase decision by the consumer. After the study of the above literature, the objective of the study are drawn as (i) to study time spent for searching information and online purchasing of consumer durable.

The consumer decision making can be determined by the joint interaction of men and women in a family (Elder and Rudolph 2003). The nature of cooperation can differ from men and women. It may also vary among spouse, father, children and other family members. Family, peers, and social media act as a governing body to influence purchase decision. The Indian family is in form of two types - Nuclear and Joint family. The purchase decision making can be male dominant, female dominant in egalitarian structure. The decision making is governed by economic and non-economic activities of the men and women in a family. Bertocchi, Brunetti and Torricelli (2012) studied the determinants of family decision making which are based on financial and economic resources. Their study has investigated the individual behaviour of each spouse, and family structure and their behaviour. The female status has crucial role in family decision making. Durable selection among family members is mostly selected by spouses in rural areas but spouse decision is highly influenced by their children. The children are kids in their size but they have a vast knowledge about brands, its use and features and latest trends due to much exposure with internet, talking with friends and relatives (Halan, 2002). However, the other objective is drawn as (ii) to know the influence of family decision maker of purchasing durable through online marketing.

3. Research Methodology : The study has been done through a structured questionnaire. It was circulated in two-two districts of Madhya Pradesh and Chhattisgarh. The districts in Madhya Pradesh are Jabalpur and Bhopal while the districts in Chhattisgarh are Bilaspur and Raipur. The questionnaire was distributed in two sections (i) Demographics (ii) Questionnaire related to time spent in searching for information in online marketing and the act of the decision-maker in a family. The questionnaire was distributed among those who have made an online purchase of consumer durable in the past one year. Such individuals are selected by asking their online purchase status. 800 questionnaires were distributed in Madhya Pradesh and Chhattisgarh. 690 questionnaires were returned while only 648 respondents have filled the questionnaire. The sample size is 648 which has been taken further for data analysis.

The demographic profile of the respondents has been shown in Table-1.

	Jabalpur	Bhopal	Bilaspur	Raipur
Gender				
Male	88	87	91	90
Female	74	75	71	72
Education				
10^{th}	9	7	7	6
12^{th}	26	25	26	28
Diploma	25	23	24	23
UG	44	46	45	45
PG	37	38	39	38
PhD	15	16	14	16
Literate	6	7	5	6
Age				
15-25 Years	31	27	33	30
25-35 Years	54	47	36	54
35-45 Years	35	51	51	47
Above 45	42	37	42	31
Income				
Below 3 lacs	15	8	9	11
3-6 lacs	48	53	51	52
6-9 lacs	62	64	55	68
Above 9 lacs	37	37	47	31
Family Types				
Nuclear	64	65	67	63
Joint	98	97	95	99
Residence				
Rural	74	66	70	67
Urban	88	96	92	95

Table 1 Demographic Profile of the respondents
Source: Primary Data

4. Data Analysis and Interpretation : The collected data has been analyzed to find the objective of the study. The percentage method is used for analysis of the respondent's data.

Objective 1: To study time spent on searching for information and online purchasing of consumer durable

The internet is a galaxy of information where a lot of online marketing portals are available for business. The online marketing portals are providing information about durable like specifications, descriptions, technical know-how, delivery duration, and warranty. The consumer has to decide about their relevant information before online purchases. Thus, the

consumer gives a lot of time in gathering their information. It is a common practice to search a particular product on several online portals to match its price and other attributes. The frequency distribution of time taken in searching for information and online purchasing of consumer durable of the respondents has been analyzed and results are presented in Table 2.

The level of time duration spent has been classified into six groups – Instant Order, less than 1 hour, 1-3 hours, 3-5 hours, 5-7 hours, and almost online. It can be seen from Table 2, out of 648 respondents in four districts (Jabalpur, Bhopal, Bilaspur, and Raipur), the analysis has been done on percentage method about time spent in searching information and online purchasing of consumer durable. After an overall analysis of the time spent in searching for information, it can be concluded that 3-5 hours is required to collect information about consumer durable for purchasing through online marketing.

Table 2 Frequency distribution of time spent in searching information and online purchasing of consumer durable

Source: Primary Data

Total Almost Online	Female	36 16	22.22% 9.88 %	34 11	20.99% 6.79 %	41 14	25.31% 8.64 %	32 15	19.75% 9.26 %	143 56	22.07% 8.64 %
Almost Online	Male	20	12.34%	23	14.20%	27	16.67%	17	10.49%	87	13.43%
Total		7	4.32%	11	6.79%	7	4.32%	13	8.02%	38	5.86%
5-7 hrs.	Female	3	1.85 %	6	3.70 %	4	2.47 %	6	3.70 %	19	2.93 %
5-7 hrs.	Male	4	2.47 %	5	3.09 %	3	1.85 %	7	4.32 %	19	2.93 %
Total		54	33.33%	44	27.16%	39	24.07%	61	37.66%	198	30.56%
3-5 hrs.	Female	21	12.96%	23	14.20%	18	11.11%	32	19.75%	94	14.51%
3-5 hrs.	Male	33	20.37%	21	12.96%	21	12.96%	29	17.91%	104	16.05%
Total		46	28.41%	53	32.72%	49	30.25%	38	23.46%	186	28.70%
1-3 hrs.	Female	27	16.67%	27	16.67%	24	14.82%	10	6.17 %	88	13.58%
1-3 hrs.	Male	19	11.74%	26	16.05%	25	15.43%	28	17.29%	98	15.21%
Total		13	8.02%	17	10.49%	18	11.11%	14	8.64%	62	9.57%
Less than 1 hr.	Female	3	1.85%	7	4.32%	6	3.70 %	6	3.70%	22	3.40 %
Less than 1 hr.	Male	10	6.17%	10	6.17%	12	7.41%	8	4.94 %	40	6.17%
Total		6	3.70 %	3	1.85 %	8	4.94 %	4	2.47 %	21	3.24 %
Instant Order	Female	4	2.47 %	1	0.62%	5	3.09%	3	1.85%	13	2.01%
Instant Order	Male	2	1.23%	2	1.23%	3	1.85%	1	0.62%	8	1.23%
District (Sample Size)		Jabalpur (162)		Bhopal (162)		Bilaspur (162)		Raipur (162)		Total (648)	

Objective 2: To know the influence of family decision-maker for online purchasing of consumer durable in a family.

The decision maker acts as a finalizer for the online purchasing of consumer durable. Generally, the decision maker is the elder member of a

family and has a major contribution in earnings for the family. Since the durable items are somewhat costlier, the role of decision maker has a great influence on the online purchase of the durable. The family member checks about the needs of a particular product in the family; it would the first purchase or to replace an old item. Personalization through professional look, vibrant colors and the interactive website attracts them more. Coupons are a great source of online marketing for millennial. They can also write a review about the product if they are really satisfied with using a particular product (Smith, 2012).

In the present study, the decision maker has been categorized as six individuals i.e. parents, wife, husband, son, daughter, and relatives. Each of the individuals has a significant influence on consumer decision making for online purchasing of consumer durable. It can be seen from Chart 1, Out of 648 respondents in four districts (Jabalpur, Bhopal, Bilaspur, and Raipur) in Madhya Pradesh and Chhattisgarh, the husband acts with an influence of 34.10% as a major role of the decision maker for online purchasing of the consumer durable in a family and acts as the major decision maker for online purchasing of the consumer durable in a family.

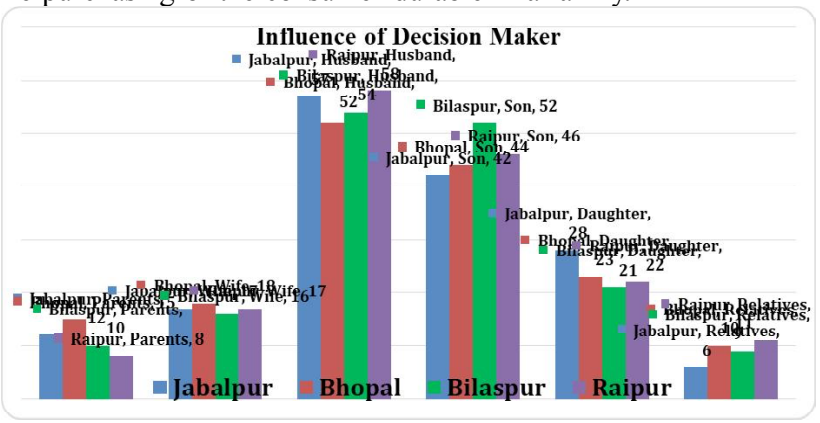

Chart 1 Distribution of Influence of family decision maker for online purchasing of consumer durable in a family

Source: Primary Data

5. Conclusion and Implications to the online marketer : Online marketing can dramatically change the scenario of the traditional market. The internet gives a mechanism to expand the target market, establish better communications, maximizing cost efficiency, strengthening relationships among customers, broadening product line. 30.56% of the total respondents prefer to spend 3-5 hours for purchasing consumer durable. The time is used to gather information through several online portals. The attributes and features of the consumer durable are compared with the several online portals, the consumer will then decide for online purchasing of the durable. 16.05% of male respondents and 14.51% female

respondents account for 3-5 hours in searching for information for online purchase of durable. 3-5 hours is required to collect information about consumer durable for purchasing through online marketing. The husband has an influence of 34.10% as a major role of the decision maker for online purchasing of the consumer durable in a family. After the husband, Son is given more preference with a share of 28.40% as the role of the decision maker for purchasing consumer durable. Husband is the major decision maker for online purchasing of the consumer durable in a family. Target marketing strategies should be implemented in designing marketing campaigns by the online marketer. This field of research can give high payoffs for online marketing practitioners.

6. Limitations : Having a lot of advantages in online marketing, there are some limitations in consumer decision making through it. There is a need for the basic infrastructure of high speed internet for smooth surfing and online processing of payment. Being as an active user of the internet for their purpose, every individual doesn't feel comfortable. The study is confined to four districts in Madhya Pradesh and Chhattisgarh. The field area of the study can be broadened.

References

1. Alba, J., Lynch, J., Weitz, B., Janiszewski, C., Lutz, R., Sawyer, A., & Wood, S. (1997). Interactive Home Shopping: Consumer, Retailer, and Manufacturer Incentives to Participate in Electronic Marketplaces. Journal of Marketing, 61(3), 38-53. doi:10.2307/125178
2. Basu, A., & Muylle, S. (2003). Online Support for Commerce Processes By Web Retailers. Decision Support Systems, 34(4), 379–395.
3. Beatty, S. E., & Smith, S. M. (1987). External Search Effort: An Investigation Across Several Product Categories. Journal of Consumer Research, 14(1), 83-95. doi:10.1086/209095
4. Doherty, N. F., & Ellis Chadwick, F. (2009). Exploring the drivers, scope and perceived success of e commerce strategies in the UK retail sector. European Journal of Marketing, 43(9/10), 1246–1262. doi: 10.1108/03090560910976474.
5. Elder, H. W and P.M. Rudolph [2003]: Who Makes the Financial Decisions in the Households of Older Americans? Financial Services Review, 12(4), 293-308.
6. Engel J.F., D. T. Kollat, & R. D. Blackwell, (1973). Consumer Behavior (2nd Ed.). New York: Holt, Rinehart & Winston.
7. Folkes, V., & Wheat, R. D. (1995). Consumers' price perceptions of promoted products. Journal of Retailing, 71(3), 317–328. doi:10.1016/0022-4359(95)90028-4

8. Halan, Deepak. 2002. "Why Kids Mean Business," Indian Management, December, 46-49.
9. Howard, J., & J. Sheth, (1972). The Theory of Buyer Behavior. New York: Free Press.
10. Inman, J. J., & McAlister, L. (1994). Do Coupon Expiration Dates Affect Consumer Behavior? Journal of Marketing Research, 31(3), 423. doi:10.2307/3152229
11. Lepkowska-White, E. (2004). Online Store Perceptions: How to Turn Browsers into Buyers? Journal of Marketing Theory and Practice, 12(3), 36–47. DOI: 10.1080/10696679.2004.11658523
12. McGaughey, R. E., & Mason, K. H. (1998). The Internet as a Marketing Tool. Journal of Marketing Theory and Practice, 6(3), 1–11. doi:10.1080/10696679.1998.11501800.\
13. Menon, S., & Kahn, B. (2002). Cross-category effects of induced arousal and pleasure on the Internet shopping experience. Journal of Retailing, 78(1), 31–40. https://doi.org/10.1016/S0022-4359(01)00064-1
14. Nicosia, F.N. (1982). Consumer Decision Processes: A Futuristic View. Advances in Consumer Research, 9,17-19.
15. Park, J., & Kim, J. (2007). The Importance of Perceived Consumption Delay in Internet Shopping. Clothing and Textiles Research Journal, 25(1), 24–41. doi:10.1177/0887302x06296869
16. Spears, N. (2001). Time Pressure and Information in Sales Promotion Strategy: Conceptual Framework and Content Analysis. Journal of Advertising, 30(1), 67–76. doi:10.1080/00913367.2001.10673632
17. Srinivasan, S. S., Anderson, R., & Ponnavolu, K. (2002). Customer loyalty in e-commerce: an exploration of its antecedents and consequences. Journal of Retailing, 78(1), 41–50. doi:10.1016/s0022-4359(01)00065-3
18. Wood, C., Alford, B., Jackson, R., & Gilley, O. (2005). Can retailers get higher prices for "end-of-life" inventory through online auctions? Journal of Retailing, 81(3), 181-190. doi:10.1016/j.jretai.2005.07.001

●

Parent's Perspectives About Cochlear Implantation for Their Children with Hearing Loss

Dr. Palnaty Vijetha*, Dr. Deepak Kumar Tripathi& Dr. Alok Kumar Upadhyay*****

Objective : To study the perspectives of parents of children with cochlear implants about cochlear implantation. **Methodology :** A questionnaire was prepared to understand the parent's perspectives of children with cochlear implants. The items in the questionnaire included five domains: general information; family information; birth history; hearing and communication information and education history. The questionnaire was administered on twenty five parents of children with cochlear implants and their responses were recorded. **Results and discussion :** Qualitative analyses based on parents' responses identified the critical factors for the progress of children with cochlear implantees are involvement of parents; their dedication; education of parents, abilities and interest of child, pre-implant training; encouraging environment at home and school; consistent training at home and participation in social activities. **Conclusions :** The responses of parents emphasize the need for the technical and educational support for a long time for the overall development of their children with cochlear implants. It also highlights the need for parental and professional partnership and also evidence based training practices.

Keywords : Children with cochlear implants, Rehabilitation services

INTRODUCTION : Among five sense organs, hearing is considered as one of the most important sense as it is critical for speech and language development, communication, and learning. As per Census, 2011 in India, 18.9% of the population is reported to have hearing loss. Research states child's learning ability and to apply the same meaningfully is greatly hindered by hearing loss (Mac Dougall, 2007). A cochlear implant is an electronic device that provides access to sounds to individuals with severe to profound hearing loss. The device has internal and external components. Surgically internal components are placed inside the inner ear or cochlea. The external component consists of either a body level or earl level speech processor. The implant bypasses the damaged parts of the ear and ends electrical sound information directly to the auditory nerve. A cochlear

* Associate Professor in Special Education, All India Institute of Speech and Hearing, Mysore

** Assistant Professor in Special Education- Nehru Gram Bharati (Deemed to Be) University, Prayagraj, U.P.

*** Associate Professor & Head- Department of Special Education, All India Institute of Speech and Hearing, Mysore

implant influences child's with hearing loss development in most areas (Geers et al., 2008; Lyxell et al., 2008, 2009; Pisoni et al., 2008; Wass, 2009; Wass et al.,2008). In India, as per the estimate, in the year 2009, approximately 3000 individuals are implanted and in United States approximately 30,000 adults and 30,000 children implanted in the year 2009 (Jeyaraman, 2013). Cochlear implantation has gained popularity among children with severe to profound hearing loss who receive very minimum benefit from hearing aids (Punch and Hyde, 2010). The quality of life of children with hearing loss is improved by both simultaneous and sequential cochlear implants who are bilaterally implanted (Dempsey, et al., 2021). However, different patterns of development in areas of communication would develop through cochlear implants and normal level of hearing is not restored (Geers, 2003; Houston, Pisoni, Iler Kirk, Ying & Miyamoto, 2003; Richter, Eibele, Laszig & Lohle., 2002; Spencer, 2004). Thus, in recent times, expectations from children with cochlear implant have risen. Some aspects of cochlear implant device, particularly technical areas of cochlear implant have been extensively investigated by audiologists, speech language pathologists and surgeons, while other areas, such as parent's perspectives about the cochlear implant surgery and outcomes of the same in their children with hearing loss has received less attention. Parents of children with cochlear implants play a key role in the rehabilitation of their children. Quality of life can be reported reliably by children with cochlear implants between the age group 8-12 years and there is high agreement between parents and children with cochlear implants (Hendriksma et al., 2020)

Thus, the main objective of the present study aimed to determine the parent's opinion about as to how listening from cochlear implants influenced the life of their children with hearing loss i.e., the limitations and benefits of cochlear implant device and also to understand the factors that led to their development.

METHOD :

Sampling procedure : Purposive sampling technique was used to choose the parents of children with cochlear implants. In total, sixty eight parents of children with cochlear implants were obtained. As per the inclusion criteria, parents were contacted over phone to obtain the details. Among them, four had invalid contact numbers, 31 did not satisfy the inclusion criteria hence were not eligible to be included as sample, five expressed their unwillingness to participate in the study, therefore, out of total 68 parents of children with cochlear implants, 43 were not included and the remaining 25 children who satisfied the inclusion criteria were included. Appointments were taken from the parents as per their convenience for data collection. Repeated calls were made to remind and

confirm the appointment dates and timings. The researcher visited the house of each child personally to collect the necessary data for the study.

Participants : Parents of children with cochlear implants were selected as sample for the study based on the inclusion criteria namely: children must have been diagnosed with severe to profound hearing loss; chronological age range must be 6 to 11 years; unilaterally implanted; no reported physical or sensory additional disabilities; native speakers of kannada; use of cochlear implant at least for one year; geographically living in Mysore and Bangalore cities in the state of Karnataka, India and studying in regular schools along with normal hearing children. Only one parent of the child with cochlear implant participated in the study. These children were implanted between the age of 1 and 7 years (mean age at implantation 4.1 years). They had been using their implants for more than one year (mean duration of implant use 3.1years). All children had early training. Eighteen of them attended special preschool for children with hearing impairment. Their main mode of communication was oral mode but two children also used sign language. Only one child had deaf parents and all other 24 children had hearing parents.

Questionnaire : A questionnaire was prepared consisting of five domains namely general information; family information; birth history; hearing and communication information and education history consisting of 60 items. It was given to ten experts for establishing validity including two audiologists; two speech language pathologists, two special educators, two clinical psychologist, one general educator and one parent. The items which were marked appropriate by 90% of the experts were retained and others were modified and deleted wherever suggested.

PROCEDURE : Parents of children with cochlear implants were contacted over phone and appointment was taken on a convenient date and time. The researcher visited each child's home at the stipulated time. Before beginning the test, rapport was build with the parents and the purpose of the study was explained. When they felt comfortable, researcher requested for a noise-free room in their home without any disturbance for administration of the test. Consent form and questionnaire was given to the parents requesting to fill in the details.

Analyses : Qualitative analysis was done for the items in the questionnaire and results have been discussed as follows.

RESULTS AND DISCUSSION :

It is interesting to know from the present study that none of the children with cochlear implants received any kind of educational support or any extra language training in their regular schools such as learning from a teacher of the hearing impaired, training in school subjects at an intervention centre etc. Parents expressed to the investigator that children

with cochlear implants studying in regular schools in one way is promoting inclusive education but they tend to live in risky environments where in mainstream teachers do not have any knowledge about the cochlear implant surgery, about its benefits and the way it has to be handled. In other words, the professionals in regular schools who are educating these children with cochlear implants may not have had, in their teacher training coursework about any information related to the technological aspects of cochlear implant device, the strengths and limitations of the device, and knowledge on how these children learn using this cochlear implant device. The teachers and other staff in regular schools most often gain little knowledge about cochlear implants from parents of children with cochlear implants.

In addition to this, Parents also emphasized that there are other problems in regular schools such as noisy classrooms in regular schools, poor speech perception abilities for these children with cochlear implants or only little visual clues to understand the spoken language of different teachers and their teaching styles. As rightly pointed out by Vermeulen et al (2012) complex Linguistic Skills might be less developed and these shortfalls may be hidden in these children due to their good auditory perception skills, speech intelligibility, and better language skills at basic level. Bones and Diggory (1999) also highlighted the need for giving clear lip-pattern for deaf children at all times in regular classrooms and playground for their better understanding of which all teachers in the school should be aware. It is accepted by many that cochlear implants are better than the hearing aids but they do not restore the normal hearing. Therefore, children with cochlear implants are emerging as a separate group altogether, a better cohort than children with hearing aids, as mentioned by Govaerts (2002), that the hearing sensitivity provided by cochlear implants for most of the conversational sounds is superior to conventional hearing aids. They need to be treated normally as like any other hearing child but still the support they require which cannot be undermined. These children in mainstreamed classrooms must be monitored closely as their difficulties might be subtle. They definitely require the support to avoid the breakdowns in education process and also in life to enable them to lead a quality life. But this support may be little and not as much as before they were implanted. As reported by Watson (2002) who assessed the development of literacy at age 7+ i.e., at the end of Key Stage 1 in England in the English National Curriculum in 10 children with cochlear implants. They were implanted before five years of age. It was aimed to explore the benefit of implant device in enabling them to access sounds and if this is being reflected in their literacy. Data was collected from the parents and particularly from the schools, who provided

the information on children's performance on the areas requested. The results revealed seven out of ten children with cochlear implants were able to achieve standard literacy levels in some aspects as like their peers, and also they were using phonic strategies. Therefore, the study underscores the importance of providing more focused teaching to children with cochlear implants as their implants are affording them the advantage of phonological strategies to be used in learning literacy skills.

They have to be taught using the instructional practices which are effective with hearing children and also they have to be taught in those areas for which they have unique needs for e.g., diminished auditory access, weaker spoken and language skills, and wide individual differences. All of them have to be taught through a specially designed training program using variety of activities in a very systematic manner. Literature review points out to one such program in a quasi-experimental study by Lederberg et al (2014), who examined the effectiveness of a new early literacy preschool (NELP) intervention formed especially for deaf and hard of hearing children with functional hearing. Experimental group included 25 deaf and hard of hearing children studying in two different schools: one school used spoken language and other school used spoken language along with and without sign. Control group included 33 deaf and hard of hearing children who were in line with the children in experimental group on key characteristics. Foundations for Literacy was not implemented on control group children. All children with hearing loss had moderate to profound hearing loss and approximately half of them were cochlear implanted and had good speech perception skills for closed item sets. Foundations for Literacy was implemented by teachers for experimental group children in small groups for one hour in a day, for four days per week for the school year. Findings revealed experimental group children made significant gains on expressive vocabulary tests, phonological awareness tests, and letter-sound knowledge tests than comparison group. Additionally, on phonological awareness and vocabulary tests, they showed significant increases in standard scores of hearing children. Therefore, the study highlights that these children can acquire foundational skills in learning to read when taught using instructional practices found effective for typical hearing children but adapted to the exceptional needs of children with hearing loss, specifically their reduced auditory access, fragile language skills and broad individual diversity. Foundations provide experiences intended to build semantic, visual, and kinesthetic representations to complement and support spoken phonological representations and also teach vocabulary variety in meaningful contexts.

Parents emphasized their concern when these children with cochlear

implants move on to higher grades where more content and language are used, it will hamper their educational progress in the long run. Another prominent point is, in India, the language what they use as their local spoken language (e.g. Kannada) is different from their school language (e.g. English). Therefore, an important observation of this study is in order to avoid negative influences in the long run, it's better to provide them with the educational support from a teacher of the deaf in English language. Educational support must be continuous even more during the later school years. Mukari et al (2007) recommended that for children with cochlear implants in regular classrooms where they are studying along with normal hearing children require some type of specialist educational support in order to perform better. Harris and Terlektsi (2011) also emphasized that even with substantial advances in amplification technology, most of the deaf adolescents find literacy taxing and they would require specialized teaching support throughout their school time to achieve their maximum potential.

From the above findings and observations, researcher recommends for updating the teacher education programs as the competencies for meeting the needs of these children with cochlear implants in regular schools are expanding and also becoming diverse. In addition to this, an educators group working exclusively in the area of children with cochlear implants providing educational support to these children may be formed all over the country to discuss the educational issues, practices, and outcomes in order to get a clear picture about what is happening with these children educationally in regular schools.

Parents expressed their need for support in the form of technological support, medical support and educational support. Nidgundi (2018) reported in the study that parents requires support in terms therapy, financial, rehabilitation which can help in reducing their stress levels. The cochlear implant centers and regular schools can tie up where in the child with cochlear implant is enrolled. Children with cochlear implants enrolled in regular schools can overcome the learning gaps faced in schools if they provided support technically as well as educationally. If the support is only technical and not educational, then there will be imbalance. Therefore, a multidisciplinary team approach with clarity in each professional's role and responsibility is important. As stated by Zupan and Dempsey (2013) collaborative efforts by parents as well as professionals would lead to sharing of responsibility in developing language and later reading skills and not taking things for granted for these children.

Even though the main aim of cochlear implantation is to promote spoken language but sometimes if the child is unable to progress just by listening from cochlear implants then support can be provided where in

child can make use of auditory-visual cues and also sign language, sign supports and cued speech so that language delays can be minimized to a large extent in these children. When Powers et al (1999) reviewed the literature he found the evidence that if deaf children are introduced to sign language to a little extent it will definitely does not have detrimental influence on achievements and will in fact be facilitative in learning process. In order to improve their Reading Comprehension, their visual literacy skills can also be improved by systematic instruction. That means these children have to be provided some kind of support visually also to enhance their understanding.

Parents also expressed their opinion about the point which decisively directs us to focus or question is on the quality of training which majority of these children in the study might have received. The present study emphasizes that it is not just amount or years of training or the type of training but quality in training is important for these children. And one of the best ways to get the quality in training is to provide training through evidence-based practices and accountability. It has been rightly pointed out by Swanwick and Marschark (2010) that if research is to focus on educational decision making, it should focus on evidence and not on convenience, potential application of research to practice is the need, and research most of the time would point out what deaf children cannot do but what is important to know for the practitioners is what helps deaf children and how they as practitioners can help deaf children to succeed based on the research knowledge.

The present study also highlights the importance of parental involvement in improving the child's performance. Parents expressed their need for help from multidisciplinary teams which can help them in making decisions for the child with cochlear implants and to help them in working for the child. Even sometimes when parents are ready to dedicate time and willing to do something for their child's progress, they do not know how to go about i.e., from where to start, how to make the child learn etc. Therefore, they need support and that support should be at different levels and different types according to the needs of the child and family. In order to improve the quality of life of children with cochlear implants, working together by all professionals along with the parents as well as children with cochlear implants is of paramount important.

CONCLUSION :

To conclude mostly, it is considered that once the child with hearing loss is implanted, the quality of life is improved for them. However, the present study from parent's perspectives highlights few concerns about their children who were implanted. Even though most of the parents expressed their happiness about their child's progress they also expressed

the need for the long-term maintenance of the device and technical support as well as the educational support for their children to reach to their full potential personally, technically, educationally, and socially. Parents expressed that none of their children with cochlear implants received any additional educational support from the regular schools together to provide meaningful, intentional language and literacy skills to children with cochlear implants from the very young age.

REFERENCES

Bones, C. & Diggory, S.(1999). An evaluation of one cochlear implant user's speech perception: with and without an FM system and lip-pattern in controlled background noise levels. Deafness and Education International,1(2),83-95.

Census of India.2011. Data on Disability. Available from: http;// www.lanugageindia.com/jan2014/disability india2011 data.pdf

Dempsey, M., Simões-Franklin, C., Walshe, P.,, Glynn, F., & Viani, L. (2021). A retrospective review of parents' perceptions of the impact of bilateral cochlear implants on their child's quality of life. Cochlear Implants International, 22(6), 303-310, DOI: 10.1080/ 14670100.2021.1935526

Geers, A. (2003). Predictors of Reading skill development in children with Early cochlear implantation. Ear & Hearing, 24, 59-68.

Geers A., Tobey A., Moog., Brenner C. (2008). Long term outcomes of cochlear implantation in the preschool years: from elementary grades to high school. International Journal of Audiology, 47:21-30.

Govaerts, P. (2002). Congenital Sensorineural hearing loss, a contribution to its detection, diagnosis and treatment. Antwerp, Belgium: University press.

Harris, M., & Terlektsi, E. (2011).Reading and spelling abilities of deaf adolescents with cochlear implants and hearing aids. Journal of Deaf Studies and Deaf Education, 16(1), 24-34. doi: 10.1093/deafed/ enq03.

Hendriksma, M., Bruijnzeel, H., Bezdjian, A., Kay-Rivest, E.,Daniel,j. S., & Topsakal, Vedat. (2020). Quality of life (QoL) evaluation of children using cochlear implants: agreement between pediatric and parent proxy- QoL reports. Cochlear Implants International, 21(6), 338-343, DOI:10.1080/14670100.2020.1788858.

Houston, D.M., Pisoni, D.B., Iler Kirk, K., Ying, E.A. & Miyamoto, R.T. (2003).Speech perception skills of infants following cochlear implantation. A first report. International Journal of Paediatric Otorhinolaryngology, 67, 479-495.

Jeyaraman, J. (2013). Practices in habilitation of pediatric recipients of cochlear implants in India: A survey. Cochlear Implant International,

14(1), 7-21. doi: 10. 1179/1754762812Y.0000000005.

Lederberg, R. A., Miller, M. E., Easterbrooks, R. S., & Connor, M. C. (2014). Foundations for literacy: An early literacy intervention for deaf and hard of hearing children. Journal ofDeaf Studies and Deaf Education, 19(4), 438-455. doi: .1093/deafed/enu022.

Lyxell B., Sahlen B., Wass M., Ibertsson T., Larsby B., Hallgren M., Maki-Torkko E. (2008). Cognitive development in children with cochlear implants: relations to reading and communication. International Journal of Audiology, 47:47-52.

Lyxell, B., Sahlen, B., Wass, M., Ibertsson, T., Larsby, B., Hallgren, M., & Maki-Torkko, E.(2008). Cognitive development in children with cochlear implants: Relations to reading and communication [Supplemental material]. International Journal of Audiology, 47(2), S47-S52.

Lyxell, B., Wass, M., Sahlén, B., Samuelsson, C., Asker-Árnason, L., Ibertsson, T., Mäki-Torkko, E., Larsby, B., & Hällgren, M. (2009).Cognitive development, reading and prosodic skills in children with cochlear implants.Scandinavian Journal of Psychology, 50, 463-474.

Mac Dougall, J. (2007).Review of DETA criteria for hearing impairment. Woolloongabbe, Queensland Government, Department of Education Training and Arts.

Mukari, S. , Ling, L. & Ghani, H. (2007).Educational performance of paediatric cochlear implant recipients in mainstream classes. International Journal of Paediatric Otorhinolaryngology, 71, 231-240.

Nidgundi, A. D., Lohith, U., Pascal, B., Dutt, S, C., & Dutt, S. N. (2018). A questionnaire-based analysis of parental perspectives on pediatric cochlear implant (CI) re/habilitation services: a pilot study from a developing CI service in India. Cochlear Implants International, 19(6), 338-349, DOI: 10.1080/14670100.2018.1489937.

Powers et al (1999). The educational achievements of deaf children: a literature review. Executive summary. Deafness and Education International,1(1), 1-9.

Pisoni, D. B., Kronenberger, W.. Conway, C. M., Horn, D. L., Karpicke, J. & Henning, S. (2008). Efficacy and Effectiveness of Cochlear implants in Deaf children. In: M. Marschark & P. Hauser, (Eds). Deaf Cognition: Foundations and Outcomes. New York: Oxford University Press.

Punch, R., & Hyde, M. (2010). Children with cochlear implants in Australia: Educational settings, supports, and outcomes. Journal ofDeaf Studies and Deaf Education, 15(4),405-421. doi: 10.1093/

deafed/enq019.
Richter, B., Eibele, S., Laszig, R. & Lohle, E. (2002). Receptive and Expressive Language skills of 106 children with a minimum of 2 years experience in hearing with a cochlear implant. International Journal of Paediatric Otorhinolaryngology, 64, 111-125.
Spencer, P.E. (2004). Individual differences in language performance after cochlear implantation at one to three years of age: Child, Family, and Linguistic factors. Journal of Deaf studies and Deaf Education, 9, 395-412.
Swanwick, R., & Marschark, M. (2010). Enhancing education for deaf children: Research into practice and back again. Deafness and Education International, 12(4), 217-235. doi: 10.1179/1557069X10Y.0000000002.
Vermeulen, A., Raeve, D.L., Langereis, M., & Snik, A. (2012).Changing realities in the classroom for hearing impaired children with cochlear implant.Deafness and Education International, 14(1), 36-47. doi: 10.1179/1557069X12Y.0000000004.
Wass, M., Ibertsson, T., Lyxell, B., Sahlen, B., Hallgren, M., Larsby, B., & Maki-Torkko, E. (2008). Cognitive and Linguistic skills in Swedish children with cochlear implants- of accuracy and latency as indicators of development. Scandinavian Journal of Psychology, 49, 559-576. doi: 10.1111/j.1467-9450.2008.00680.x.
Wass, M., Ibertsson, T., Lyxell, B., Sahlén, B., Hällgren, M., Larsby, B., & Mäki-Torkko, E. (2008).Cognitive and linguistic skills in Swedish children with cochlear implants - measures of accuracy and latency as indicators of development.Scandinavian Journal of Psychology, 49, 559-576.
Wass, M. (2009).Children with cochlear implants: Cognition and reading ability. Doctoral thesis.Linkoping University, Sweden.
Watson, L. (2002). The literacy development of children with cochlear implants at age seven.Deafness and Education International, 4(2), 84-98.
Zupan, B. & Dempsey, L. (2013). Facilitating Emergent Literacy skills in children with hearing loss. Deafness and Education International, 15(3), 130-148.doi: 10.1179/1557069X12Y.0000000018.

●

Interrogating Space, Communal Identity and Belongingness
A Critical Reading of 'The Platform' from Temsula Ao's *'The Tombstone in My Garden'*

Dr. Ram Bhawan Yadav*, Mr. Ghunato Neho**

Abstract : The present research paper attempts to examine and argue critically on a story titled as "The Platform" from the collection of the story ***The Tombstone in My Garden (2022)*** by Temsula Ao. The paper engages to articulate on the concept of the space, situating it in the binary context of of insider and outsider. The paper tries to problematise the concept of 'space' contextualizing it as a conflict of geographical zone largely populated and influenced by Hindu and Muslim inhabitants, closely associating it their quest for a common harmony, space where despite of various differences between these two communities they strife for the communal harmony apart from their distinctive and separate features of belongingness. The paper argues that indigeneity of Naga, their demand for separate identity is highly motivated for the political interest and have no strong ground of their own when collaborated with the issues of common masses. The paper raises the question of, identity, space and belongingness and attempts to bridge/normalize the prevailing tension particularly focusing on Hindu-Muslim communities.

Key words : space, belongingness, identity, culture, ideology, and communal harmony.

I

Is it possible to encapsulate a justified definition of identity in all aspects? Perhaps it is the most sought after question and each field of studies or disciplines holds different estimation. Whether the answer is glass half full or half empty, the subjectivity of defining and re-defining will never cease for identity is fluid, so to speak. Here, the purpose is not to wholly theorize or make it more abstract as it is already but to evaluate the existing ideas and approaches on identity issues that in literature which underpins the idealistic spirit of self and cultural significance.

A nose dive into pragmatic identity theory covers all the basic root comprehension of the term. The issue of identity is generally agreed that it was a part of traditional philosophy and logic which emerges from Freud to the theory of psychology. Gradually, based on his study, Erikson proposed that 'identity' was actually the clear or obscure answer to the question, 'Who am I?' In Erikson's theory of identity, identity is not only individual,

* Assistant Professor– Department of English, Sikkim University
** Research Scholar– Department of English, Sikkim University

but also collective and social. Identity is the difference, character and sense of belonging found in interpersonal interactions and interactions between groups (Erikson, 1994)

What has identity to do with literature? In the study of drama or other fiction, most professors of literature will ask his/her students to evaluate important characters which the plot revolves around. The conscious or unconscious methodology draws an analysis of the subject identifying with the others. At times, it is the narrative technique which allows the readers to understand the character deeply through monologues and soliloquy. In the context of this paper, the approach is inclined more towards the conflict of the social identity.

Ao makes an inquiry to the complex Naga identity for harmony by rationalizing the notion of 'oneness' and 'belongingness'. This work is of both political and social commentary on the multi-layered identity of Nagas since the colonial era and consequently Christianization that followed. She questions "Is the word Naga merely a political blanket term to designate the countless tribes living in a more or less contiguous territory of the country? What is the 'commonness' shared by these tribes that they have been bunched under this umbrella term? Is it a common language?"(98, The Naga Republic, 1998) She remarks that these answers are not to be found in "the geographical location of the tribes, racial traits and history; nor is it a common language that lies at the heart of this blanket identity." (76)

Ao proposes that "Only when we acknowledge these inalienable facts of geography, history and culture that have imposed this pseudo-homogeneity on us and accept the multifaceted identity that we share as a people, the 'complex fate' being a Naga will perhaps no longer be so 'complex!" (123) Ao attempts to negotiate history, culture and identity of Nagas with the current crisis: "The 'superficial' inherited system seems to have left the village folk far behind and there is an ever-widening gap between the haves and the have-nots. This is the real paradox of our existence as a people: the divide between the village and urban ethos." (203) The notion of 'belongingness' is also traditionally bound on the moral principles and individual's attachment to a village set up society. Ao is of the opinion that "though all the new money, political influence and modern life-style seem to reside in the urban areas, the real essence of our Naga-ness still remain in the heart of the land: the villages. To 'belong' in a village is the first requisite of an individual in building up the notion of identity as a Naga. To be banished from one's village for grave wrong-doing is the ultimate punishment and insult to a Naga male, rendering him a man without a country; he ceases to belong in the most basic unit of his existence with a recognized identity." (66)

An epistemological investigation to the existential identity of the Nagas must be drawn from the history of conflicts in the 60s and the following two decades. Any piece of narrative on this movement will be a catharsis of violence depicting a deep understanding of the human conditions. Colonialisation and trauma of violence for more than half a century became a backdrop in major writings of Temsula Ao, Sahitya Akademi winner. Ao in her works such as *These Hills Called Home* primarily represents how ordinary people who were caught in the cross fire eventually coped with the violence and started to re-negotiate power and force. It covers conflicting ideologies about simple village folks engaged in domestic relations and traditions while seeking emancipation from cultural and political repressions and on the other side, the emerging new class of Nagas who tried to identify themselves with the modern society. To surmise that 'Naga identity' is a homogenous nomenclature will be a misnomer to the sixteen different tribes of Nagaland. Each believes in their different narratives of origin with a distinct cultural practices and language through dialectical discourse. Her works opens up a space of the notion such as 'home', 'belongingness', nation, nationality and identity. She exposed their concern in manifold ways making existential reference to society as well as personal lives. Her creativity is in the history of time reflecting and longing for utopian world in spite of political and social instability. Ao fictionalizes the darkest decades of Naga history parallel to human experience through her collected stories. In one of her interviews, she expounded "That these stories are not about the protagonist but an idea and commentary on an evolving society's treatment of death and all attendant pomp and ostentation attached to it."(76)

Temsula Ao is a well-known writer from North-East India whose works earned her many accolades over the decades. She is an Indian English poet, scholar, novelist and ethnographer from Nagaland. Born in October 1945 in Jorhat, Assam, she grew amidst challenging circumstances. She attended Nagaland's oldest college, Fazl Ali College in Mokokchung and passed her BA with distinction. She obtained her M.A. in English from Gauhati University, Assam, and then completed her Post-Graduate Diploma in the Teaching of English from the Central Institute of English and Foreign Languages (now English and Foreign Languages University), Hyderabad, and her PhD from North-Eastern Hill University (NEHU), Shillong, Meghalaya.

She retired in 2010 as Professor, Department of English, and also as Dean of the School of Humanities and Education at North Eastern Hill University, Shillong, where she had been teaching since 1975. From 1992-97 she served as Director, North East Zone Cultural Centre, Dimapur on Deputation from NEHU, and was Fulbright Fellow to University of

Minnesota, 1985-86. She is widely respected as one of the major literary voices in English to emerge from North East India along with Mitra Phukan and Mamang Dai. She is the recipient of the Governor's Gold Medal 2009 from the government of Meghalaya.

She received the prestigious 'Sahitya Akademi Award' in 2013 for her collection of short stories 'Laburnum for My Head'. She writes poetry and short stories. Her works have been translated into German, French, Assamese, Bengali and Hindi. Her first book of poems was published in 1988 - *Songs that Tell*, while she was into teaching job and fully busy looking after her four children as a single parent. So whatever time was left, she dedicated to writing. But slowly she established herself as one of the finest Indian writers, both prose and poetry in English. In between 1988 and 2007, she published 5 poetry collections, and interestingly the titles of all these works begin with the word, 'Songs'. Her published poetry works include - Songs that Tell (1988), Songs that Try to Say (1992), Songs of Many Moods (1995), Songs from Here and There (2003) and Songs from the Other Life (2007). Her early works have been published in Kolkata, and then in Pune. Temsula Ao has published two short story collections-*These Hills Called Home: Stories from the War Zone* and *Laburnum for my Head* and several other prose works. In 1989, she published Henry James' *Quest for an Ideal Heroine*, a book of literary criticism. Her latest works to her collection is *Tombstone in My Garden* published in 2022.

II

The dominant central themes of Temsula Ao's writing are based on the tangible reality of human experience with a well-motivated attention to present a kaleidoscopic view/ picture of contemporary Naga society. If not political, the narratives tend to direct its motive to edify the actions and events of ordinary folks in an existential conundrum. However, drawing the themes of her fictions into one subject matter, concluding from the familiarities, is simply inadequate to the vast questions within and outside of the corpus of her writings. The transitions in characters are brought into realisation through the process of 'individuation'. Here, he/she become aware of the self and the surroundings and battles for recognition conditioned by circumstances and conventions in a space they try to attach closely called 'village'.

This paper is to give a critical overview of Ao's new book *Tombstone in my Garden* (2022) since numerous research works has already been done on her previous short stories collections. For any book lover, it is imperative to read these stories first for appreciation of her art and look further into such evaluations because it is the summative interpretation of the work and subjective prospect in some cases will be overwhelming.

Examining the stories demand, an insight into realistic

characterisation, it appears to be in continuity of her earlier writings on the conflicted 'warzone 'affected state of Nagaland'. The recurrence and the patterning of experiences are conspicuously presented from the 60s to 80s yet again in a nostalgic setting through her art of storytelling. It is suspicious of realistic characterisation and not far from the existing conflict in ideologies. This time, the narrative is about an ordinary porter/ 'coolie' named Nandu whose dedication to his profession earned him a reputation indispensable to the passengers at Dimapur Railway Station. His proficiency in local dialects provided a sense of security and his fairness in negotiations made him 'the most-after porter' among the travellers in the story titled "The Platform". Nandu is the first non- Naga character created by Ao in her fiction. The evident theme is to question who the 'outsider' is and the 'common identification' profiled according to the colour of their skin and occupation. It was during the 1960s when Dimapur witnessed the emerging growth of population of those 'outsiders' like him but belonging to other 'group of people' known as 'Bangladeshis'. In the beginning of their first settlement, they started their jobs as menial labourers but gradually captured the retail market and other domestic businesses. The economy was flourishing among the new entrepreneurs and so was their population. The 'local politicians' saw this as an opportunity who also used them for 'sizeable vote-bank'. Nandu was precautious of such repercussions as he knew since they did not belong to the place; there were possibilities of 'forcible eviction' that is why he chose to take shelter under the patronage of 'powerful Marwari business community'. This functioning of organised but economically divided groups of people falls under the periphery of Marx's 'economic base' and so the ideology of separatism was rooted itself among the 'primary determinants. The monopoly of economy enhanced by power was downplayed during the colonial times as the writer puts it:

Their entry into Nagaland and residence…had a different historical background. Many big-time Marwari businessman were descendants of those who were allowed to trade in the erstwhile Naga Hills District by the British, and therefore their community even those who came later to join their ranks was deemed to be more 'indigenous' than these relatively new entrants into the state. (176, The Naga Republic)

Tensions brewing in communal incongruence among the 'outsiders' were to make matter worse for the protagonist and the causation of this hostility was rooted in their religious identity- 'Hindu-Bihari' and 'Bangladeshi-Mussalman'. The characters in the "Platform" are caught in this communal conflict based on religion. The story takes a turn into violence when the boy named Ajay who was adopted by Nandu gets murdered because of his identity as a 'Mussalman'. The tension between

two religious communities has always been a contest seeded by the colonizers during pre-independent India. To go further into understanding base of this conflict, it is pertinent to read into the historical and current analyses of the two communities and how they have coexisted. Critics vest more interest into large scale violence –riots from political, social and economic perspectives. Shashi Tharoor has exemplified the same results of this analogy from Ashutosh Varshney's *Ethnic Conflict and Civil Life: Hindus and Muslims in India.* (35) The premise of Tharoor's reading was how the scholar/ professor from University of Michigan deduced the factors of riots in three different Indian cities in pairs- Aligarh and Calicut (Kozhikode); Hyderabad and Lucknow; Ahmedabad and Surat. In this demographic study, active social activities enhanced closer communal harmony in some cities and hence lower riots despite of having similar population ratio. Tharoor further highlights the work by summarizing the factors they (both communities in Aligarh)-

"…engage with each other in strong associational forms of civic life, from political parties and non-religious movements for social justice or land reform, to trade unions and business groups. In Calicut, caste was a more important divider than religion, whereas in Aligarh much of Muslim civic life took place within the Muslim community." (Tharoor, Personal Website).

Similar pattern of social life and disharmony was found in the early 1960s and 1970s even at the fringes of vast country. Dimapur was one such commercial hub growing into cosmopolitan city and it provided opportunities for new entrepreneurs from all walks of life. The city presents a miniature world of conflict-driven groups of people who could not escape the communal violence. Like other towns and its suburbs in post-independent India, the grunts and hatred were still felt among these two religious' groups; a policy machinated by the British to rule India without unified resistance which eventually led to the partition of the nation.

The protagonist Nandu suffers from ineludible guilty for adopting the boy and giving him a new identity which the 'society' rejected it as a betrayal and murdered him. Ajay whose real name was Ajmal knew about his identity as a mussalman and therefore as warned by his foster father kept his distance from the people around him until one day, he was lured by a pimp named Shankar into the brothel and forced him to undress. The revelation of the boy's circumcision was looked upon with contempt and the prostitute astonishingly ran out of the house cursing her pimp "Oye, you badmash, you brought me a Mussalman, you crazy dog."(17) After this incident, it was evident that it was Shankar who murdered Ajay by hanging him at the platform. To add an insult, the murderer used victim's dhoti to hang him by the neck leaving the bare body dangling so to justify and

shame the dead for his betrayal.

The author ends the tragic story of Ajay (Ajmal) by giving him a 'proper' burial and calling it as the last ritual justified according to his "true religious affinity." (20). This indoctrination was the problem to begin with. Humans are not born into any religion or beliefs but forced given by parents. However, it can be overlooked to the fact that religion is practised as a natural process and hence the consent or right to choose one is denied at the early age. Nandu also felt the need to hide this 'natural' and indoctrinated identity of the boy giving him a new life as a Bihari-Hindu but failed to do so. This cost him the death of his son as it was irreversible to the reality that the boy was already circumcised and for him to be accepted was impractical at this point.

Society and its culture have always adhered closely to religion-based identity which can only be understood through dialogic interpretations. Theoretical exploration helps in mapping the structural forms through history and human behaviour but the rhetoric involved in such complex narratives tend to move towards the wave of politically and economically motivated aspects. Ao is not the first to write on themes of religious violence. Jewish writers in India like Sheela Rohekar and Nissim Ezekiel raised an issue on identity and community. The later is popularly known as the father of modern Indian poetry. He made attempts to bring the consciousness of the post-independent India into urban spirit. The subject of love and sexuality for him was to thwart away from objectifications as he did on superstitious practices but Rohekar's works on the theme of love was eclipsed by communal violence. Her fiction *Tâvîz* (The Amulet) explored the tragedies in identity conflicts between Hindu and Muslim aftermath of Indian independence. A study by H W Wessler on similar in an article titled "Who am I?" : On the narrativity of identity and violence in Sheila Rohekar's novel *Tâvîz*" explains how the ambition for 'modern nationalism' turned a failure with the partition of India based on religion and the "collective religious identity"(50) ignored the ideals of secularism. *Tâvîz*, a Hindu fiction revolves around a character named Reva, who despite of the existing interdictions, decided to marry a Muslim doctor named Anvar. Tragedy befalls on their family during the communal riot in Ahmedabad in 1969. Her husband is murdered by rioters disguised as hospital staff in pretext of emergency. Reva remarries to another Hindu man and unlike her previous love bond, the domestic affairs were unsettling and her husband, a widower's discrimination to Annu (Anant) further led to rebellious outburst. As a product of this dysfunctional family, the boy lost in chaotic identity crisis began to participate in anti-Muslim activities which led to his tragic death. The similarity between the two stories of Ao and Rohekar lies on the continual violence which shook the

nation during the 60s. Such narratives are about the untold stories; of love in times of bloodshed and how the communal hatred and senseless killings ended those lives like they never existed. Wessler puts it,

While Revâ's love relationship and marriage with Anvar is a symbolic act of transcending the borders of religious communities, the brutal murder of her husband, her son, and herself reveal the structure of a society which is threatened, when walls between communities are disrespected and borders transgressed. (52)

Similar to the tragedy of Ajay (Ajmal) in "The Platform", the reaction of the confederates when realising that the victims are circumcised felt that they were betrayed and their beliefs polluted. In Taviz, the later part of the plot on the life and death of Reva's son Annu who dissociates himself from his family gets killed in the agitation of 1990 while participating in a riot on one of the most controversial cases of Babri Masjid. The revelation of this aftermath thickens the plot as during the cremation of the fellow fallen comrade, his confederates discover that Annu was circumcised. In disbelief, they utter scornfully "*... iskî to kamî huî hai! ... musallâ hai sâlâ! Bhencod yahâC kyâ kar rahâ thâ*?–(His is cut away!…this damn Mussulman! What has this sisterfucker lost here?) (qtd.in. Wessler. 53) The immediate stripping of identity despite of sacrificing oneself presents the naked reality in communal conflicts. Disregarding all circumstances directing the victim's lives in the stories, they were considered to be tricksters and impersonators crossing the line of cultural and communal boundaries.

The unsuppressed violence and conflicts in ideologies shaped the country even after independence in 1947, the repercussions of the movement to oust the colonial power shifted to communal identity of belongingness. Unfortunate events like that of Babri Masjid case not just ignited violence between the two communities in Ayodhya but it created waves of conflicts across the nation. Shankar's reaction when he sees circumcised Ajay (Ajmal) is no different to what the comrades expressed in the same situation in *Tâvîz*. Religious identities remain dormant allowing both communities to exist peacefully but quickly escalate to violence when there is a 'transgression' of the boundary.

References and Bibliography:

Ao, T. *The Tombstone in My Garden*. Speaking Tiger Books, 2022. Print
Ao, T. *These Hills Called Home: Stories from a War Zone*. Zubaan, 2005. Print

Ao, Temsula. "Heritage."Muse India. Muse India, n.d. Web. 1 August 2015.

—. "Temsula Ao Recommends." NElitreview. Nelitreview, 2011. Web. 3 Aug. 2015.

"On Being a Naga by Temsula Ao – THE NAGA REPUBLIC." *THE*

NAGA REPUBLIC, 16 Jan. 2018, www.thenagarepublic.com/discourse/naga-temsula-ao/.

Print, Thumb. *The Thumb Print – A Magazine from the East*, www.thethumbprintmag.com/temsula-ao-talks-about-her-life-books-and-society/.

Dikshit, Jutta K., and K. R. Dikshit. *North-East India. Land, People and Economy*.

Dordrecht: Springer Dordrecht, 2014. Print.

Eagleton, Terry. *Literary Theory: An Introduction*. Minneapolis: U of Minnesota, 1983. Print.

Herz, Judith Scherer. *A Passage to India: Nation and Narration*. Twayne Publishers,

1993.Print

"Narrative Research - Analysis of Qualitative Data - Design & Method." *Atlas.ti*, atlasti.com/narrative-research/.

Sema, Hokishe. *Emergence of Nagaland: Socio-economic and Political Transformation and*

the Future. New Delhi: Vikas Pub. House, 1986. Print.

Wessler, Heinz Werner. ""who Am I?" : On the Narrativity of Identity and Violence in Sheila ..." *Orientalia Suecana LX*. 2011. Web. 9 June 2022.

Dr. Shashi Tharoor's Official Website. Web. 9 June 2022.

Tyson, Lois. *Critical Theory Today: A User-friendly Guide*. New York: Garland Pub., 1999.

www.pdfdrive.net/the-portrayal-of-violence-in-the-writings-of-temsula-ao-d40561767.html.

●

Socio-Economic Status of Muslim Women : An Analysis

Dr. Kiran Bala*, Mrs. Shagufta Parveen**

Abstract : The changes are occurring in the status of women in the world and it has emerged from time to time in a new context with new ideologies. Understanding the complex patriarchal behaviour and values in the contemporary scenario is necessary because even today the situation of women is a matter of concern. The older the subject appears, the more changing are taking place in the context, that is why it is becoming more important to analyse it. Is the expected that the change and improvement in the status of women despite all efforts, they are still facing violence, abuse, gender inequality, and discrimination in income and employment opportunities. Along with this, the existence of a woman is determined by adapting various religious beliefs in the framework of values belief, based on which there is a difference in the socio-economic status of women in different religious communities. Orthodox communities uphold the low position of women as a symbol of religious and cultural identity.

In this research paper, the survey method has been used to analyse the socio-economic status of Muslim women. To collect the primary facts from the interview schedule with 100 Muslim women through random sampling and analysis based on the facts obtained.

Key Words : Women, Socio-Economic Status, Religious Beliefs, Gender Inequality

Introduction : Half of the world's population is facing discrimination even in this modern epoch. Women face gender inequality, discrimination, abuse, and violence at various levels in different regions. Due to this their participation in the socio-economic sector is widely affected. Based on education, income, employment, decision-making ability, etc the position of women is still lower than the men.

The position of women in India is not always considered as equal but It has been changing from time to time. There have been many ups and downs in the status of women from the Vedic era to the modern period, and there have been corresponding changes in their human rights. The situation was strong in the Vedic era, women's was respected in the family and society. There was a right to equality in property, women had a dignified place in the Vedic period and the later Vedic period. The condition of women in India started declining from the later Vedic period. In a way, during the Mughal rule, the condition of women was pathetic and they were seen as a means of enjoyment and entertainment. Various social evils like

* Associate Professor– Sociology, SSDPC Girls PG College, Roorkee, U.K.
** Research Scholar– HNBGU Srinagar (Garhwal), U.K.

child marriage, purdah, illiteracy, etc. entered the society which made the status of women much more inferior.

The period of the revival of women starts in the British period. During British rule, many direct and indirect improvements were made in the lives of women over 200 years. After independence, many welfare schemes and developmental programs were conducted by the government to improve the social, economic and educational status of women and to include them in the mainstream of development. People's power has special significance for any country. It includes both men and women. It is an essential condition for women to be included in the development of any country. Pandit Jawaharlal Nehru said that the progress of any country can be evaluated from the position of the women of that country. On the same basis, the Indian Constitution provides equal rights for all citizens without gender discrimination[1]. Article 15 of Part-3 of the Constitution states that the state along with any of its citizens, irrespective of religion, caste, sex, race, and place of birth or on any of these grounds will not be discriminated but the real fact is that the women face inequality and discrimination in education, health, social and economic and they get lower status than men, this low status of women is not only seen in their work but also in the consumption of resources, decisive role, and also reflected in participation. It has been observed that the situation of Muslim women is much worse than the others minority women. The main reason for the plight of women is illiteracy. Poverty, religious bigotry, fear of community and lack of awareness. These reasons adversely affected their socio-economic status. Religion plays an important role in shaping the culture. The prevalence of gender can be seen in different religion. When Mohammed Saheb laid the foundation of the religion of Islam, before this, the Arab people followed the Arabic society, there was an era of barbarism in Arabic society. There was no permanent state rule in Mecca, no stability in marital relations and polytheism was prevalent. According to AnniBesant - It was the Hell of Man, which had an empire of longing, sex, murder, and crimes[2]. To know the social status of Muslim women, we need to mention their status in ancient Arabic society and modern Arabic society. The social status of Muslim women is changing from time to time. Along with this, there is a lot of difference between theory and practice in their situation. Mohammad Saheb was in favour of improving the condition of women. He was opposed to polyandry and girl slaughter. He tried to improve the condition of women, yet wanted to give a limited amount of freedom to women. Due to his efforts, women got many religious and social rights. Muslim women, under the command of their husbands, could offer Namaz in public places and could also visit mosques. The Muslim widow was also given the right to remarriage and divorce for women, which improved their

situation[3]. Kapadia has written - "In Islam, by limiting the number of wives to four, condemning girl child murder, giving women a way of liberty, declaring Meher as a bridegroom's gift, and making the law of segregation favourable to women has made improvement in women's situation[4].

Yet due to the prevalence of the purdah system and lack of education, women have joined very little in politics and public life. Due to polyandry and economic dependence, their position in practice is not good, although in legal terms they have been given many rights. The Quran symbolizes that in the Muslim religion, it is considered bad to reach any form of oppression, torture, and sorrow for a woman. Ruku-3 states - "O Imana walo: You do not believe that women should be taken as the servitude and they should forcefully occupy them." On this basis, the social status of Muslim women in Muslim religious texts was strong[5]. The biggest problem in Muslim society today is illiteracy, conservatism, and fundamentalism, which have always created obstacles for the people of this community to move forward and has proved to be the biggest hindrance in their progress. Religious education is received from the family but modern education is not given to them. This is the reason why a lack of social consciousness is seen in them. Muslim society is poor due to overpopulation. They are unable to give higher education to their children. The feeling of standing on their feet is less common among Muslim women. The status of Muslim women of elite religious families had improved a lot, they could participate in politics and administrative work, but all the Muslim women had to follow the purdah[6]. But there was no improvement in situation of women that belonged to poor Muslim families. Along with that, the marriage institution has developed in the society as well as the religious beliefs have also emerged. Marriage in the Muslim religion is an agreement between men and women, the purpose is to use the family wealth and to give birth to children and to give them a valid form, 'Nikah' is a contract through a work of worship[7].

Traditionally, according to Islamic rules, one can terminate the marriage agreement and can easily take divorce. The triple talaq is a lengthy process in the Quran that is complicated enough to prevent people from using it easily. Some people started using it for their benefit. Tripal talaq speaking together made the lives of women more darker. Even in the modern era, women are struggling with the problem of triple talaq and as a result from the past twenty years the struggle of Muslim women were noticed, now the "Muslim Women (Protection of Marriage Rights) Act 2019 has been implemented, in which the Talaq-e-Biddat is considered illegal. Also, the accused husband has been given a provision of three years in jail, alimony, etc. At the request of the victim woman, the magistrate can also allow the settlement[8]. The practice of 'khul' was practiced in the ancient Arabic system, according to which, the father can also get his girl

independent from husband by returning the price (Sadak) he gets in his daughter's marriage, later Mehar replaced Sadak, then the rights of men increased in the area of divorce[9].

Martin Luther King Jr. said in his book "Stride toward Freedom" that in modern progressive society, any practice deprives a person of fundamental rights like equality and freedom, then society should be freed in time, otherwise, this practice will transform a progressive society into a backward society[10]**.** The reason for Muslim women being backwards in the race for development is because of their lack of education. The aim of education in the Muslim era has been mainly religious, in which school education was started with vocal knowledge and logical knowledge was also studied[11]. In the Muslim minority community, although the sex ratio is higher than Hindus but the level of education in women is low. The main reason is because of religious beliefs, rituals, and weak social, economic and educational background. The Sachar Committee has acknowledged that illiteracy and poverty are high in the Muslim community. According to 2011 data, the percentage of illiteracy in the Muslim community was 42.72 percent, of which 23.45 percent was women and only 1.75 percent was highly educated[12]**.**

Education is the only means that can develop the women of Muslim community and to build confidence and as well as uplift them by increasing their participation in every social, economic, political area, which will not only empower them but also the other problems of the Muslim community Such as poverty, gender inequality, health, education in the field of backwardness is also helpful in solving the problem.

Objectives of the study -

1. To study the social status of Muslim women.
2. To analyze the economic status of women in Muslim society.

Study method - The present study is based on the survey method. The total Muslim female population in Roorkee city is 20,212 are Muslim women. Out of these, 100 women respondents were selected by Random sampling. Primary and secondary sources were used to compile facts. From the primary sources, facts were collected based on the interview schedule and observation and analyzed based on the facts obtained.

Analysis: -

Educational Status of Muslim Women - A woman's education has a multifaceted effect on the development of the nation. Especially depending on the prevailing division of labour in India, the health of children depends on the work of women, so well-educated women in this field can achieve more success by making full use of their potential[13]**.**

Table N. 01
Educational Status of Muslim Women

S.N	Educational status	percentage
1.	Illiterate	36
2.	5th	26
3.	8th	8
4.	10th	4
5.	12th	8
6.	U.G	4
7.	P.G	14
	Total	**100**

It is clear from the above table that 36 percent of the women are illiterate and 26 percent of women are 5th pass and 8 percent are 8th pass and 4 percent are 10th pass. Only 8 percent of women are 12th pass among the Muslim women and 4 percent are graduates and 14 percent are postgraduates.

Muslim women*s own Occupational Status -

Occupation in social stratification also determines the status of the individual. Mostly in societies, some occupations are rated high and some occupations are rated low. The status of women in society is low. She is powerless, deprived of development, suffers from poverty, and is exploited by patriarchy. Neither has the mutual system been able to give women equal participation in the policymaking process nor has it ensured their interest in local programs in the development plan[14].

In the study presented, an attempt has been made to know the occupational status of Muslim women themselves. It is known from Table No. 2 that 2 percent of women are employed in government jobs and 10 percent of women work in private jobs, while the other 6 percent of women are self-employed, out of which some women do the business of tailoring, dairy, etc. and 82 percent women are housewives.

Table N. 02
Muslim women own occupational status

S.N	Occupational Status	Percentage
1	Government jobs	2
2	Private jobs	10
3	Self-employed	6
4	Housewives	82
	Total	**100**

Income of Muslim Women - Income is the major determinant factor of socioeconomic status. Without economic development, social

development is also not possible. Income is most important for a person to fulfill the basic needs and to live, because income determines the standard of living, health, and adequate food. The monthly income of women is analyzed in this study.

Table N. 03 Income of Muslim Women

S.N	Monthly Income	Percentage
1	No income	78
2	Less than 5000	4
3	5 -15000	12
4	15 -25000	2
5	25 - 35000	2
6	35- 45000	2
	Total	**100**

From the table number 3 above, can be seen that 78 percent of women have no income of their own, 4 percent of women have monthly income less than 5000 and 12 perent of women have income between 5000-15,000 and 2 percent of women have monthly income of 15000-25,000. The income of 2 percent of women is 25000-35,000 and the monthly income of 2 percent of women is 35000-45,000.

Family Occupation of Muslim Women - According to Karl Marx, society can be divided into various levels only on an economic basis. Business legalization has affected the institutions of family and caste in economic development[15]. In modern society, the occupation itself determines the socio-economic background of an individual. The economic condition of the Muslim community is pathetic compared to the others and according to the study, poverty is the means of a high standard[16]. As a result of inefficiency, they are compelled to do petty work.

Table N. 04 : Family Occupation of Muslim Women

S.N	Occupation	Percentage
1	Self-employed	20
2	Government job	10
3	Private job	56
4	Cottage industry	4
5	Other	10
	Total	**100**

From table number 4 above, it is known that 20 percent of women's family occupation is self-employed and 10 percent of women's family occupation is in government job and 56 percent of women's family occupation is in private job. 4 per cent Women*s family occupation drives livelihood from cottage industry and 10% Women*s family occupation such as driving, shoplifting, etc.

Patriarchal System, the Factor of the Low Status of Muslim Women

The biggest victim of patriarchal politics has been the Muslim women of the country. Due to the dominance of conservative economic groups, the voice of Muslim women was always suppressed, due to which she has been deprived of constitutional rights. The patriarchal society itself determines the policy, basis, and disabilities. Where women mostly have no role in decision making, they are limited to four walls of the house. Visiting religious places imposes notions of prohibition, not from any religion, but patriarchy. It is not written anywhere in religion[17].

Table N. 05

Factor of the low Status of Muslim Women

S.N	Patriarchal system	Percentage
1	Fully agree	2
2	Agree	40
3	Unsure	30
4	Disagree	18
5	Strongly Disagree	10
	Total	**100**

From the table number 5 above, it is known that 2 percent of Muslim women fully agree on the low status of women is the patriarchal system and 40 percent of Muslim women agree, 30 percent Muslim women are unsure of the patriarchal system and 18 percent of Muslim women disagree with this system and 10 percent of Muslim women strongly disagree with this.

Consent from Social Evils-

Today a large section of Muslim women is struggling with various religious evils and superstitions like Triple talaq, circumcision, purdah, halala and polygamous marriage. Fatwas are issued by religious leaders in the name of Islamic law for women fighting against these evils.

Table N. 06 : Consent from Social Evils

S.N	Consent	Percentage
1	Fully agree	32
2	Agree	48
3	Unsure	04
4	Disagree	12
5	Completely disagree	04
	Total	**100**

From table 06 above, 32 percent of the women fully agree with the evils prevailing in the society and 48 percent of the women agree, 4 percent of Women are unsure of this and 12 percent of women disagree with this

and 4 percent of women completely disagree.

Common Civil Code - The demand for uniform law and order for all citizens of India under the Common Civil Code has been raised from time to time because women feel insecure in the absence of such a law. Therefore, women's views on this subject are explained in the following table.

Table N. 07 : Common Civil Code

S.N	Common Civil Code	Percentage
1	Fully agree	12
2	Agree	20
3	Unsure	24
4	Disagree	40
5	Disagree completely	04
	Total	**100**

From the above table number 07, 12 percent of the women fully agree to the implementation of the Common Civil Code and 20 percent of the women agree to it, 24 percent of women are unsure, 40 percent of women disagree and 4 percent of women disagree completely.

Social Evils are a Violation of the Fundamental Right -

In the Indian democratic system, without gender and religious discrimination, all the basic rights have been given to all citizens. Religious disabilities prescribed for women deny fundamental rights like equality and freedom provided by the constitution.

Table N. 08 : Violation of the Fundamental Right

S.N	Social evils	Percentage
1	Agree	40
2	Fully agree	14
3	Unsure	24
4	Disagree	18
5	Disagree completely	04
	Total	**100**

It is clear from the above table number 08 that 40 percent of the women fully agree that social malpractices are a violation of fundamental rights and 14 percent of the women are fully agreed, 24 percent of women are unsure of this information and 18 percent of women disagree with it and 4 percent women disagree completely.

Conclusions and Suggestions - Maximum Muslim women are still uneducated and 26 per cent of women are 5th pass. 82 per cent of Muslim women are housewives and 10 per cent of women work in private jobs. 78 per cent of women have no business of their own. 40 per cent of Women consider the patriarchal system as a factor in the low status women. 48 per cent of Muslim women agree with the evils prevailing in society. 40 per

cent of Women disagree with the implementation of the Common Civil Code. 40 per cent of Women believe that social malpractices violate the rights of Muslim women.

Therefore, it can be said that the socio-economic status of Muslim women is low, due to which most of the women are uneducated. Lack of awareness is found due to a lack of access to education. As a result, they are not even aware of their fundamental rights and are forced to live in inhuman conditions of poverty and exploitation. Due to ignorance, they also consider social evils to be considered a part of religious tradition, and their status gets lower. Among these women to increase the level of self-assessment and confidence, the level of education will have to be increased, so that many problems will be solved automatically. Skill training and awareness program based on science and technology is necessary to make Muslim women economically independent. Only better-quality education will pave the way for their liberation and positive changes in their socio-economic condition.

References

1. Sharma Gotesh, 2008 "Dharm Ke Naam par", Rajkamal Prakashan, Nayi Delhi, pp. 65-66
2. Maududi, M.S.A., 1965 "The Meaning of the Quran", Vo-1, Markazi, Maktaba Islami, Delhi
3. Singh, Dr. Sanjay Kumar, 2017 "Research Magama" An International Multidisciplinary General, Volume-1, Issue-IX November, pp-3
4. Ibid pp.- 9
5. Dr. Radhesharan, 2000 "Madhyakalin Bharat ka Samajik Aarthik Itihaas", Madhya Pradesh Hindi Granth Academy, Bhopal, pp.-90
6. Ibid
7. Ahuja Ram, 2011, "Bhartiya Samaj", Rawat Publication, Jaipur, pp-111
8. https://hindi:-webduniya.com
9. Agrawal, G.K. 2011, - "Bharat Mein Samaj", SBPD Publications Agra, pp.121
10. Sharma, Dr. Mamta, 2018 - "Bhartiya Muslim Mahilawo ke Sashaktikaran mein Teen Talaq ek Avrodh", (ed), Teen talaq ek samajik avam rajnetic vimarsh, Prashant Publishing House, Delhi, pp.-39
11. Ahuja Ram, Ahuja Mukesh, 2008 "Samajshastra Vivechana avam Pariprakshya", Rawat Publications, Jaipur, pp.-397
12. Moumita Hazra (India Census report 2011), An overview of the Educational Status of Muslim Women in India, International Journal of Innovative Studies, in Sociology and Humanities, Vol. 3 issue 6, pp.-42
13. Sen Amartya, Jean Dreze, 2007 "Bharat Vikas ki Dishaye", Rajpal & Sons, Delhi, pp.-162
14. Viswal Tapan, 2011, "Manvadhikar Gender avam Paryavaran", Viva Book Private Limited, New Delhi, pp.-237
15. Rajeev P.B. "Essay on Modern India", 2001, pp.-11
16. Shaista Praveen, Baudai Himanshu, 2018, Bhartiya Prajatantra mein Muslim Mahilawo ki Sahbhagita ke Samakch Chunotiya avam Sujhav, Bhartiya Rajniti Vigyan Shodh Patrika, vol. n.9, July-Dec., pp.- 643
17. https://legendnews.in/Muslim-Women-are-the-biggest-victims of patriarchy.

Adopting Alternative Disputes Resolution for Resolving Copyright Infringement Disputes : An 'Adequate' Remedy

Gururaj Devarhubli*

Introduction : India has a Trade Related Aspects Intellectual Property Rights (TRIPS), compliant, strong equitable, and dynamic IPR regime. IPR results in an increase in creativity and innovation, advancements in science and technology, and art, culture and traditional knowledge, among other things.

Innovation is a key factor in sustainable growth and economic prosperity. Businesses are able to benefit from technological innovation and remain competitive by being innovative and creative. Many businesses invest huge sums in research and development, as well as in marketing and advertising their products. If they cannot recoup their investment, this investment is not recommended. Effective and appropriate protection of intellectual property (IP), is key to establishing the trust of creators, inventors, businesses and other creators.

IPRs are intangible and incorporeal rights. They have become the most important rights and are of more value than tangible property rights. They play a significant role in order to protect and providing due recognition to one's efforts. One of the old maxims says "*Thou shall not steal"* is the fundamental principle of concern in the area of IP which laws seek to enforce if violated or infringed (Macauley, 2007).

Copyright is a form of IP which seeks to protect the original work of artists covering various fields like music, literature, and movies. In the process, it seeks to help the artist to benefit commercially from their piece of artistic work (Cornish and Llewelyn, 2013).

Copyright generally protects the expression of ideas. That is to say, copyright protection extends to a specific work but cannot be applied to the ideas. Copyrights are a favorite when it comes to IPRs which favor the interests of a very large group in public policy making. The difference between copyright and other IP rights like Patents and Trademarks is that Copyright not only protects the rights of the creator but also the expression of ideas. Expression of the ideas includes musical compositions, lyrics, and literary works. Likewise, when software is viewed in its basic form, it is a binary code, but it is also a literary work of its kind. Copyright is particularly important for two reasons: first because they are close to every individual's life and day-to-day dealings. Secondly, in order to obtain copyright, there is no need to go through unnecessary formalities as it comes into existence

* Assistant Professor of Law– Institute of Law, Nirma University

automatically as soon as a piece of work is created. Copyright is of a very versatile nature and has worldwide recognition. If there is a laxity in the enforcement of copyrights, there is a real chance that the artist loses the incentive to work (Bender and Wang, 2009). Enforcement of copyright needs a serious approach due to various reasons. Firstly, the recipients of the money proceeds also suffer from an incentive problem of a different type. As the money earned or saved from such activities is not backed by a corresponding supply of work, such earnings are more likely to go into activities that do not maximize social benefit (Ashutosh Mishra, 2016). Secondly, it is causing a threat to creation. Thirdly, it is hampering the psychology of the creator. Fourthly, Technological progress has made the reproduction of copyright material very easy.

Thus, copyrights need to be protected. However, with the advent of globalization, the issues relating to Copyright enforcement have become more complex and this is because Copyright protection has assumed international dimensions. On the one hand, Copyrights benefit the national economy by increasing employment and accounting for a considerable part of government revenue in the form of Excise duty, Income tax, and so on. According to The Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry, 5% of India's total annual GDP comes from the entertainment industry according to a report by FICCI. The menace of piracy besides decreasing this income potential also leads to the creation of the black economy which is used to fund illegal activities in the country. If we consider the issue of Copyright infringement, a simple example will be making a copy of a document or a piece of work. A wholesome definition of 'infringing copy' is provided in Section 2(m) of the Act. Section 53 of the Act and Rule 79 of the Copyright Rules, 2013, also deal with infringing copies.

The presence of infringement includes a cross-section of artistic works including literary work, computer software, sound recording and films, and so on. In India, the extent of piracy can be understood from the fact that Indian online users downloaded 6.5% of *BitTorrents*, as reported by the Motion Pictures Distributors' Association (MPDA).

Having said this and with the presence of all legal provisions in place, we have to admit that the actual implementation/enforcement of copyrights faces various challenges like:

- The common perception that Copyright infringement is a minor offense has not changed over the years. Greater awareness regarding the gravity of this offense needs to be generated.
- The law enforcement agencies do not retain proper records regarding habitual offenders which hampers effective Copyright enforcement.

- The Copyright Act is complex to such an extent that even Police are not acquainted with the details of the Copyright law which makes enforcement all the more difficult.

Copyright enforcement is a complicated process that involves many interlinkages. We need to have first-hand knowledge about the enforcement process in order to fully appreciate these interlinkages. Global entertainment industry is facing significant problems due to piracy and counterfeiting. It is detrimental to a functioning economy if counterfeiting or piracy are present. Getting on to the core issue of how the Indian Judiciary and legal system are on a large scale to secure the area of Copyrights, it is worth citing the classic example of the Hon'ble Supreme Court barring *'Prasar Bharti'* from the free telecast of international cricket matches" India is the world's largest Copyright producer and also the biggest victim of Copyright violations; that's why it is the need of the hour to come up with innovative means in order to counter this menace of IPR violations.

Copyrights and related areas also need to be viewed in a cultural frame because culture has a very vital role to play as it is the interest of the society and its individuals which are at stake. Given the broad scale of the Copyright subject and in order to have deep insight and knowledge about it, it is very vital to understand the geopolitical dimensions in which it operates. In order to appreciate the virtual laws, the organic application of law needs to be understood and practiced.

Strong diplomatic relations with other nations are of immense importance to the success of a strong and effective copyright policy as its effects and area of operations are not bound by any political borders.

In a meeting of the Prime Minister of India and the DGPS of respective states, it was emphasized that close interaction between the Police Officers and Law Officers is needed so that the Police officers stay informed about the upcoming legal developments. Likewise, the law fraternity will stay duly informed about the ground-level implication and results of the concerned policies. Both the institutions share a common objective of safeguarding the rights of the society and ensuring the certainty of punishments for the wrongdoers as per the law of the land. Therefore, a synergy between them is desirable as well as possible.

Talking about the challenges, one notable drawback with copyrights is that the owner of the copyright cannot control the place, time, or price of the sale of that work. This problem gets more complicated when it comes to the forms of copyrights related to software and digital music and so on.

Piracy is not a new-age problem, but due to the information technology revolution digitization has become the biggest threat. It has multiple facets which make it difficult to tackle and hard to prevent.

Talking about the steps taken by the government it is further added that the government has rolled out its National IPR Policy. The motto of the policy is Creative India, Innovative India: 'रचनात्मक भारत: अभिनव भारत'

The National IPR Policy, a vision document, is an IPR policy that encompasses all IPRs.15% This views IPRs holistically and takes into consideration all inter-linkages. It aims to create and maximize synergies among all forms of intellectual properties, relevant statutes, agencies, and other entities. It establishes an institutional framework for monitoring, implementation, and review. It seeks to adapt and incorporate global best practices to Indian circumstances. Recent times have seen a shift in the government's attention to IPR issues.

A successful example of growth and progress from copyright-based industries is seen in India. India is impressively carrying out its economic development by employing new technology, imparting training and skills to people, and drafting and implementing national policies and laws that establish intellectual property protection for 16 of its domestic and international actions. Indian copyright industry comprises film and video, music, software, publication, and many other mediums and has achieved major success due to various governmental and private actions and efforts. India is emerging as a major intellectual property market and IP-based industries have a great potential in contributing to the growth and development of the Indian economy." Besides the other IP-based industries, the Copyright-based industries have an important role to play In India, the income generated from films, music, software, publication, and other copyright-based industries add billions of rupees to the economy annually forms a major part of the total gross domestic product.

As per the FICCI-KPMG report of 2017, the Indian Media and Entertainment industry has carried out trade of a total of 1,262.1 billion Indian rupees. Of which 588.3 from television, 303.3 from publications, 142.3 from films, 59.5 from animation 30.8 from video games, 22.7 from radio, and 12.2 billion rupees have been earned by the music industry. The information and Technology sector also increased in India and with a 7.8% increase in the year 2017-2018 it has achieved a total turnover of 150 billion US dollars per annum. India's Media & Entertainment sector reaches millions with 161 million households, 94.067 newspapers (12.511 dailies), close 2.000 multiplexes and 214 million internet users, of which 130 are mobile Internet users. The industry has benefited from digitization of media products, services, and growth in regional media. Two of the most prominent sub-sectors in the industry, gaming and digital advertising, saw strong growth in 2017. They are expected have the highest Compound Annual Rate (CAGR), while all the other sub-sectors will grow at a lower rate in 2018. The industry is expected to grow at a 14.2% CAGR to reach

INR 1,785.8 trillion by 2018. The Indian music industry is expected to increase with a higher growth trajectory. This environment has allowed the Indian service and software industry to flourish and will continue to do so in the future. The majority of this revenue comes from software exports which grew faster than expected in previous years. Software industry created thousands of jobs and indirectly employed a large population. It has attracted billions of dollars in foreign direct investments (FDI) to India. According to a Nielsen India Book Market Report, India's book market ranks sixth in the world, and second among English-language ones. The report evaluates India's print book market, including imports. It also highlights the fact that India's compounded annual growth is on the rise. With the rapid growth of internet and mobile technology, India's e-book market is booming. This is a testament to its impressive digital revenue. According to a joint report on Indian Media and Entertainment Industry, the Indian media and entertainment market will reach USD 30 billion by 2019. According to estimates, the Indian media and entertainment industries will grow at 13.9% annually by 2019. India's digital media and print industries, as well as the digital advertising segment, are projected to experience a 30.2% CAGR by 2019. All other sub-sectors will grow at an average of 8% to 18%. This sector is 9.3% of India's GDP and is projected to reach US$ 300 billion in 2020. Moreover, the largest job providers in these areas are the private sector employers delivering millions of jobs in the Indian media and entertainment industry. The publication media also provides jobs to thousands of people and keeping the estimates of the growth in these sectors over the coming years it is presumed that new jobs will continue to be created regularly by these sectors.

Talking about the challenges, cases related to piracy and copyright infringement have witnessed a tremendous rise. This is because of the digitalization of data which is no more restricted to physical means and enforcement of Copyright has become a challenging task. Alternative Dispute Resolution (ADR) is the solution for litigation in copyright cases where court is already having a large number of cases which are pending. Now, we will discuss the concept of ADR

The quest for laws in Ancient India started around 4000 B.C. to 1000 B.C. Early Aryans were energetic and highly dynamic. They mostly invoked the unwritten laws of divine wisdom, reason and prudence as the principles that, according to them, governed the universe. These are the original principles that are still widely accepted today in the western world. This article focuses on the fundamental principles and techniques of mediation, which have become one of the most important tools in ADR in current international and national perspectives.

Resolving a dispute amicably gives greater satisfaction than adjudicating a dispute and most mediators subscribe to this feeling which has been rightly expressed by Mahatma Gandhi in his autobiography.

Santosam Param Sukham, mediation is one of the modes for attainment of peace.

In recent years, people have become more aware of their rights and are resorting to litigation. The infrastructure of the state has not grown in proportion to the large backlog of cases that has occurred in India. The administration of Justice has also been affected by this fallout.

The law Commission on India, in its 120 th Report 1988, recommended that the "state immediately increase the ratio of 10.5 judges permillion of the Indian population and at least 50 Judges for every million within the next five years." There are currently about 3 million cases pending in Indian courts. India is experiencing an unprecedented "litigation explosion!" India's ratio of judges is just 12-13 per million people, which is quite pathetic. This situation calls for a new approach to remedy it. It is a complement to the existing judicial system. The term jurist refers to justice, whether it is political, economic, or social. India is a developing country where many people are from marginalized, deprived, and poor classes. The high cost of litigation discourages them from approaching the judiciary. ADR is an innovative method that can ensure justice for all. ADR also offers other benefits, such as cost minimization and peaceful resolution without bitterness. This is something that may not be possible with traditional litigation approaches as well as other ADR options.

Access to justice means the ability to take part in the judicial process. A seeker of justice must not remain passive and observe, but should actively participate in the process to make him complex and an active participant. The Supreme Court made this observation not without cause. "We, the People of India are meant for the butcher, the baker, as well as the candle stick manufacturer-shall we also add, the pavement dweller and bonded labor." This human right covers more than just the court entry and includes many dimensions, including the consuming factor. There are many methods of dispute resolution. They can be used with different degrees of sanctions. The informal decision-making process became more complicated as society became more complex. This made it necessary to create a formal judicial system. This was necessary to maintain order in a rapidly growing society and allow commerce and trade to thrive.

There are many ways to approach conflict management. These range from the least coercive to the most. There are many ways to resolve conflicts. They can be discussed, negotiated, arbitrated or adjudged. Legislation, political actions, or violent force can all be used. It is common knowledge that wrong is part of Indian law (Swatanter Singh, J., 2011).

The proposal was made by the Ministry of Law, Government of India to establish a National Arrears Grid. This grid would have the task of determining the exact amount of arrears in each court on a scientific basis, and overseeing the continual reduction of arrears and efficient utilization of infrastructure. (Law Commission of India, 1987).

The government was the main litigant in the expansion of commerce, trade, and industry. This system allowed justice to be delivered faster while maintaining dignity and independence. It also brought the Constitution and fundamental rights. Because of its participation in many fields, the government was a major litigant which created tremendous employment opportunities. Multi-party complex civil litigation, an increase in population, an increase in the business opportunities beyond local limits, numerous new enactments creating new rights and remedies, and increasing reliance on the judicial forum of courts brought an unmanageable explosion of litigation, due to insufficient infrastructure facilities to meet the challenges, the clogged court houses become unpleasant compulsive forums instead of temples of speedy justice People are inclined either to avoid litigation or to start resorting to extra-judicial remedies. The same situation was faced by other democracies which lead to the introduction of drastic legal reforms for the first time followed by Australia, the UK, and Europe.

The executive, legislature, and judiciary must play a proactive role in addressing the above issues. The legislature has added new pro to address the problem of delay in justice. The judiciary is also playing a dynamic role in providing and imparting expeditious justice. Supreme Court has repeatedly stated that ADR must be promoted in order to provide justice to all. Numerous amendments to the Civil Procedure Code (19.08) were made in 1999. In 1999, several amendments were made to the Civil Procedure Code of 1908. The court directs parties to choose from several ADR mechanisms. Section 89 says that the judge, which is presumably the judge assigned in the case, must first determine whether there are any elements to a settlement that could be acceptable for the parties. The court will then "formulate" the terms of settlement and give them to the parties for comments. The court can then reformulate any settlement after receiving comments from the parties and refer them for arbitration, mediation, or conciliation. These provisions are drawn from the Arbitration and Conciliation Act 1996's conciliation provisions. They can also refer the parties to arbitration, mediation, conciliation, or Lok Adalat. The amendments were temporarily suspended due to widespread opposition from practicing bars. The Parliament, however, decided to make the amendments, including Section89, fully effective in July 2002 after the implementation of Section 89. This was in response to a constitutional

challenge brought by a Tamil Nadu bar association in Re Salem Bar Association. In a panel decision by Chief Justice Kirpal in October 2002, the Supreme Court confirmed the Constitutionality. The Supreme Court also created a committee consisting of five members to review the reforms and make recommendations regarding any additional rules or amends necessary to implement them. The Law Commission hosted a national conference in 2003 and issued guidelines for mediation. The 2005 Salem Bar Association decision was affirmed. Widespread implementation has been impeded by conflicts between the bar and bench. In the beginning, the judiciary and the bar weren't well prepared to implement the reforms. After the introduction of major anti-delay legislation, there had been no response for several years. Only now, with the directive of the Hon'ble Supreme Court, are several Indian courts beginning to implement the rules. Multilateral agreements and treaties that protect IPR now recognize Arbitration and Mediation to be a viable method of settling disputes. A good example is the WIPO Arbitration Rules, which the WIPO has formulated. It allows Arbitration to be used as a means of dispute resolution. WIPO established the WIPO Arbitration and Mediation Center to provide ADR in IPR cases. The WIPO mediation Rules Article 10 states that mediation will be conducted according to the terms of the parties' agreements.

Techniques of Dispute Resolution : While the dispute resolution process outside of the court system was always part of justice delivery, all stakeholders, including the individual, legal professionals, and professionals, have begun exploring alternative avenues. In this context, both the traditional methods of dispute resolution are being rediscovered, refined to meet society's needs, and new ones are being developed. This realization that dispute resolution methods outside of the court system are not an alternative to the court systems but independent, will help us better understand these processes and improve their effectiveness. They are also flexible and can be used in many ways. This would encourage more research and increase confidence in these processes. This research and confidence will inspire confidence in people to address their disputes using innovative routes, rather than going through traditional channels such as the courts.

However, when conflict arises, these are the four doors open to litigants viz.:

1. Negotiation
2. Litigation
3. Mediation/Conciliation
4. Arbitration

Our judicial system is under severe criticism for its rigidity in the

procedure, high cost, huge backlogs, and interminable delays in adjudicating disputes. The judiciary is unable to address the long-standing problem of court congestion because of the adversarial nature of litigation. According to statistics, there are 35.4 million cases pending at 21 High Courts across the country. The subordinate courts, on the other hand, are plagued by a backlog of more than 2 crore cases that can take up to 25 to 30 years. The alternative dispute resolution method is a solution to many of the problems that traditional litigation causes. A number of factors have contributed to ADR's rapid growth in popularity. These include the protection of confidentiality and privacy as well as the control over the resolution process by the parties. ADR is not based on a court's rigidity on procedural rules. Instead, it relies on a problem-solving approach that allows the parties to come up with creative and innovative solutions to create relief specific to the dispute.

Judiciary's Approach : The ADR processes are relatively new and are not frequently used in resolving IPR disputes. Disputes concerning infringement of Copyright are mostly resolved through litigation. In recent times, efforts are being made to change this situation. With the ground realization of the number of advantages offered by mediation, courts are promoting the ADR culture. The Indian Courts are pronouncing judgments which are highlighting the importance of the ADR mechanisms, especially when dealing with Copyright disputes. Mediation, Arbitration and other ADRs are now considered appropriate alternatives.

The court pointed out that the Legislature, Judiciary and Executive have all attempted to encourage the settlement of disputes through Mediation since the amendment to Section 89 of Civil Procedure Code (CPC). It would be in the public's best interest to give importance to Mediation once disputes have been resolved between the parties. The settlement should be treated as a solemn one. The movement of Mediation could be affected if the parties understand that even if they reach a settlement, either party can withdraw from it. In another case, the Supreme Court emphasized the importance of lawyers advising their clients to use Mediation to resolve disputes, particularly where there are relationships.

In another case, the Supreme Court observed that ADR can be adopted in all commercial disputes. Similarly, in another case, the Supreme Court widely discussed the essential features of mediation and how it can be effective in the present contemporary world.

In the context of IPR disputes, while evaluating the efforts of the Indian judiciary in a case, The Hon'ble Supreme Court ruled that trademarks, copyrights and patents should be decided by the Trial Court, not merely granted or denied an injunction. All courts should strictly adhere to Order XVII Rule 1(2) CPC. The hearings in these matters should

continue on a daily basis. The final judgment should be rendered normally within four months of the date of filing. The Supreme Court reiterated its position, stating that the experience in the country has shown that lawsuits relating to patents, trademarks, and Copyrights can be pending for years, and that litigation is mostly fought between the parties in the form of temporary injunctions. This is an extremely unsatisfactory situation. Another important case was that of the Delhi High Court, which ordered the adoption of an ADR process called 'Early Neutral Evaluation' in an IP-based litigation lawsuit. This case is important because it shows that Indian courts prefer ADR mechanisms to resolve IPR infringement disputes.

In another case, the Delhi High Court held that the Advertising Standards Council of India (ASCI) has jurisdiction to adjudicate upon claims of Copyright and Trademark infringement and passing off. It can adjudicate upon complaints relating to Copyright infringement in advertisements. The Court observed the existence of provisions under the Copyright Act. 1957 and the Trademark Act, 1999 exclusively empowering the District Court to adjudicate upon claims of infringement does not operate as an embargo to the ASCI adjudicating upon claims of infringement. The Court grounded its judgment in the desirability of vesting self-regulatory bodies with greater powers in order to enable them to function as efficacious ADR mechanisms. It was stated that such industry/sector-specific self-regulatory bodies should be encouraged as functioning thereof curtails litigation and allows an opportunity for constituents of the same industry/sector to have their *inter se* disputes and differences settled amicably. Thus, due to unwarranted delay in the disposal of cases and the costly litigation, the courts through these important cases are advancing ADR mechanisms.

Expeditious and speedy justice which is part of Fundamental Rights, Article 21 of the Constitution can be ensured in copyright cases when people will take recourse of ADR in copyright dispute cases.

Conclusion : Thus, Investment tribunals can adopt a broad interpretation of investment treaties. There is no international rule that prohibits them from doing so. Investment tribunals will be able to use relevant principles from other areas such as international intellectual and human rights law in deciding disputes between corporate actors and states. This approach to the public interest could lead to greater benefit over a longer time.

REFERENCES

Aggarwal, R. (2018). *Statement in National Conference on Copyright Enforcement.* Faculty of Law, University of Delhi.

Ahuja, V.K. (2018). *Statement in National Conference on Copyright Enforcement.*

Faculty of Law, University of Delhi.
Alam, A. & Desai, R.P. (2013). *K. Sriniwas Rao v. D.A. Deepa.* AIR (2013) SCC 226.
Bender, M.T. & Wang, Y. (2009). The Impact of Digital Piracy on Music Sales: A Cross-Country Analysis Source. *International Social Science Review, 84(3-4),* 157-170. link.gale.com/apps/doc/A217511897/AONE?u=anon~8c68149b &sid=googleScholar&xid=ad197399.
Bhatt, S.R. (2018). *Statement in National Conference on Copyright Enforcement.* Faculty of Law, University of Delhi.
Cornish, W. & Llewelyn, T.D. (2013). *Intellectual Property: Patents, Copyrights, Trademarks and Allied Rights.* Sweet & Maxwell.
Endlaw, R.S. (2000). *Metro Tyres Ltd. v. The Advertising Standards Council of India & Anr.* 83 (2000) DLT 205.
Iyer, V.K. (1978). *Moti Ram v. State of Madhya Pradesh.* (1978) 4 SCC 47.
House of Lords. (1984). *British Leyland v. Armstrong.* (1984) FSR 591 at 608 (C.A.).
Kaul, S.K. (2007). *Bawa Masala v. Baba Masala Co. Pvt. Ltd. and Another.* AIR 2007 Delhi 284; (2008) 149 PLR 38.
Kayju, M. & Misra, G.S. (2011). *B.S. Krishnamurthy v. B.S. Nagaraj.* AIR 2011 SC 794.
Kumar, S. (2011). Significance of Mediation in Modern World. *The International Centre for Alternative Dispute Resolution, 60.*
Law Commission of India. (1987). *Manpower Planning in the Judiciary: A Blueprint.* Ministry of Law, Justice and Company Affairs, Government of India.
Lindley, L.J. (1894). *Hanfstangl v. Empire Palace.* (1894) 3 Ch. 109 at 128.
Macauley. (2007). *Intellectual Property by Cornish.* Sweet & Maxwell.
Maheshwari, A.P. (2018). *Statement in National Conference on Copyright Enforcement.* Faculty of Law, University of Delhi.
Mishra, A. (2016). *Enforcement of Copyright for the Protection of Entertainment Industry.* Jamia Millia Islamia University.
Mishra, A. (2017). *Mediation Process and Techniques.* VL Media Solutions, Delhi
Muralidhar, S. (2009). *Shree Vardhman Rice & General Mills v. Amar Singh Chawalwala.* 2009 (10) SCC 257.
Patel, G.S. (2016). *Eros International Media Ltd. v. Telemax Links India Pvt. Ltd.* (2016) 6 ARBLR 121 (BOM).
Rao, E.D. & Sasidharan, K.K. (2009). *Bajaj Auto Ltd. v. TVS Motor Company Ltd.* JT 2009 (12) SC 103.
Raveendran, R.V. & Panchal, J.M. (2010). *Afscon Infrastructure Ltd. v. Cherian Verky.* 2010 (8) SCC 24.
Reddy, J. Chinna. (1984). *Gramophone Co. v. Birender Bahadur Pandey.* AIR 1984 SC 667 at 676.
Sabharwal, Y, Dharmadhikari, D.M. & Chatterjee, T. (2005). *Salem Advocate Bar Association II v. Union of India.* (2005) 6 SCC 3.
Sikri, A.K. (2007). *Jaibir and Ors. v. State and Anr.* 142 (2007) DLT.
Singh, P.M. (2018). *Statement in National Conference on Copyright Enforcement.* Faculty of Law, University of Delhi.
Somasundaram. (1972). *K.R. VenugopalaSarma v. Sangu Ganesan.* 1972 Cri. L.J. 1098 (Mad.).

●